जैन विद्या
उपलब्धियाँ और संभावनाएँ

जैन विद्वत्-संगोष्ठी, बम्बई [७-८ सितम्बर १९८२]

(प्रथम आयोजन)

कार्यवाही एवं विवरण

संयुक्त तत्वावधान

भारतीय ज्ञानपीठ, बी/४५-४७, कनाट प्लेस नई दिल्ली-११०००१

आचार्य शान्तिसागर स्मारक ट्रस्ट, त्रिमूर्ति (नेशनल पार्क) बोरीवली, बम्बई ४०००६६

जैन विद्वत संगोष्ठी (विवरण)

अनुक्रम

द्वितीय सत्र

आलेख एवं भाषण

तृतीय सत्र

आलेख एवं भाषण

मगाष्ठी म ममागत सुवीजन

- संगम -

पं० जगन्मोहन लाल शास्त्री और सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाश चन्द्र शास्त्री

डा० प्रेमसुमन जैन (पीछे)

डा० (पं०) पन्नालाल जैन साहित्याचार्य
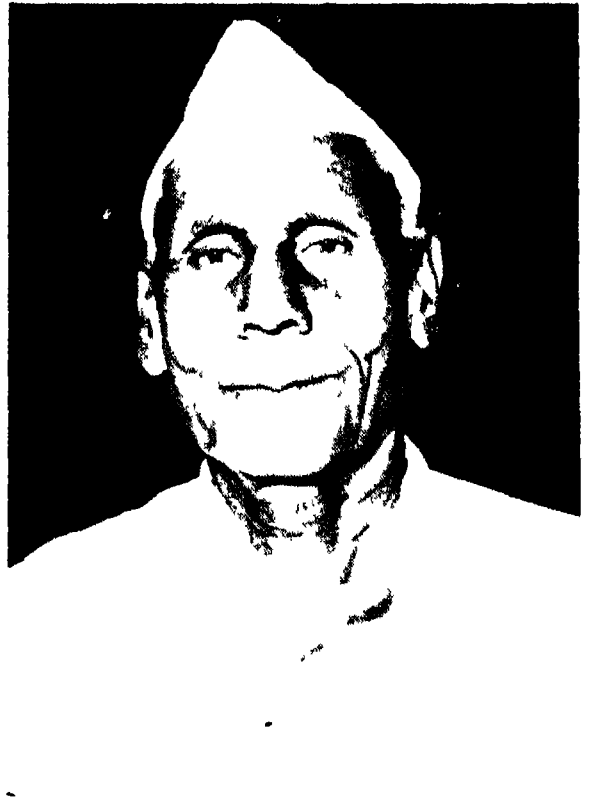
संहितासूरि पं० नाथूलाल शास्त्री

मराठी सभा-मण्डप

आचार्य विमलसागरजी महाराज का आशीर्वाद

विद्वत् मण्डली,

आप लोगों ने विद्वत् गोष्ठी का विचार किया है । मैं भगवान् महावीर से प्रार्थना करता हूँ और यह भी कहता हूँ कि आप लोगों ने जो कार्य किया है वह सराहनीय है । जिससे हमारे भारत के बच्चे-बच्चे या समाज पर जो कुप्रभाव हुआ है उससे हटकर के आगम अनुसार अपनी-अपनी आजीविका चलाते हुए किसी प्रकार का दोष न आवे इस प्रकार का कार्य करें । यह मेरा आपको आशीर्वाद है ।

प्राक्कथन

बम्बई में 7 और 8 सितम्बर, 1982 को जो जैन विद्वत् संगोष्ठी, बोरीवली-स्थित नवीन तीर्थ "पोदनपुर" में आयोजित हुई, वह अपने प्रकार का एक विशेष सांस्कृतिक सम्मेलन था, जिसमें जैन विद्या की परंपरागत शास्त्रीय शैली के मूर्धन्य विद्वान और आधुनिक विश्व-विद्यालयीय पद्धति के शोध-निष्णात प्राध्यापक तथा अन्य विद्वान सम्मिलित थे। भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली और आचार्य श्री शान्तिसागर स्मारक ट्रस्ट का संयुक्त तत्वावधान इस प्रकार की गोष्ठी के सर्वथा अनुकूल था। पूज्य आचार्य विमलसागरजी महाराज संघ सहित पोदनपुर में विराजमान थे। बम्बई की समाज के सहयोग और बाहर से पधारने वाले अनेक समाज-हितैषियों के समागम ने संगोष्ठी को भव्य और स्मरणीय बनाया है।

इस पुस्तक में संगोष्ठी का विवरण - आलेख, भाषण, परिचर्चा और सम्मान-संयोजना आदि - प्राय: संपूर्ण रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। सम्भवतया यह एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ बन गया है। संयोजकीय प्रस्तावना में आयोजन की कल्पना और प्रक्रिया के सम्बन्ध में संक्षेप में सभी जानकारी दे दी गई है। मूल उद्देश्य के प्रति अनेक वक्तव्यों और भाषणों में ध्यान आकर्षित किया गया है। लगभग बीस विषयों में से इस संगोष्ठी के चार सत्रों के लिए पाँच विषय चुने गये थे। इन चुने गए विषयों के संबन्ध में भविष्य की योजनाएँ क्या हों, प्रत्येक क्षेत्र में संभावनाएँ क्या हैं, इस विषय पर प्राय: प्रत्येक विद्वान ने मन्तव्य दिया है। अब तक की उपलब्धियाँ क्या हैं, इस पर भी पर्याप्त प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

सोचा था कि गोष्ठी के चारों सत्र पूरे हो जाने के उपरान्त आगे के कार्यक्रमों की रूप-रेखा विस्तार से बनाई जा सकेगी, परन्तु वहाँ यह सम्भव इसलिए नहीं हो पाया कि संगोष्ठी का यह सौभाग्य रहा कि प्राय: सभी आमन्त्रित विद्वान पधारे और सभी सत्रों में उनके विचार सुनने के कार्यक्रम को ही प्राथमिकता दी गई। यह स्वाभाविक था। यद्यपि संगोष्ठी के लिए विचारणीय विषयों को सीमित रखा गया था, फिर भी वक्ताओं और श्रोताओं का उत्साह तथा दोनों की मानसिकता का इतना सुन्दर समन्वय रहा कि दो

दिनों का समय कम पड़ गया ।

जहाँ तक भविष्य का कार्यक्रम निश्चित करने का प्रश्न है, संगोष्ठी के इस पूरे विवरण को देखने - समझने के बाद यह बात और भी स्पष्ट हो गई कि जैन संस्कृति के संदर्भ में कार्य करने का क्षेत्र बहुत व्यापक है, महत्वपूर्ण योजनाओं के सुझाव अनेक-अनेक हैं, तथा साधनों का प्रश्न पग-पग पर सघन रूप से सामने आ जाता है । इस संगोष्ठी के आयामों को देखते हुए यह आवश्यक है कि किसी दूसरी संगोष्ठी को आयोजित करने से पहले इस संगोष्ठी के निष्कर्ष - रूप में जो कार्यक्रम प्राथमिकता के साथ निश्चित किये जायें, उनकी सिद्धि के लिए दायित्व का और साधनों का विभाजन निश्चित हो जाये । मेरी विद्वानों से प्रार्थना है कि वे शोध और लेखन का तदनुसार दायित्व लें और परामर्श समितियों के सहयोग से रूप-रेखा बनाकर कार्य आगे बढ़ायें । भारतीय ज्ञानपीठ गोष्ठी के प्रत्येक विषय से संबंधित कुछ कार्यक्रम हाथ में लेने की योजना बना रही है ।

संगोष्ठी का यह विवरण जिन-जिन विद्वानों, समाज के नेताओं - हितैषियों और संस्थाओं के पास पहुँचे, उनसे अनुरोध है कि वह इस का मनन करके अपनी प्रतिक्रिया, दायित्व-वहन और कार्यकारी सुझावों से अवगत करायें ।

जिन सभी गुरुजनों, विद्वानों और सहयोगी मित्रों ने मेरे व्यक्तिगत अनुरोध को मान देकर तत्काल यात्रा का कार्यक्रम बनाकर संगोष्ठी में पधारने का कष्ट किया उन्हें किन शब्दों में धन्यवाद दूँ ? सबकी कृपा और स्नेह ही मेरा संबल है । जो भी मुझसे हो पाता है, उसे मैं अपना सौभाग्य और जिनवाणी माता की भक्ति का प्रसाद मानता हूँ ।

श्रेयांसप्रसाद जैन
अध्यक्ष
भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

जैन विद्वत् संगोष्ठी, बम्बई

संयोजकीय प्रस्तावना

विचार - बिन्दु

• भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली और श्री आचार्य शान्तिसागर स्मारक ट्रस्ट, बम्बई के संयुक्त तत्वावधान में 7 और 8 सितम्बर 1982 को बम्बई में आयोजित संगोष्ठी का तत्वावधानीय संयोग-सूत्र इसलिए संभव हुआ कि दोनों संस्थाओं के अध्यक्ष एक ही हैं - समाजरत्न श्री साहू श्रेयांसप्रसाद जैन । भारतीय ज्ञानपीठ का योगदान जैन विद्या के विविध क्षेत्रों में सुपरिचित है, जिसके प्रेरणा-स्रोत थे ज्ञानपीठ ट्रस्ट के संस्थापक स्वर्गीय श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन और ज्ञानपीठ की अध्यक्षा स्वर्गीया श्रीमती रमा जैन । ज्ञानपीठ के मैनेजिंग ट्रस्टी हैं साहू-दम्पत्ति के ज्येष्ठ पुत्र श्री साहू अशोक कुमार जैन । वर्तमान में ज्ञानपीठ की सांस्कृतिक-साहित्यिक परंपराओं को निभाने और आगे बढ़ाने में श्री साहू श्रेयांसप्रसाद जैन और श्री साहू अशोक कुमार जैन दत्त-चित्त हैं । इस पृष्ठभूमि में भारतीय ज्ञानपीठ के लिए विद्वत् संगोष्ठी को आयोजित करने का विचार स्वाभाविक था । इस विचार को एक नया आयाम दिया गया, इस रूप में कि विद्वत् संगोष्ठी में आमंत्रित विद्वान पुरातन और नूतन दोनों पद्धतियों के अध्ययन अध्यापन से सम्बद्ध एक मंच पर एकत्र होकर जैन-विद्या की उपलब्धियों और भविष्य की संभावनाओं पर विचार करें । अपनी इस कल्पना की चर्चा श्री साहूजी ने आचार्य श्री शान्तिसागर स्मारक ट्रस्ट के कर्मठ मैनेजिंग ट्रस्टी श्री चाँदमल मेहता से की । स्मारक-ट्रस्ट के लिए विशेष आकर्षण की बात यह थी कि संगोष्ठी बम्बई में बोरीवली में राष्ट्रीय उद्यान के मनोरम परिदृश्य में स्थापित नवीन जैन तीर्थ पोदनपुर में होगी, जहाँ भगवान् आदिनाथ, बाहुबली और भरत की विशाल त्रिमूर्ति विराजमान है । यह स्थान यद्यपि शहर से दूर है, किन्तु उसकी पवित्रता, भव्यता और शान्तिपूर्ण वातावरण गोष्ठी के सर्वथा अनुकूल है ।

• गोष्ठी का निर्णय लेने के उपरान्त, विचारणीय प्रश्न यह उठा कि दोनों परिपाटियों के किन-किन विद्वानों को आमन्त्रित किया जाये । शास्त्रीय पद्धति के मान्य-मान्य विद्वानों के नाम तो समाज में सुपरिचित हैं, विश्व-विद्यालीय अथवा अध्ययन-अध्यापन की नयी शैली के एम॰ए॰, पी॰एच॰डी॰,

डी॰लिट्, विद्वानों की सूची, सौभाग्य से, बड़ी है; किन्तु सबको आमंत्रित करना संभव नहीं । अतः नये विद्वानों का चुनाव परिचर्चा के लिए निर्णीत विषयों और समय तथा सत्रों की सीमा से बाधित हो गया । संगोष्ठी अपने ढंग की नयी है, अतः पत्र-पत्रिकाओं तथा वैयक्तिक पत्रों द्वारा इसका प्रचार किया गया । परिचर्चा के निश्चित विषयों के लिए चुने गये समस्त विद्वानों को श्री साहु श्रेयांसप्रसादजी ने व्यक्तिगत पत्र लिखकर आमन्त्रित किया । भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से संयोजक - द्वय - श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, निदेशक, भारतीय ज्ञानपीठ तथा डा० नेमीचन्द जैन, संपादक "तीर्थंकर" द्वारा निमंत्रण-पत्र और पूरी सूचनायें भेजी गईं । स्मारक ट्रस्ट के मंत्री श्री चाँदमल मेहता की ओर से [illegible] और प्रबन्ध संबंधी सूचनाएँ पत्राचार में सम्मिलित की गईं । किस आमंत्रित महानुभाव के लिए कौन सी ट्रेन उपयुक्त है तथा वह बम्बई-परिसर के किस स्टेशन पर उतरें, जहाँ स्वयंसेवक उनका स्वागत करेंगे और आवास-स्थान पर ले आयेंगे आदि सूचनाएँ व्यवस्थित ढंग से भेजी गईं ।

• संगोष्ठी के चार सत्रों के लिए निर्धारित विषयों और परिचर्चा में भाग लेने वाले विद्वानों - महानुभावों के नामों की जानकारी आगे दी गई है ।

संगोष्ठी को विषय-केन्द्रित करने की दृष्टि से यह पद्धति अपनायी गयी कि परिचर्चाकार अपने विषय का आलेख गोष्ठी से पूर्व भेज दें जिसे पहले से प्रसारित कर दिया जाये । जब गोष्ठी आयोजित हो तो प्रत्येक विद्वान अपने भाषण में विषय के विशेष मुद्दों की ही चर्चा करे ।

लगभग सभी आमंत्रित विद्वान संगोष्ठी में सम्मिलित हुए । आचार्य विमलसागरजी महाराज ने आशीर्वाद दिया और उनके संघ के साधकों ने परिचर्चा में भाग लेकर आयोजन को विशिष्टता प्रदान की ।

• संगोष्ठी में पढ़े गये और संगोष्ठी के लिए उस समय अथवा बाद में प्राप्त आलेख यहाँ सत्रों के क्रमानुसार व्यवस्थित किये गये हैं । जो भाषण दिये गये - आलेखों के संदर्भ में अथवा स्वतंत्र रूप से - उन्हें भी इसी क्रम से साथ-साथ समायोजित किया गया है । भाषणों को टेपरिकार्डर पर टेप किया गया था । टेपरिकार्डर पर सुनकर उन्हें शार्टहैंड में लिखा गया, फिर शार्टहैंड से एक-एक पृष्ठ टाइप किया गया, फिर प्रत्येक टाइप किये गये पृष्ठ का संशोधन किया गया । जहाँ तक संभव हुआ, भाषणकर्ता के पास संशोधन के लिए भेजा गया । संशोधित भाषण पुनः टाइप हुए । अब, यदि यह पुस्तिका छपाई गई होती तो प्रेस में दे दी जाती और प्रूफ पढ़ने के उपरान्त प्रकाशित हो गई होती । किन्तु इसकी

प्रतियाँ सीमित संख्या में अपेक्षित थीं और मुद्रण के व्यय से बचना था, अत: प्रत्येक पृष्ठ का स्टेन्सिल काटा गया, पुन: संशोधन किया गया और साइक्लो टाइलिंग मशीन पर से प्रतियाँ निकाली गईं । यह सब बहुत श्रम-साध्य औ समय-साध्य हुआ ।

• जिस समय आलेख पढ़े गये थे, भाषण सुने थे तभी स्पष्ट हो गया थ कि गोष्ठी की उपलब्धि निर्मित हो रही है । वह धारणा अब अधिक बलव होती है, जब सारी सामग्री को एक साथ देखते हैं । संगोष्ठी के लिए तीन प्रयोजन साध्य थे : 1• प्रत्येक निर्धारित क्षेत्र में उपलब्धियाँ क्या हुईं 2• उ की संभावनाएँ क्या हैं 3• भविष्य के लिए सुझाव क्या हैं, कार्यक्रम क्या हो तीनों साध्य प्रत्येक सत्र की समग्रता की दृष्टि से उभर कर सामने आये हैं । प्रत्येक आलेख और भाषण को सावधानी से आप पढ़ेंगे तो पूरा चित्र सामने आ जायेगा । इस संगोष्ठी की उपादेयता इस रूप में भी सार्थक है कि पढ़ने के लिए विचार-चिन्तन और जानकारी के लिए अपूर्व-सामग्री यहाँ उपलब्ध है । प्रेरणा प्रद भी बहुत कुछ है ।

• संगोष्ठी में जैन-विद्या के क्षेत्र की अनेक प्रतिभाएँ समुपस्थित थीं । संगोष्ठियों की श्रृंखला का पहला चरण है । जैसा ऊपर लिखा गया है, अन्य अनेक विद्वान अगली संगोष्ठियों में आमन्त्रित हों, यह विचार सामने है । कि उससे पहले प्रस्तुत संगोष्ठी की सार्थकता अधिक ठोस धरातल की माँग करती कार्यकारी उपलब्धि के रूप में । उपस्थित विद्वानों को भविष्य की योजनायें प्रस्तावित करने के लिए जो विवरण - प्रारूप (प्रोफोर्मा) दिया गया था, उनमें से अनेक प्राप्त हुए हैं । जो योजनाएँ और कार्यक्रम सामने आये हैं उनमें कई वास्तविक अर्थ में महत्त्वपूर्ण हैं । इन योजनाओं का एक अंग है, सामग्री संकलन, शोध और संपादन । दूसरा अंग है - प्रकाशन । शोध-सामग्री के लिए व्यय के अनुमान का मानक यदि विश्वविद्यालयों से लिया जाता है तो विस्तार बहुत है । सरकारी मानक तो और भी दु:साध्य हो जाता है । अ विद्वानों और सहयोगी संस्थाओं को अपना अलग मानक बनाना होगा जो व्यावहारिक हो और साथ में उचित भी हो । कागज, छपाई, जिल्दबन्दी के मूल्यों के सामने संस्थायें और व्यक्ति परवश अनुभव करते हैं । आज पुस्तक के मूल्य इतने अधिक हो गये हैं कि व्यक्ति की सामर्थ्य से परे हैं । पुस्तकालय के माध्यम से ही साहित्य पढ़ना सम्भव हो पा रहा है । समाज को जैन-विद्या के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से यह सोचना होगा कि योजनाबद्ध रूप से प्रचार

और प्रसार का क्या प्रयास किया जाये कि जहाँ एक ओर प्रत्येक मंदिर में ए जैन ग्रन्थालय हो और उसका वार्षिक बजट हो, वहाँ साहित्य पढ़ने-पढ़ाने और उस पर चर्चाएँ आयोजित करने का प्रचलन जारी किया जावे । शास्त्र-सभाएँ भी हों और इस प्रकार की परिचर्चाएँ भी । इस प्रस्तावना में इस सम्बन्ध में कुछ विस्तार से लिखने का अभिप्राय ही यह है कि संगोष्ठी जिन योजनाओं को निष्कर्ष रूप से सामने रख रही है उनके क्रियान्वयन का लक्ष्य ग्रन्थ प्रकाशन है, किन्तु प्रकाशनों की सार्थकता इसमें है कि वे पाठकों तक पहुँचें । विद्वज्जन समस्या के इस पहलू से निरपेक्ष नहीं हो सकते, प्रायः हैं भी नहीं, किन्तु इस में पर्याप्त प्रचार नहीं करते, समाज को ग्रन्थालय स्थापित करने के लिए पग-पग पर प्रेरित नहीं करते । करना चाहिए ।

• योजनाओं का विस्तार इतना व्यापक है कि अकेले भारतीय ज्ञानपीठ या किन्हीं अन्य एक-दो संस्थाओं द्वारा इनका क्रियान्वयन सम्भव नहीं है । विद्वत् परिषदों को इस दिशा में क्रियाशील होना चाहिए । सारी योजनाओं पर विचार करने के लिए शोध संस्थाओं की एक संयुक्त बैठक होना आवश्यक है ।

• बम्बई संगोष्ठी की उपलब्धि का चित्र इस विवरण में प्रतिबिम्बित है आलेखों और भाषणों को प्रायः पूरा-पूरा देने का प्रयत्न करना बहुत व्यय साध्य है । बहुत बड़े प्रयास, साधन और प्रबन्ध की आवश्यकता होती है । इतनी बड़ी गोष्ठी बुलाने का यह प्राथमिक प्रयोजन बहुत अच्छी तरह सिद्ध हुआ कि प्राचीन-अर्वाचीन शैली के विद्वानों का एकत्र मंच सामने आया और कार्य-पद्धतियों की शैली अलग-अलग होने पर भी संगोष्ठी के उद्देश्यों की आवश्यकता, अनुकूलता और कार्यन्वयन की पद्धति पर अद्भुत रूप से विचार-साम्य उभर कर सामने आया । वातावरण प्रीतिकर रहा ।

• एक कमी विशेष रूप से खटकी, और इस ओर बार-बार वक्ताओं ने ध्यान आकृष्ट किया कि समय बहुत कम मिला । वक्ता और श्रोता दोनों लालायित रह गए कि कुछ और कहें, कुछ और सुनें । कठिनाई यह रही कि बम्बई में तीन दिन ठहरना और आने-जाने की यात्रा के लिए दो-तीन दिन का अतिरिक्त समय निकालना कार्यरत विद्वानों को भारी पड़ता है । रेल में रिजर्वेशन भी इच्छानुसार नहीं मिल पाता, अतः गोष्ठी के दिनों को बढ़ाना सम्भव नहीं था । संयोजक के रूप में भाई डा. नेमीचन्द की और मेरी कठिन परीक्षा हुई । वह तो श्री साहूजी का सहारा प्रत्येक क्षण उपलब्ध था, और

विद्वानों की सदाशयता ने स्थिति को निरन्तर अनुकूल बनाये रखा - समय के नियन्त्रण को उन्होंने उदारतापूर्वक सहन किया, कि सब कुछ आनन्द संपन्न हुआ। हम संयोजक द्वय इस कृपा के प्रति कृतज्ञतापूर्वक नत-मस्तक है। जैन विद्या के मूर्धन्य विद्वान, विचारक और साधक श्रद्धेय जगन्मोहनजी शास्त्री ने गोष्ठी का उद्घाटन किया। यह शुभारंभ इसकी सफलता की मंगल पताका थी।

• अन्त में, सिद्धान्ताचार्य पंडित कैलाशचन्द्रजी द्वारा "जैन सन्देश" में प्रकाशित उनके संपादकीय के एक अंश को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ।

"साहू श्रेयांसप्रसादजी दोनों ही दिन प्रारंभ से अन्त तक तख्त के एक कोने पर बिना किसी सहारे के बैठे हुए वक्ताओं के समय का नियंत्रण करने के प्रति सचेष्ट रहे। वे एक ऐसे श्रीमन्त हैं जिन्हें साहित्य, साहित्यिकों और साहित्यिक गोष्ठियों के सफल संचालन का अनुभव है तथा उनका गहरा अनुराग है। उनकी सामाजिक और धार्मिक दृष्टि बहुत परिष्कृत है। वे किसी वाद से संबद्ध नहीं हैं। जैन धर्म और जैन समाज का सर्वांगीण विकास ही उन्हें प्रिय है और उसके लिए ही वे सतत प्रयत्नशील रहते हैं। उनकी विचार-सरणि बहुत सुलझी हुई है। उन्हें किसी से राग-द्वेष नहीं है। जो समाज और धर्म की सेवा में रत हैं वे सभी उन्हें प्रिय हैं। समाज की प्रत्येक गतिविधि पर उनकी पैनी दृष्टि रहती है और वे प्रत्येक समस्या को सुलझाने में सचेष्ट रहते हैं। यद्यपि उनका स्वास्थ्य इतना श्रम सहन करने के योग्य नहीं है किन्तु उनकी रुचि और साहस देखकर आश्चर्य होता है।"

• अन्तिम पंक्ति आभार की होती है। हमारा आभार प्रदर्शन औपचारिक है, ऐसा आप यदि मान लेंगे तो आयोजकों के साथ न्याय नहीं होगा। वास्तव में ही हमारी कृतज्ञता शब्दातीत है, सभी विद्वानों के प्रति व्यक्तिशः और सामूहिक रूप से।

उद्योग व्यवसाय में मान-मर्यादा की संवाहक श्रीमती सरयू दफ्तरी ने अभ्यागतों का जिस हार्दिकता के साथ आतिथ्य किया, उनके भोजन की व्यवस्था को सब दिन, सब प्रकार से सुन्दर और सुरुचिपूर्ण बनाया, वह उनकी ही क्षमता द्वारा साध्य था। विद्वानों के प्रति वह इतनी विनम्र है कि यदि सब की ओर से हम आभार व्यक्त करेंगे तो वह सकुचायेंगी।

टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन-समूह के कार्यकारी निदेशक, श्री रमेश चन्द्र जैन ने जो भारतीय ज्ञानपीठ के ट्रस्टी भी हैं, संगोष्ठी के प्रचार-प्रसार में और इस विवरण की प्रस्तुति में मूल्यवान सहयोग दिया है। हम कृतज्ञ हैं।

संगोष्ठी की सफलता के लिए अनेक सहयोगियों ने दिल्ली में और बम्बई में तत्परता से कार्य किया । श्री सी•एम•गान्धी, डा० गुलाबचन्द्र जैन श्री अश्विनी कुमार जोशी और श्री गौरी दत्त आदि सभी कठिनाइयों के निराकरण के लिए सदा सावधान रहे । उन्हें विशेष धन्यवाद । यद्यपि इस प्रस्तावना पर हस्ताक्षर मेरे जा रहे हैं, किन्तु भाई डा. नेमीचन्द जैन संगोष्ठी में जिस प्रकार साथ-साथ रहे और संबल दिया, इस वक्तव्य के साथ भी वह जुड़े हुए हैं । उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने का अर्थ होगा, मैं स्वयं उसमें अंश ग्रहण कर रहा हूँ ।

26 जनवरी, 1983

(लक्ष्मीचन्द्र जैन)
निदेशक
भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली.

प्रेरणा-पत्र

श्री साहूजी द्वारा आमंत्रित विद्वानों को प्रेषित

प्रिय ....

आपको यह जानकर हर्ष होगा कि आगामी 7-8 सितम्बर 1982 को बम्बई में भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली तथा श्री आचार्य शान्तिसागर स्मारक ट्रस्ट, बम्बई के संयुक्त तत्वावधान में एक जैन विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन किया गया है, जिसमें देश के प्रमुख मनीषी विद्वान् मिलजुल जैन इतिहास, पुरातत्व, स्थापत्य, धर्म, दर्शन, विज्ञान, मन्त्र एवं ज्योतिष शास्त्र-गत विविध क्षेत्रों की हमारी उपलब्धियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करेंगे तथा उन व्यवहार्य कार्यक्रमों/योजनाओं का पता लगायेंगे, जिनके अमल से जैन धर्म और जैन समाज को एक नवोत्थान दिया जा सके तथा हमारी समकालीन एवं आगामी पीढ़ी को अब तक की विभिन्न क्षेत्रगत उपलब्धियों की आरंभिक झलक देना सम्भव हो।

निश्चय ही उक्त संगोष्ठी इस तरह के विचार-विमर्श का एक ऐसा शुभारम्भ है, जिसके बाद हमें जैन विद्या के उन सारे क्षेत्रों (जैन आचार, संस्कृति, भाषा-साहित्य, शिक्षा, योग, ध्यान, प्रबन्धिकी, कला, शिल्प, गणित, भूगोल, खगोल, सामाजिक संरचना, राजनीति विज्ञान, पत्रकारिता, पाण्डुलिपि वाचन एवं संरक्षण इत्यादि) में धर्म व समाज के हित के लिए प्रभावशाली खोज करना आवश्यक ही है। संगोष्ठी की सबसे महत्वपूर्ण फलश्रुति यह होगी कि हम उक्त क्षेत्रों की गौरव-गरिमा से परिचित हो सकेंगे तथा ऐसे कार्यक्रमों को तुरन्त हाथ में ले सकेंगे जो हमें अधिक सशक्त प्रभाव तथा युगानुरूप बना सकते हैं। इस संगोष्ठी में हमें यह भी पता चल सकेगा कि अब तक हमारी क्या उपलब्धियाँ हैं और क्या संभावनाएँ हैं एवं किस प्रकार भावी कार्यक्रम निर्धारित कर सकते हैं। यह संगोष्ठी आगामी होने वाली संगोष्ठी का प्रथम चरण है।

मेरी आंतरिक अभिलाषा है कि जैन समाज को नये विकास-संदर्भों में एक स्वस्थ दिशा दर्शन प्राप्त हो। जैन विद्वानों की परम्परित/आधुनिक पीढ़ियाँ एक मंच पर मिल-जुल कर विचार-विमर्श करें और जैन विद्या के अध्ययन अनुसंधान तथा कार्यक्रम-क्रियान्वयन की दिशा में एक समुपयोगी कार्यक्रम बनायें।

बम्बई में होने वाली इस संगोष्ठी के लिए आपको मेरा हार्दिक निमन्त्रण है। आप इसमें अवश्य सम्मिलित हों और अपना मार्गदर्शन देकर संगोष्ठी को सफल बनायें।

बम्बई : 12 अगस्त 1982

आपका,
ह०
(श्रेयांसप्रसाद जैन)

श्री............

संगोष्ठी की पूर्व-संध्या को बंबई के प्रमुख पत्रकारों और पत्र-प्रतिनिधियों की एक बैठक टाइम्स आफ इंडिया भवन में श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी की अध्यक्षता में हुई। संगोष्ठी के उद्देश्यों, पृष्ठभूमि और कार्य-पद्धति आदि के विषय में प्रश्नोत्तरों द्वारा विशिष्ट सूचनाएँ प्रस्तुत की गईं। श्री साहूजी ने विस्तार से प्रकाश डाला। श्री लक्ष्मीचन्द्र जी ने प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया। पत्रकारों को जो प्रेस नोट दिया गया, वह निम्न प्रकार था :

AN UNPRECEDENTED MEET OF
SCHOLARS OF JAINOLOGY IN THE CONTEXT OF
INDOLOGICAL STUDIES.

Podanpur, the newly developed place of Jain pilgrimage, popularly known as TRIMURTI, situated in the National Park, Borivli (East) will earn the distinction of being the venue of a unique gathering of about forty prominent scholars of Jainology organised for the first time in recent history. Eminent Orientalists of the traditional school will join hands with the distinguished Jain Scholars from University academics to discuss the subject of

JAINOLOGICAL STUDIES - ACHIEVEMENTS AND PROSPECTS

The Seminar, organised under the joint sponsorship of Bharatiya Jnanpith, Delhi and Shri Acharya Shanti Sagar Memorial Trust, Bombay, will hold four sessions on 7th and 8th September, 1982. Morning sessions will run from 9.30 a.m. to 1.15 p.m. and evening sessions from 3.15 p.m. to 5.45 p.m.

This seminar is going to be different from the general run of Seminars inasmuch as the emphasis will not be so much on speeches and discussions as on practical programme of taking stock of the achievements, assessing their value, arranging publications and planning furtherance of research projects in the future.

-2-

Awareness has grown in India and abroad of the rich heritage of Jainism in manifold subjects like Religion and Philosophy, Languages and Literatures, Sculpture and Architecture, Science and Biology, Astronomy and Astrology, Mathematics and Systematics, Political Science and Sociology, Culture and Ethics, Yoga and meditation etc. The Scholars participating in the series of planned Conferences will assess the influence of Jain learning on the sum total of the knowledge of which India is proud. Mental awakening and moral uplift of mankind have always been the focal point of the endeavour of Jain Acharyas and lay scholars. Principles of Ahimsa (non-violence) Anekanta (recognition of multifaceted aspects of Truth), Aparigrah (limiting one's needs and accumulations) permeate creative efforts in writing and oral discussions.

The four sessions of the present Seminar will cover respectively the following subjects:-

1) Jain History:

(a) Cultural, Social and Political;

(b) Jain Architecture and Archaelogy;

2) Various aspects of Jain Religion and Philosophy.

3) Jainism and Science;

4) Jain School of Mantra Shastra and Astrology (Jyotish);

This unique Seminar is, in fact, a dream come true - the dream of Sahu Shriyans Prasad Jain, the philonthropist leader of the Jain community. Shri Jain is the President of both the sponsoring Institutions - Bharatiya Jnanpith, Delhi (A Trust founded in 1944 by his younger brother, the renowned Industrialist Shri Sahu Shanti Prasad Jain and his wife Shrimati Rama Jain) and of Shri Acharya Shanti Sagar Smarak Trust, Bombay. Shri Chandmal Mehta, the Managing Trustee of this Smarak Trust is devoting himself wholeheartedly for making the conference successful and fruitful in every way.

Shri Lakshmi Chandra Jain, Director, Bharatiya Jnanpith, Delhi and Dr. Nemichand Jain, the live-wire Editor of 'Tirthankar' Indore, are Conveners of this Seminar.

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं को हिन्दी में सूचना-पत्र दिया गया ।

जिन पत्र प्रतिनिधियों ने प्रेस कॉन्फ्रेंस और चर्चा में भाग लिया और जो आमंत्रित थे उनकी नामावलि इस प्रकार है :

1. श्री के.पी. बालकृष्णन
   टाइम्स आफ इंडिया
2. श्री ए.जी. मैथ्यू
   इकोनोमिक्स टाइम्स
3. श्री एस. पाठक
   नवभारत टाइम्स
4. समाचार सम्पादक
   महाराष्ट्र टाइम्स
5. श्री के.एन. राधाकृष्णन
   इंडियन एक्सप्रेस
6. श्री पी.एम. मोहमद
   फाइनेन्शियल एक्सप्रेस
7. श्री वैंकटेश्वरन
   दि हिन्दू
8. श्री बरजौर पटेल
   दी स्टेट्समैन
9. श्री एच.भनोट
   हिन्दुस्तान टाइम्स
10. श्री प्रभीर राय
    अमृत बाजार पत्रिका
11. श्री पी.आर.के. मेनन
    फ्री प्रेस जर्नल
12. श्री रामाकृष्णन
    प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया
13. श्री सी.जी. मथेकर
    यूनाइटेड न्यूज आफ इंडिया
14. प्रमुख संवाददाता
    समाचार भारती
15. समाचार संपादक
    जन्मभूमि
16. समाचार संपादक
    बम्बई समाचार
17. समाचार संपादक
    लोक सत्ता
18. समाचार संपादक
    दी डेली
19. समाचार संपादक
    मिड-डे

उद्घाटन सत्र

7 सितम्बर, 1982 (प्रातः 9.30 बजे से 11.15 बजे तक)

अध्यक्ष	:	पं० जगन्मोहन लाल जी शास्त्री
मंगलाचरण	:	आर्यिकाश्री स्याद्वादमती जी
स्वागत भाषण		साहू श्री श्रेयांसप्रसाद जैन
उद्घाटन भाषण	:	पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री
संगोष्ठी-प्रवर्तन	:	श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, डा० नेमीचन्द जैन
आशीर्वचन	:	आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज
स्वागत एवं धन्यवाद	:	श्री चाँदमल मेहता

स्वागत - भाषण

- श्री साहू श्रेयांसप्रसाद जैन : अध्यक्ष, भारतीय ज्ञानपीठ

आचार्य विमलसागरजी महाराज,
मुनि भरतसागरजी, क्षु० सन्मतिसागरजी, आर्यिकाजी
विद्वन्मण्डली, बाहर से आये हुए अभ्यागत ।

आज यह शुभ दिवस है और मंगलमय अवसर है । हमारे निमन्त्रण पर, भारतीय ज्ञानपीठ के निमन्त्रण पर, आचार्य शान्तिसागर स्मारक ट्रस्ट के निमन्त्रण पर जो भी विद्वान यहाँ पधारे हैं उनका स्वागत एवं अभिनन्दन करता हूँ । आपके आने से हमको बल मिला है और इस समारोह की शोभा और गरिमा प्राप्त हुई है । यह प्रथ[म] अवसर है जहाँ सब प्रकार के विद्वान, आधुनिक और मूर्धन्य पुरातन विद्वान, दोनों का समागम हो रहा है । मुझको आशा ही नहीं बल्कि दृढ़ विश्वास है कि सब मिलकर कुछ महत्वपूर्ण विचार करेंगे, अच्छा निष्कर्ष निकालेंगे । और, अब तक जो कार्य हुआ है उसका लेखा-जोखा करेंगे तथा भविष्य में होने वाले कार्य की रूपरेखा बनायेंगे । इस का[र्य] में सभी विद्वानों का सहयोग अपेक्षित है । मुझको दृढ़ विश्वास है कि इस कार्य में सभी का सहयोग प्राप्त होगा ।

एक बात मैं यह कह देना चाहता हूँ कि कुछ बातें हमारे पास ऐसी आई हैं कि शायद हम सब विद्वानों को निमंत्रण नहीं दे सके हैं । मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि हमारी ओर से किसी विद्वान की उपेक्षा नहीं है । या तो वे हमारे स्मरण से नाम रह गया है या हम जो चार सत्रों में विचार ले रहे हैं सम्भवतः उनका उनमें विशेष अधिकार न समझा गया हो । कोई भी कारण हो मैं सबसे क्षमा याचना करता हूँ । यह हमारा प्रथम चरण और प्रथम कड़ी है । आइंदा हम अन्य अधिकारी विद्वानों को निमंत्रित करने की कोशिश करेंगे । कुछ विद्वानों को आवास की अव्यवस्था के कारण शायद कुछ असुविधा भी हुई है। उसको भी मैं आप से क्षमा माँगता हूँ । यह जो जगह है बम्बई से दूरी पर है । हम आचार्य श्री के सान्निध्य में ये गोष्ठी करना चाहते थे । इस कारण जो असुविधा हुई हो उसके लिये पूज्य विद्वानों से, जिनको असुविधा हुई है, मैं क्षमा याचना करता हूँ ।

दूसरी बात यह कि इस संगोष्ठी का प्रयोजन क्या है यह बात मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ । वह यह कि न यह व्याख्यानशाला है और न यह प्रवचन सभा है । यहाँ अपने को अब तक जो उपलब्धि हुई है और जो हमारी संभावनाएँ हैं उस पर आपको विचार करना है । जैनविद्या के जो पहलू हैं, उनके हमने 18 क्षेत्र या विषय

गये हैं । उन सब पर जो काम हुआ है उसका संकलन करना है और आयंदा जो कार्य होना है उसको नियोजित करना है, तथा विद्वानों को कार्य-विभाजन करना है । ये सब अपने आप में महत्त्व के विषय हैं । उन सभी विषयों के प्रख्यात पंडित, वे चाहे पुरातन हों चाहे आधुनिक हों यहाँ उपस्थित हैं । वे सब मिलकर आगे रूपरेखा बनायेंगे । हमारी समाज में, जैन धर्म में, जैन पुस्तकों में, जैन शास्त्रों में जो हीरे-जवाहरात भरे पड़े हैं हमको उन्हें समाज के सामने लाना है और उनकी उपयोगिता बढ़ानी है । उपयोगी तो वे हैं ही । लेकिन उपयोग का दिग्दर्शन दूसरे लोगों को कराना है । जैनधर्म और जैन दर्शन इतना विशाल है और मैं समझता हूँ कि वह विज्ञान के बहुत करीब है । आज का व्यक्ति विज्ञान के द्वारा धर्म को समझना चाहता है । आप में वह शक्ति है । हमको सबका सहयोग प्राप्त होगा और हम अपने धर्म को विज्ञान के द्वारा देश और विदेश में फैलायेंगे, उसका प्रचार-प्रसार करेंगे । इससे हमारी समाज की गरिमा बढ़ेगी । हमारे दर्शन की लोगों को जानकारी प्राप्त होगी । प्रचार-प्रसार अपने अपने कोई कर्तव्य नहीं । पर, हमारे पास जो निधि है उसका हम वितरण करें और जिस प्रकार दुनिया में अशान्ति बढ़ रही है उस अशान्ति को दूर करने का प्रयास करें ।

पहले सत्र में तो पुरातत्व और इतिहास का विषय है । उसके सम्बन्ध में भाई लक्ष्मीचन्द्रजी, डा. नेमीचन्दजी आपको सविस्तार बतायेंगे । मेरा तो इतना ही कहना है कि जो मेरी कल्पना है उसे वे अपने पाण्डित्यपूर्ण शब्दों में आपसे कहेंगे । मैं चाहता हूँ जैन समाज का इतिहास-सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक लिखा जाए । जब मैं सामाजिक इतिहास की बात करता हूँ तो इसका तात्पर्य यह है कि मैं बहुत पीछे नहीं जाना चाहता - 100 वर्षों में हमारे जितने विद्वान्, जितने मुनिश्री, जितने भी हमारे समाजसेवी, जितने भी हमारे उपन्यासकार, जितने भी हमारे कवि-लेखक हैं उनका कृतित्व समाज के सामने रखें और गौरव बढ़ायें । जब हम अपने विद्वानों का और लेखकों का और दूसरे जो लोग हैं उनका कार्य समाज के सामने रखेंगे तो उनको भी प्रोत्साहन मिलेगा और हम कह सकेंगे कि उपलब्धि की इतनी मात्रा, जिसको हम सबके सामने ला रहे हैं ।

एक बात और कहना चाहता हूँ कि इस गोष्ठी के दौरान आपको यह सोचना और समझना होगा कि कौन विद्वान् किस विषय पर लिख सकता है । जो विषय हम सबके साथ मिलकर निर्धारित करेंगे उनका काम किस तरह बढ़ाया जाये, और उस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए एक विद्वान्, दो विद्वान मिलकर कार्य करें, रूप-रेखा बनायें । और उनके लिए फैलोशिप, स्कालरशिप का प्रबन्ध किया जाये ।

एक बात यह है कि भारतीय ज्ञानपीठ के जो लोकोदय ग्रन्थमाला के मन्त्री हैं, रावोजी, वे भी यहाँ आये हैं । उनको इसलिए आमंत्रित किया गया है कि आपको

ध्यान से चुने । हमारे जो पुराण हैं जो हमारा नैतिक साहित्य है उनमें से तत्त्व निकालकर उपन्यास लिखाये जायें ताकि वे आम जनता के लिए उपयोगी हों । मैं यह नहीं चाहता कि कोई तथ्य तोड़ मरोड़ कर रखा जाय । कल्पना के सहारे इस चीज को आगे बढ़ाया जाय ताकि ज्यादा ग्राह्य हो, ज्यादा उपयोगी हो । ज्यादा रुचिकर हो । ये सारा प्रोग्राम आपके सामने रहे । और चूंकि समय कम है इसलिए समय का बंधन रखना पड़ेगा । कुछ प्रश्न और उनके उत्तर भी हमको देने पड़ेंगे तो जो भी हमारे आमन्त्रित विद्वान् हैं वे ही संबन्धित प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं । और भी जो अभ्यागत लोग हैं , या दूसरे श्रोता हैं वे यदि प्रश्न करना चाहें तो सीधा विद्वान् के पास भेज दें ताकि इसमें ज्यादा समय न लगे । या हमारे पास भी भेज सकते हैं हम उन विद्वान् से उत्तर दिलाने का प्रयत्न करेंगे । इन शब्दों के साथ मैं आपका पुनः स्वागत करता हूं, अभिनन्दन करता हूं और आपसे अपेक्षा करता हूं कि आप इस गोष्ठी को सफल बनायें ताकि आगे होने वाली संगोष्ठी को ऐसा उदाहरण मिले, जो हमारे लिए हर प्रकार से उपयोगी हो । धन्यवाद ।

पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री (अध्यक्षीय भाषण)

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी

मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैन धर्मोस्तु मंगलम् ।।

श्रीमान् साहूजी, हेगड़ेजी, पं० कैलाशचन्द्रजी,

और बाकी मेरे सब साथियों ।

सबसे प्रथम, जन-जन के द्वारा आराध्य अरहन्त-सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु स्वरूप पंच परमेष्ठी को वंदना करने के पश्चात् अपना भाषण प्रारंभ कर रहा हूं - बन्धुवर । आपने मुझे जो गरिमामय पद पर प्रतिष्ठित किया, आपका अनुग्रह है । परन्तु मैं आप सब लोगों के भीतर छोटा हूं, न ज्ञान वृद्ध हूं और न शरीर द्वारा सशक्त हूं और इस स्थिति में यदि मैं कहूं कि इस पद पर मेरा चुनाव ठीक नहीं हुआ तो एक प्रकार से आयोजकों पर आरोप होगा । इसलिए मैं समझता हूं कि मुझे आयु वृद्ध देखकर ही चुना गया है । और उस योग्यता को तो स्वीकार करता हूं ।

आज इस मंगलमय स्थान पर जिसकी परम पूज्य आचार्य श्री 108 शान्तिसागर महाराज के स्मारक स्वरूप बम्बई की समाज ने इस वृहद रूप में स्थापना की है, सब उपस्थित हैं । युग के आदि में होने वाले भगवान् ऋषभदेव और उनके दो पुत्र जो कि उन्हीं की परंपरा में सिद्ध दशा को प्राप्त हुए ऐसे आदि के तीन मोक्षगामी पुरुषों की मूर्ति स्थापित होने से इस स्थान को बहुत बड़ा महत्व प्राप्त हुआ ।

आचार्य महाराज के चातुर्मास की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है और इस तरह इस पवित्र वातावरण के भीतर यह विचार किया गया । अतः समस्त विद्वज्जन मिलकर विचार करें । यह तो आप जानते हैं कि जिन धर्म तो आत्म धर्म है । और आत्मधर्म को पालना प्रत्येक आत्मा कर सकती है, इसके लिए किसी संगठन को - किसी सम्प्रदाय की आवश्यकता नहीं होती । इसलिए व्यक्ति अपना आत्मधर्मपूर्ण पालन करने के लिए साधु पद को धारण करता है । तभी आत्मसाधना के मार्ग पर आगे बढ़ सकता है । परन्तु फिर भी जो साधुपद का आश्रय नहीं कर सकते उन्हें श्रावक पद का आश्रय करना पड़ता है । हमारे आचार्यों ने श्रावक पद भी धर्म पालन करने वालों का पद रखा है । यद्यपि श्रावक के जीवन में पाप बहुत है,

उसके रहते हुए भी उसने एक देश - सोलह आने में से एक आना भी व्रत यदि स्वीकार किया है, धर्म पर श्रद्धा रखी है तो उसको भी स्थान धर्म में दिया है। प्रकारान्तर से देखा जाय तो हमारे ऊपर उनका बड़ा अनुग्रह है यद्यपि धर्म मार्ग में हमें 16 आना स्वावलंबन करके चलना चाहिये, पर यहाँ स्वावलम्बन में मार्ग की केवल श्रद्धा की है। एक कदम बढ़ाया है, दो कदम बढ़ाये हैं बाकी 14 आने पापमय जीवन चल रहा है। हमारे 14 आने पाप को वे पचा रहे हैं लेकिन हम उनके आने-दो-आने धर्म को न पचा सकें तो हमारी बड़ी कृतघ्नता होगी। इन श्रावक लोगों का भी एक सम्प्रदाय होता है। धर्म के पालन करने वाले समुदाय को सम्प्रदाय के नाम से कहा जाता है। सम्प्रदाय के आधार पर ही धर्म की परम्परा चलती है। साम्प्रदायिक संगठन न हो तो वह धर्म नहीं चल सकता। लोटा चारों ओर से बंधा हुआ मुड़ा हुआ न हो तो उसमें रखा हुआ दूध ढलने वड़े तालाब के सामने पानी में ही चला जायेगा। हमारा एक सम्प्रदाय है एक संगठन है। इसलिए हमारे धर्म की परम्परा चल रही है। परन्तु अब यह संगठन धीरे-धीरे टूट रहा है।

धर्म की स्थिति सबसे प्रथम तो उसके साहित्य के आधार पर रहती है। एक बार सम्प्रदाय समाप्त भी हो जाय तो भी दुनिया के सामने जब उसका साहित्य आता है तो उस आधार पर भी धर्म जीवित रहता है। परन्तु वह धर्म व्यक्तियों में नहीं रहता है। केवल कथा करने की बात रह जाती है जैसे कि यहाँ अपने भारतवर्ष में बौद्ध धर्म की स्थिति हुई। हमारा धर्म इसलिए बचा हुआ है कि हमारे साधुओं ने हम श्रावकों को थोड़ा-थोड़ा सा भी धर्म का अंश देकर उसे जीवित रखा है। जो अंश हमारे भीतर है, वही हमारी जिन्दगी है। और उसी से हमारी धर्म की परम्परा चल रही है। श्रावक वर्ग, साधु वर्ग और साहित्य ये तीनों चीजें सम्प्रदाय के चलने के लिए होती हैं। प्रकारांतर से हमने देवशास्त्र और गुरु का नाम लिया है। देव तो आराध्य है वह तो यहाँ है ही नहीं। परन्तु उनके प्रतिबिम्बों में स्थापना निक्षेप करके उनको हम जिनेन्द्र बनाकर ही पूजते हैं। क्योंकि इसके सिवाय कोई दूसरा इलाज हमारे पास नहीं है। समवशरण यदि साक्षात होता तो भी हम भगवान् की मुद्रा ही देख सकते आत्मा नहीं। तो आत्मा तब भी नहीं दीखती थी, और आत्मा आज भी नहीं दीख सकती है केवल उनका गुणानुवाद तब भी कर सकते थे और आज भी कर सकते हैं कोई कमी नहीं है। उनकी वाणी हमारे पास है। गुरुजन अपने पास में हैं। इसलिए देखा जाय तो धर्म पालन के सारे साधन हमारे पास में हैं। हमारे समाज को 100 वर्ष भीतर जिन्हें मैंने देखा है - आचार्य शान्तिसागर महाराज, पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी, जिनका आज जन्म दिवस

है । उस जन्म दिवस के नाते हम सबकी श्रद्धा के वे भाजन थे । क्योंकि वे जैन समाज के भीतर स्वयं जैन न होते हुए भी केवल अपने पुरुषार्थ से उठे । उस समय समाज में कोई आचार्य नहीं थे , मुनिजन नहीं थे जिन्होंने उनको दीक्षा दी हो । बाल्यावस्था से केवल अपने पुरुषार्थ से पूर्व संस्कार के वशात् उन्होंने जैनधर्म को स्वीकार किया और कट्टरता के साथ स्वीकार किया । उनके सामने इतना विपरीत समय था कि कोई उन्हें शिक्षा देने को तैयार नहीं था । जगह जगह दुरदुराये जा रहे थे । ब्राह्मणों के पास जायें तो (जैनियों में कोई पंडित नहीं था जिनके पास जायें) किताब फेंक देते थे - तुम जैन हो, तुमको नहीं पढ़ाते । ऐसे घनघोर वातावरण के भीतर भी उन्होंने प्रकाश की किरण पाई । और उसका समाज के अन्दर प्रकाश किया । उनका बहुत बड़ा उपकार है । इस समय उनका स्मरण करता हुआ श्रद्धा व्यक्त करता हूँ ।। दूसरे आचार्य शान्तिसागर महाराज थे जिनका यह स्मारक है । उन्होंने समाज में कितना बड़ा कार्य किया । समय नहीं है कि आपको बता सकूं । जहाँ पर कभी कोई मुनि रेल के डिब्बे के अन्दर या मोटर के अन्दर बन्द करके निकल सकते थे, बाहर कोई निकल नहीं सकता था, वहाँ आचार्य महाराज ने हिम्मत की । दिगम्बर रूप में पद विहार किया । दिल्ली में जब उनका चातुर्मास हुआ तो लोगों ने कलेक्टर की बात स्वीकार कर ली थी कि यदि वे कपड़ा नहीं पहनते - चटाई नहीं ओढ़ते तो उनको चारों तरफ से लोग घेरकर के चलो । लोगों को नग्नता का पता न चले । देहली जाने के बाद मुझे पता चला । मैंने आचार्य महाराज से कहा कि आपने ऐसा कैसे स्वीकार किया - तो बोले मैंने तो कुछ नहीं किया । तब मुझे लगा कि लोगों ने बिना महाराज की अनुमति के स्वीकार किया होगा क्योंकि महाराज ने किया नहीं । सब बात खुल गई । तो महाराज ने लोगों से पूछा - क्यों भाई, किसी शर्त पर मेरा चातुर्मास है ? नहीं महाराज कोई शर्त नहीं । आप लोग मुझे घेरकर चलते हैं इसलिए मुझे कुछ शंका भी होती है । लोगों ने कहा महाराज मुस्लिम बस्ती है - अंग्रेजी राज्य है, कठिनाई की बात है । महाराज ने कहा कि नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता । मैं कल से बिना किसी आदमी को साथ लिये जाऊँगा । पूरी देहली में । असेम्बली भवन के सामने, मस्जिद के सामने सब जगह जहाँ-जहाँ सरकारी भवन हैं - नग्न दिगम्बर निर्बाध होकर जाऊँगा । और वे गए । उसके बाद जब मेरठ को चले तो तमाम मुस्लिम बस्तियों को पारकर चले । जैन मुनियों का अबाध विहार करने का सबसे बड़ा श्रेय आचार्य शान्तिसागर को है । मुनिव्रत की परम्परा के संचालन का श्रेय भी उनको है । उनके प्रति मैं भी बार-बार वन्दना करता हूँ ।

श्री पं. गोपालदास जी वरैया, ब्र0 शीतलप्रसादजी, बैरिस्टर चम्पतरायजी, और

भी हमारे सेठ माणिकचन्द्रजी, साहू शान्तिप्रसाद जी, और सेठ हुकमचन्दजी, ऐसे बड़े-बड़े नेता हुए हैं जिन्होंने हमारे समाज का पथ प्रदर्शन किया । आज हमारा सौभाग्य है कि उसी साहू परिवार में साहू श्रेयांसप्रसादजी नक्षत्र की तरह उदय को प्राप्त हुए । उनके चित्त में भावना पैदा हुई कि हमारे विद्वान दो वर्गों में हैं । कुछ तो प्राचीन संस्कृति के आधार पर संस्कृत के विद्वान हैं, कुछ आधुनिक भाषा के आधार पर अंग्रेजी के विद्वान हैं । पहले चर्चा भी थी कि कोई ऐसे विद्वान् तैयार हों जिनको दोनों भाषाओं का ज्ञान हो, और तैयार भी हुए पर हुआ असल में ये, कि जिन लोगों ने लौकिक भाषा को प्रधानता से ग्रहण कर लिया उनका जैनधर्म पर से विश्वास उठ गया, भले ही उन्होंने पढ़ा हो । और जैन विद्वान् जो तैयार हुए उन्हें आधुनिक भाषा और विज्ञान पर विश्वास नहीं रहा । दोनों अविश्वास की भूमिका में चलते रहे । इससे कुछ कार्य नहीं हो सका । हमारे साहूजी ने हमको, आपको सबको एक साथ लाकर बिठाया है । हमें आज विचार करना है कि अब तक हमने क्या उपलब्धि की है और क्या उपलब्धि हमको करना चाहिये इसको सब मिलकर सोचें और सोचकर अपने साहित्य को अपनी श्री को अपने धर्म को आगे बढ़ाने की योजना बनावें इसके लिए यह सब कार्य हुआ है । मैं इतनी सूचना देकर आप सबसे क्षमा याचना करता हुआ अपना भाषण समाप्त करता हूं ।

....

संयोजकीय वक्तव्य

- लक्ष्मीचन्द्र जैन, निदेशक, भारतीय ज्ञानपीठ

परम पूज्य आचार्य विमलसागरजी महाराज,
मान्य मुनिवर, साधु-तपस्वीगण, आर्यिकामाताजी और विद्वत्गण,
भाईयों और बहिनो ।

जहाँ तक इस संगोष्ठी का मूलभूत प्रयोजन है उस पर पत्र व्यवहार द्वारा प्रकाश डाला गया है । एक बात तो यह स्पष्ट होनी है कि गोष्ठी बम्बई में क्यों और बम्बई में भी इतनी दूर पोदनपुर में क्यों - जहाँ प्रबन्ध कठिन है, आवागमन के साधन बहुत कम हो जाते हैं । इसे किसी केन्द्रीय स्थान में आयोजित किया जा सकता था । बात यह है कि यह एक पुण्य-तीर्थ है । आचार्य शान्तिसागरजी महाराज की जन्म जयन्ती और उनका पुण्य-स्मरण यहीं ही सार्थक हुआ है । स्वयं आचार्य विमलसागर जी महाराज संघ सहित विराजमान हैं । कई पुण्य-सुयोग यहाँ मिल गये जिनके कारण यह बहुत सामयिक और सहज हुआ कि ये संगोष्ठी यहीं ही बुलाई जाए । इस कारण जो कष्ट हुआ हो उसके लिए कृपया यह संदर्भ ध्यान में रखें और क्षमाभाव से हमारी त्रुटियों को स्वीकार करें ।

आप इस बात को कृपया अनुभव करें कि इस प्रकार की यह संगोष्ठी आधुनिक ढंग की हमारे जीवन-काल में हो रही है । दोनों परम्पराओं के विद्वान् यहां एकत्र हुए हैं । जिस गहराई से हमारे विद्वानों ने, परम्परागत विधि से, शास्त्रों का अध्ययन किया है और आचार्यों द्वारा जो पद्धति स्थापित की गयी उसको इन्होंने आगे बढ़ाया है । हमारे आचार्यों ने बड़े-बड़े विशाल ग्रन्थ लिखे और जब ग्रन्थ विशाल हो गये तो सूत्र बना दिये । सूत्र जब दुर्बोध हो गये तो फिर व्याख्या की गई । यह इसलिए कि जो सिद्धान्त है, जो हमारा दर्शन है, जो धर्म है और उसका जो विद्वतामूलक और अनुभवमूलक आधार है वह हृदयंगम हो । पुरानी पद्धति के विद्वान अपनी गहन विद्वता के साथ आचार को निभा रहे हैं । और प्रेरणा दे रहे हैं कि नई पीढ़ी भी उस ओर बढ़े ।

यहीं पर हम एकत्र इसलिए हुए हैं कि उनके ज्ञान की जो गहराई है, उनके चिन्तन की व्यापकता है उसे हम लोग समझें । साथ ही प्राचीन पद्धति के विद्वानों के सामने हम निवेदन करें कि आज के नये अध्येता किस प्रकार विषय को ग्रहण करते हैं । कौन सी नई पद्धति है जिसमें विचार को नया आयाम दिया जाता है । नई भाषा, नया ईडियम, मुहावरा अपनाया जाता है ताकि आज के जो नवयुवक हैं, जो

विद्वान हैं वे अपनी पद्धति से इसे समझें । हमारा तत्वज्ञान हृदयगंम तभी होगा जब वह अनुकूल भाषा में आये । भाषा के जितने स्तर हैं, पाठकों के, श्रोताओं के जितने स्तर हैं उसके अनुरूप हमारी शैली हो । विद्वानों के लिए विद्वानों की भाषा में, गृहस्थों के लिए गृहस्थों की भाषा में, जन समुदाय के लिए कथा-कहानी और लोक रीति और लोकनीति की विधि से सब बातें कही जायें । तो ये तो परंपरा चली है - भगवान् महावीर का ये शासन है - वीर का शासन है । हम सब उसके अन्तर्गत विचार करते हैं और काम करते हैं। पंडितजी ने कहा - मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मो स्तु मंगलम् ।

हम अपनी परम्परा को आज जहाँ तक लाये हैं, उसका लेखा-जोखा करें और देखें कि प्रत्येक क्षेत्र में क्या-क्या उपलब्धि हुई है । प्राचीन लोगों की क्या उपलब्धि थी, हमारी पीढ़ी ने उसमें क्या योगदान दिया है और हम लोग आगे क्या करना चाहते हैं - क्या करना चाहिये । कौन से क्षेत्र अभी ऐसे हैं जिसमें अधूरापन रह गया है । ये अधूरापन अपने जैनधर्म की दृष्टि से ही नहीं बल्कि इस दृष्टि से भी कि जिसे हम 'इंडोलोजी' भारतीय विद्या कहते हैं उसे सम्पूर्णता प्राप्त हो और उसकी व्याप्ति बढ़े । प्राचीन विद्वानों से हमें जो लेना है, जो सीखना है, वह सीखें । नई पीढ़ी के लिए, नई पद्धति के पाठकों के लिए, विदेशी पाठकों के लिए, जो पद्धति समीचीन है उसे अपनाएं । पाद-टिप्पण, कमेंट्री, शब्दकोश, पूरक टिप्पणी, परिशिष्ट - आदि से संयुक्त हमारा संपादन हो । प्राचीन ज्ञान को हमें इस पद्धति से ढालना है ।

जैसा कि आपने कार्यक्रम में देखा हमने चार सत्रों के लिए चार विषय अलग-अलग चुने हैं । उसमें इतिहास है - इतिहास जिसमें संस्कृति है, समाज है, राजनीति है । ये अपने आप में इतना बड़ा विषय है कि चार सत्र तो इसी एक विषय पर ही होने चाहिए । इसके बाद इसमें जोड़ दिया पुरातत्व और स्थापत्य । उसके भी दो-तीन सत्र तो हो ही सकते हैं । पुरातत्व और स्थापत्य तथा कला सम्बन्धी उपलब्धियों का ज्ञान एक नई उपलब्धि है, हमारीपीढ़ी की । हमने इन विषयों को संसार के सामने रखा । लोगों की आँखें खुलीं कि हम तो समझ रहे थे कि जैनधर्म में दर्शन, सिद्धान्त, व्रत उपवास और नियम की पद्धति ही मुख्य है । परउन्होंने जब देखा कि जैन समाज की तमाम कला-विभूति व्यापक है - मूर्तियाँ हैं, मंदिर हैं, काष्ठ शिल्प है, चित्र-फलक, स्तंभ, तोरण और गुहामंदिर है, शिलालेख है, तो लोगों को पता चला कि केवल यह बात नहीं है कि ध्यान करके बैठ गये या आत्म कल्याण ही की एकमात्र साधा । हम क्यों नहीं बताते कि हमारी जीवन-पद्धति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष/। कलायेंहैं । सोचिये तो सही कि भगवान् आदिनाथ ने क्या किया ? उन्होंने कलाओं को, लिपि को, अंक विद्या को, गणित को प्रश्रय दिया । असि, मसि, कृषि, वाणिज्य की अर्थ-व्याप्ति की जीवन

के संदर्भ में रखकर हम सोचें ।

आज हम कैसे न मानें कि ये सब हमारी समृद्धि नहीं है । धर्म, दर्शन भी जीवन के लिए है । वह आत्म-कल्याण के लिए है ही :

कला बहत्तर पुरुष की तामें दो सरदार,

एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार ।। (इंकार)

कितना बड़ा सामंजस्य है जैन धर्म में । हिनाई नहीं किया जा सकता । जीविका का, जीविका के साधनों का, लौकिक अभ्युदय का जो स्थान है उसको साधना भी हमारा कर्तव्य है । उस मंजिल से जब हम गुजरेंगे और हमारा जीवन संतुलित होगा तभी हमारा जीवन सार्थक होगा । यह बात बहुत गहराई से समझने की है कि कहीं ऐसा तो नहीं हो रहा है कि हमारे जो तमाम प्रवचन हैं, हमारी जो तमाम दृष्टि है धर्म और दर्शन की वो कहीं दूसरे पक्षों को नजर तो नहीं रहो है । दूसरी ओर, कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम लोक-व्यवहार के दूसरे पक्ष इतने जोर से पकड़ के बैठ गये हैं - कि हमारी जो मूल दृष्टि है, धर्म की, वह लोप हो गई है । जीवन में श्रेय है और प्रेय भी है ।

प्रेय में सुख मिलता है । जो भी चीजें प्रिय लगती हैं वह प्रेय है । मगर श्रेय उससे ऊपर है । जो श्रेयस् है उसी से आत्मा का कल्याण होता है । तो श्रेय और प्रेय में बड़ा विवेक करना पड़ता है और चुनना पड़ता है । यही हमारे धर्म की मूल भित्ति है । समाज के संचालन की समाज की प्रवृत्ति की, समाज को गति देने वाले दोनों तत्वों की अपनी अपनी स्थिति है । दोनों में संतुलन लेकर हमें चलना पड़ता है, और मानव-विकास के अन्तिम लक्ष्य को सामने रखना पड़ता है ।

गोष्ठी में इतने सारे विषय हमने रख लिये हैं, इतने विद्वानों को आमंत्रित कर लिया है । सबसे पहली बात यह कि हमें सब विद्वानों के दर्शन हो । वे एकत्र हों । न केवल इस गोष्ठी के माध्यम से बल्कि व्यक्तिगत सम्पर्क से हम मालूम करें कि किसने क्या किया है, आगे क्या करना चाहते हैं । उसके आधार पर क्या योजना बन सकती है । मात्र योजना बनाकर ही हम सन्तुष्ट न हों । जैसा कि श्री साहूजी ने कहा, उसमें से कुछ निष्पत्ति, कुछ फल निकलना चाहिए । फल ये निकले कि कुछ कार्यक्रम बने । आगे उसे कैसे बढ़ाया जाये ? ऐसी अनेक उपलब्धियाँ हैं जिनका हमें पता ही नहीं है । हममें से कितनों को मालूम है कि किन-किन विद्वानों ने कितना परिश्रम करके क्या-क्या लिखा है । आगे हम उनसे निवेदन करें कि आप मे बताइये कि इस विषय को किस तरह आप आगे बढ़ाना चाहते हैं । उसके लिए क्या साधन चाहिये । वे साधन कहाँ से जुटायें, कैसे करें ।

मैं ये जानता हूं कि कह देना बड़ा आसान है कि विद्वान् शोध करें - रिसर्च करें और उनको हम स्कालरशिप दें या शोधवृत्ति दें । उनके प्रकाशन का भी प्रबन्ध हो,

पर इस काम को कोई एक संस्था, कोई एक व्यक्ति कर नहीं सकता । आप जो यहाँ आये हैं और जो यह समझते हैं कि ये ये काम करने के हैं, उनको करने के लिए जो साधन हमें चाहिए उनके विषय में जो साधन सम्पन्न हैं, चाहे व्यक्ति हों, चाहे संस्थाएँ हों - वे मिलकर सारे कार्यक्रम को अपना मानें । यह सब मात्र भारतीय ज्ञानपीठ का नहीं है, यह मात्र आचार्य शान्तिसागर स्मारक का कार्य नहीं है । समग्र जैन-विद्या का कार्यक्रम बिना आप सबके सहयोग के, बिना केन्द्रित ढंग से सोचने के हो नहीं सकेगा ।

संयोजक के नाते मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि इस एक सत्र में ही वक्ताओं के नाम बहुत हैं । समय बहुत कम है । किसको कितना बुलवायें । बारह व्यक्ति हैं, यदि प्रत्येक 15 मिनट भी न बोलें, 10 मिनट भी न बोले, तो वे कहेंगे कि हमारे साथ तो कोई न्याय होनहीं हुआ और श्रोता अलग असंतुष्ट होंगे कि वे इतने बड़े विद्वान् हैं इनसे तो हम बहुत कुछ सुनना चाहते थे ; इनसे सुनने को हमें क्यों नहीं मिल रहा है । दोनों में कहीं हमको एक सीमा रेखा बाँधनी होगी । आप जो कुछ कहना चाहते हैं, आपने लिख भेजा है । आप सब सार-संक्षेप में बात कहें ताकि दूसरे विद्वानों को भी सुना जा सके । यह तभी संभव होगा जब वक्ता अपनी सीमा साधकर चलें और दूसरों के लिए समय छोड़ें ।

धन्यवाद ।

संयोजकीय वक्तव्य

- डा० नेमीचन्द जैन

मैं इस वक्तव्य से सहमत नहीं हूँ कि जो मैं कहूँगा वही सार्थक होगा, लेकिन फिर भी मुझे कुछ बातें कहनी हैं। प्रवर्तित संगोष्ठी कई कारणों से अपना स्वतन्त्र महत्त्व रखती है क्योंकि यह औपचारिक नहीं है, बल्कि इसके पीछे एक स्पष्ट/असंदिग्ध प्रयोजन है, एक सुनियोजित कार्यक्रम तैयार करने और उसे अमल में लाने की जीवन्त भावना है। इसके माध्यम से पहली बार पुरानी और नयी दोनों पीढ़ियाँ सम्पूर्ण सद्भावपूर्वक समायोजित हैं, इसीलिए, केवल इसीलिए, यह ऐतिहासिक है। इसका अपना सामयिक महत्त्व है। इस संधि-रेखा पर रोशनी की जो रश्मियाँ फूट-फूट पड़ रही हैं उनकी सहमता, उनकी महत्ता से बचा नहीं जा सकेगा। हमें विश्वास है कि यह संगोष्ठी हमें किसी रचनात्मक निष्कर्ष पर अवश्य पहुँचायेगी।

यह पहला मौका है जब परंपरा और आधुनिकता दोनों एक-ही-नाव-पर नौका-विहार के लिए निकले हैं। यह सांस्कृतिक अनुबन्ध का अत्यन्त स्पंदनशील क्षण है जब दो विद्वत्-दल एक सांस्कृतिक, सामाजिक, विद्यागत विकास या अभ्युत्थान पर हस्ताक्षर करने जा रहे हैं। साक्षी हैं आचार्य श्री विमलसागरजी तथा उनका शिष्य-परिवार तथा श्रावकशिरोमणि साहू श्रेयांसप्रसादजी। श्री मेहताजी का योगदान भी इसमें है। वे मेधावी व्यक्ति हैं। उन्हें अभी काफी काम करना है। हमें विश्वास है साहूजी की दूरदर्शिता, सहज आकांक्षा सक्रियता हमें यह धरती प्रदान करेगी जिस पर हम निर्द्वन्द्व बढ़ सकेंगे।

पहला कदम हमारा होगा कि अब तक जो कुछ हुआ है, या जिसे लेकर हमारी स्पष्ट भागीदारी रही है उसका एक वस्तुन्मुख लेखा-जोखा हम तैयार करें। इसे तैयार करने में हमें श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन जैसे समयशिल्पी का उपयोग करना चाहिये जो लगभग आधी शताब्दी के जैन विद्या विकास के साक्ष्य हैं। भाई लक्ष्मीचन्द्रजी भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक हैं उन्होंने आधी शताब्दी के जैन विद्या का विकास देखा है। इससे बड़ा जीवन्त दस्तावेज शायद ही कोई हो, इसलिए मैं सोचता हूँ, वे हमारे साथ हैं सलाहकार की तरह। उनके निष्कर्ष हर तरह से उपयोगी सिद्ध होंगे।

हमारा ध्यान उन संभावनाओं की ओर भी जाना चाहिये, जो विगत एक दशक में अँगड़ाइयाँ भरती रही हैं, किन्तु जिनकी ओर हमने ध्यान नहीं दिया है। इन संभावनाओं का हमें शत-प्रतिशत उपयोग करना चाहिये। जैन समाज साधन-सम्पन्न है फिर याचनापेक्षी, या प्रगतिदरिद्र क्यों है? यह प्रश्न बड़ा और जटिल है। क्या इस संगोष्ठी में हम इस आरोप या चुनौती से मुक्त हो सकते हैं? प्रयत्न करना चाहिये कि

ऐसी चुनौतियों से हम बरी हों, तथ्यों का पूर्वाग्रह-मुक्त मूल्यांकन करते हुए, यह एक प्रबुल बड़ी बात होगी । इन अंगों में हमें उन कठिनाईयों, बाधाओं और समस्याओं को भी ठी से देख लेना चाहिये जो व्यावहारिक हैं । और जो हमारी प्रायोजनाओं को मुक्त कर सकता है । हमें इन बाधाओं से निपटने के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़ देना होगा । यह भी एक महत्त्वपूर्ण काम होगा । हम जो कुछ भी प्रगति आज कर रहे हैं, या जो विकास हमारा हो रहा है, उसमें अधिकांशतः व्यक्तिगत स्वार्थ ही अधिक आड़े आता है । मैं कहना चाहता हूँ, इन बाधाओं से निपटने के लिए हमें व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़ देना होगा और निर्मल मन तथा बहुत उदार मिशनरी भावना से काम करना होगा । मुझे भरोसा है कि यह संगोष्ठी प्रगति के भावी संयोजन/की दृष्टि से अविस्मरणीय सिद्ध होगी ।

संस्कृति, इतिहास, प्राविधिकी ऐसे विषय हैं जो नये और उल्लेखनीय हैं । मैनेजमेन्ट (प्रावन्धिकी) विषय हमारे तत्काल काम का है । हमारी बहुत सारी संस्थाएँ हैं, जिनका प्रबन्ध हमें करना होता है । तरह-तरह के लोग यह काम करते हैं, लेकिन वे सब अप्रशिक्षित होते हैं । यह ठीक नहीं है । हमें प्राविधिकी जैसे विषय का उपयुक्त प्रशिक्षण देना होगा । चाहे कोई मुनीम हो, पुजारी हो, प्रबन्धक हो, उसमें संस्था चलाने की योग्यता/लियाकत उत्पन्न हमें करनी होगी, इसलिए आगामी संगोष्ठियों के लिए प्राविधिकी विषय भी हमने रखा है जिस पर आगे कभी एक संपूर्ण सत्र का आयोजन हम करेंगे । गणित, इतिहास, सोशल स्टडी, सोशल स्टडी ऑफ़ जैनिज्म आदि बहुत महत्त्व के विषय हैं । इस पर अभी कुछ हुआ नहीं है ।

मैं कहता हूँ कि यदि सारी संस्थाओं के वार्षिक विवरण ही एक म्यूजियम में रख लिये जायें तो अब तक इतनी संस्थाएँ हमारी बनी हैं, इस शताब्दी में जिनके आरंभ से अंत तक सारे विवरण हम एकत्रित करें । मैं कह सकता हूँ कि इनके द्वारा हम एक प्रामाणिक सामाजिक इतिहास का जनोपयोगी लेखन कर सकते हैं, लेकिन मैं नहीं समझता कि इतना बड़ा काम कोई व्यक्ति कर पायेगा । बहुत-सी संस्थायें हैं भारतीय ज्ञानपीठ इस संदर्भ में काफी महत्त्व की है । वह विगत चार-पाँच दशक से अविरल यह काम कर रही है । और भी संस्थाएँ हमारे सामने हैं । श्री महावीरजी के श्री खिन्दूकाजी यहाँ हैं । श्री मोहनलाल जी, काला और भी बहुत सेलोग हैं । तीर्थक्षेत्र कमेटी के मन्त्री श्री लुहाड़ेजी यहाँ हैं । प० धन्यकुमारजी (कटनी) यहाँ हैं, सुकुमारचन्दजी (मेरठ) यहाँ हैं । हम लोग, जो समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं, इस बात को आगे बढ़ा सकते हैं, अपने स्वार्थों को अलग रखकर ।

मैं बताना चाहूँगा कि इस संगोष्ठी में कम-से-कम 7 प्रान्तों के भाई बैठे हैं । महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान, बिहार, दिल्ली और उत्तरप्रदेश के विद्वान्

यहाँ है। कहा जा सकता है कि ये सारे देश का प्रतिनिधित्व करने वाली संगोष्ठी है। हम जानते हैं कि हमारी कुछ सीमाएँ और विवशताएँ हैं। बहुत सारी अड़चनें हमारे सामने हैं। बहुत सारे विद्वान् यहाँ आये हुए हैं, कुछ को निमन्त्रण भेजकर हमने यहाँ बुलाया, कुछ को कोई और निमन्त्रण गया। उनमें से किसी एक को मानकर चले आये। बड़ी कठिनाई हमारे सामने यह है कि हम उन सबको संभवतः समय नहीं दे पायेंगे। न्याय करना चाहते हैं दोनों के साथ। श्रोता-समूह के साथ भी, लेकिन हमारी कुछ विवशताएँ हैं जिन्हें निष्पक्षतापूर्वक परिभाषित कर लेने की जरूरत होगी। मैं उन विद्वानों से, जिन्हें हम समय नहीं दे पायेंगे, बहुत विनयपूर्वक कहना चाहेंगे कि वे किंचित् भी अन्यथा न मानें, इसलिए कि हमारी विवशताएँ हैं जो लगभग अपरिहार्य हैं।

अभी श्रेय और प्रेय की बहुत अच्छी, बहुत सूक्ष्म व्याख्या मेरे अग्रज श्री लक्ष्मीचन्द्रजी ने की है। मैं समझता हूँ काफी अच्छे संकेत उनके गोष्ठी प्रवर्तन में हैं। कुल मिलाकर मैं कहना चाहूँगा कि यह एक बहुआयामी संगोष्ठी है। इसके कई फैसेट्स (Facets) हैं। मैं देख रहा हूँ कि श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी उत्तरभारत से हैं, श्री हेगड़ेजी दक्षिण भारत से। यह सेतुबन्ध भी मुझे अच्छा लग रहा है। दोनों रचना-निष्ठ शक्तियाँ हैं। ये शक्तियाँ हमारे सांस्कृतिक, सामाजिक उत्थान में, पूरी लगन से लगी हुई हैं। यहाँ जैन विद्या पर हम भारतीय प्राच्य विद्या के सन्दर्भ में सोच रहे हैं। यह बहुत बड़ी देन इस संगोष्ठी की भारतीय विद्या को होगी कि हम प्राच्यविद्या के सन्दर्भ में जैनविद्या की उज्ज्वलताओं को सामने लायें।

बम्बई के भी बहुत से लोग हैं श्रीमती सरयू दफ्तरी, श्रीमती सरयू दोशी, सेठ लालचंद जी - तमाम लोग हैं। सहज ही सभी की भागीदारी इसमें हो जाती है। तो मैं नहीं समझता कि किसी तरह से विफल होने की जरूरत हमें होगी। मैं नहीं समझता कि किसी मोर्चे पर हम विफल होंगे - बिल्कुल नहीं सोचता।

जहाँ तक बुजुर्ग पंडितों का प्रश्न है पं० कैलाशचन्द्रजी का आशीर्वाद हमारे साथ है, पं० पन्नालालजी का हमारे साथ होगा, पं० जगन्मोहनलाल जी अपना आशीर्वाद हमें दे ही चुके हैं। कोठियाजी हमारे साथ हैं, मैं समझता हूँ सारा पंडितवर्ग हमारे साथ है। मैं तो सोचता हूँ कि ऐसा यह पहली बार ही हो रहा है।

सबसे पहले इसे रेखांकित कर रहा हूँ (लाल स्याही से) कि संगोष्ठियों (सेमीनारों) में हम सबको देखा नहीं और आज वे सब साथ हैं, जो युनिवर्सिटीज में काम कर रहे हैं, विश्वविद्यालयों में जैनविद्या का अलग से विभाग चला रहे हैं; प्राकृत का विभाग चला रहे हैं, दर्शन का विभाग चला रहे हैं, कोई प्राचार्य है।

तंत्र-मंत्र पर तो हम पहली बार विचार करने जा रहे हैं - इनकी कितनी सार्थकता है, कितनी प्रासंगिकता है। प्रो. अक्षयकुमार जैन हैं, यतीन्द्रजी हैं, तमाम

लोग हैं जिसका नाम लूं, जिसका न लूं, अगर किसी का नाम न ले पाऊं तो कृपया अन्यथा न समझिये ।

मैं कह देना चाहता हूं कि आपके सामने संगोष्ठी की पूर्व फलश्रुति है, जो मेरा ख्याल है अभी काफी सीमित है । यह प्रथम चरण है । मुझे विश्वास है आयोजित संगोष्ठी एक उज्ज्वल भविष्य को जन्म देगी तथा उस दुश्चक्र को तोड़ेगी, जिसके कारण हम विश्वविद्यालयों से जुड़ गये हैं ।

विश्वविद्यालयों से जुड़ना जैनविद्या के लिए परम सौभाग्य की बात नहीं है, क्योंकि वहां से पहली बार 20 विद्यार्थी दाखिल हुए, दूसरे वर्ष 10 रह गये, फिर 5 रह गये, उसके बाद शून्य । तमाम चीजें हमारे सामने हैं । उदयपुर विश्वविद्यालय की बात अलग हो सकती है । वहां उसमें कोई व्यक्ति दिलचस्पी ले रहा है, लेकिन और विश्वविद्यालय भी तो हैं - एक ही विश्वविद्यालय तो नहीं है । कितना अंशदान हम करते हैं, धन का, सम्पदा का - हम इसको लेकर क्या किसी जैन विश्वविद्यालय की परिकल्पना नहीं कर सकते ? मैं समझता हूं, कर सकते हैं । फिजिक्स का जैन विद्वान अमेरिका में है (डा. दुलीचन्द जैन) और वहां उस देश को अपने उपयोग दे रहा है । क्या हम उसे यहां निमंत्रित नहीं कर सकते ? क्या हमारे देश और हमारे समाज में बहुत सारा काम नहीं है ? मैं कहता हूं, प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन हमारे सामने हैं । सिस्टेमेटिक्स पर काम कर रहे हैं, जैसा मैथैमेटिक्स पर काम कर रहे हैं । बताइये हम इनकी क्या मदद करते हैं ? यह तो हमारा ही दुर्भाग्य है कि हम कुछ नहीं कर पा रहे हैं । मुझे आश्चर्य है कि हम उन्हें मैथेमेटिकल संकेतों से युक्त एक टाईपराइटर भी भेंट नहीं कर सके । मुझसे उन्होंने कभी कहा था लेकिन मैं नहीं दे पाया । पहला काम होना चाहिये हमारे समाज का कि हम छोटे-मोटे साधन अपने विद्वानों को अविलम्ब उपलब्ध करायें, लेकिन उस ओर हमारा ध्यान अभी नहीं है । इस संगोष्ठी के द्वारा ध्यान आकर्षित करें कि कहां-कहां, कौन-कौन लोग काम कर रहे हैं ? उनके ऐड्रेस एड्रेस (पते-ठिकाने) तक हम नहीं जानते कि कौन, कहां, क्या काम कर रहा है । किसने क्या योगदान किया है ? उसकी क्या उपलब्धियां हैं ? कौन क्या कर रहा है, यदि हम जान सकें तो बहुत बड़ी बात होगी ।

हिन्दुस्तान के किसी भी कोने में, किसी भी पद पर, किसी भी वाक आफ लाइफ (जीवन-क्षेत्र) में कोई भी विद्वान काम कर रहा हो, हमारा कर्तव्य है कि हम उसे पूरा-पूरा भरोसा दिलायें कि तुम अकेले नहीं हो, तुम्हारे पीछे पूरा समाज है । इतना तो होना ही चाहिए । यदि ऐसा नहीं हुआ तो किस आश्वासन पर कोई काम करेगा, क्यों करेगा ? वीरेन्द्रकुमार जैन का नाम मैं लेता हूं । उनके पास कोई

आश्वासन नहीं है कि 60 वर्ष की उम्र के बाद उन्हें कोई सुनिश्चित जीवन-यापन मिल जाएगा । ऐसा कुछ भी नहीं है ।

मैं बात आगे नहीं बढ़ाऊँगा । मुझे प्रवर्तन करना था । मैंने वह किया है । मुझे पूरा विश्वास है कि यह संगोष्ठी एक उज्जवल भविष्य को जन्म देगी तथा उस दुश्चक्र को भी तोड़ेगी, जिसके कारण हम विश्वविद्यालय से जुड़ गये हैं, और समाज के आमजन से बिल्कुल कट गये हैं । विश्वविद्यालयों से तो जुड़ गये लेकिन जो कॉमन आदमी है, सामान्य आदमी है, आप आदमी है, उससे आप जैन विद्या को नहीं जोड़ पाये हैं । यह बड़ी गड़बड़ है, भयानक असंतुलन है । इसे दूर करें और जैन विद्या को उससे जोड़े । कोई किताब यदि एक हजार छपती है, उसका कुल जमा परिणाम क्या होता है? श्रीमती सरयू दोशी यहाँ हैं । उन्होंने 'मार्ग' का बहुत बड़ा 'वॉल्यूम' निकाला तो क्या वह कॉमन-मेन तक पहुँचा ? मैं नहीं समझता कि 'कॉमन मैन' तक पहुँचा है, लेकिन उसका कोई संक्षिप्त रूप (छोटे आकार में) आपके सेट पर आ जाता तो मैं समझता हूँ यह समाज के काम का होता । यह काम समाज का था, 'मार्ग' का नहीं था । तो फिर लोग देखते कि श्रीमती सरयू दोशी कितना काम कर रही हैं पुरातत्व पर । लेकिन यह सब आज कुछ चुने हुए लोग जानते हैं कि वे क्या कर रही हैं । ये कुछ साधारण बातें हैं जिन पर हमें बहुत गंभीरता से (इन्टेंथ्य) विचार करना चाहिये ।

मैं निवेदन कर रहा हूँ, हमारे मित्र विद्वानों से, कि आप कोई व्यावहारिक योजना प्रस्तुत करें ताकि संगोष्ठी के आयोजक उत्साहित हों और अवरोध समाप्त हो ।

अन्त में, मैं आप सबका हार्दिक स्वागत करता हूँ और मान कर चलता हूँ कि हमारी यह संगोष्ठी आगे आने वाली संगोष्ठी श्रृंखला के लिए एक उर्वर पृष्ठभूमि तैयार कर पाने में समर्थ सिद्ध होगी ।

मैं वचन देता हूँ कि मैं जैन समाज के सामाजिक इतिहास को तीन खण्डों में लिखूँगा । और जो भी मेरी मदद करेंगे मैं उनका बड़ा अनुग्रहीत मानूँगा । मैंने तीन खण्डों की योजना की है । मैं इस संदर्भ में साहूजी से बात करूँगा, औरों से भी । 5-6 वर्ष तक का यह प्रोजेक्ट तीन चरणों में समाप्त होगा ।

स्वागत-भाषण

- चाँदमल मेहता, बम्बई

परम पूज्य आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज,

मुनिराज, आर्यिकाजी, सभापतिजी,

हमारे ट्रस्ट के अध्यक्ष साहूजी ।

व संयोजक श्री लक्ष्मीचन्द्रजी व नेमीचन्द्रजी । व महानुभाव व पंडितजी ।

आप लोगों का, आज जो इस आयोजनमें पधारे हैं, शान्तिसागर ट्रस्ट की तरफ से स्वागत करता हूँ । आप लोग कष्ट उठाकर इतनी दूर-दूर से जिनके नाम अभी श्री नेमीचन्दजी ने लिये हैं और जो यहाँ के महानुभाव हैं, आप जानते हैं कि ऐसे सेमीनार में उपस्थिति कैसी होती है । यह आप सबको विदित है । किन्तु आज हमारे बीच ऐसे विद्वान जो टीचर में, विश्वविद्यालयों में प्रोफेसरी में, और कई क्षेत्रों में इतनी विद्वता रखते हैं ; हमारे बुजुर्ग पंडित जो हमारे बीच बैठे हैं - श्री जगन्मोहनलाल जी और अनेक उच्च कोटि के विद्वानों का जो सम्मेलन आयोजित करने में हमारे चेयरमैन श्री श्रेयांसप्रसादजी, संयोजक श्री लक्ष्मीचन्द्र व नेमीचन्द्रजी ने जो परिश्रम किया है उसके लिए उनका मैं बहुत हार्दिक आभार मानता हूँ । साथ-साथ आप लोग कष्ट उठाकर जो यहाँ पधारे हैं, उनका आभारी तो हूँ ही । इस संगोष्ठी में कुछ ऐसा उद्घाटित हो जाये जो आगे के लिए एक रिकार्ड कायम कर सके । पूज्य आचार्य श्री इस अवसर पर हमारे बीच विराजमान हैं । और गोष्ठी के लिए जो विषय निर्धारित किये गये हैं उन विषयों में हमारे आचार्य महाराज और मुनिराज श्री ज्ञानी हैं । इसीलिए उन्हों के सामने बम्बई में, जो दूर है, आप लोगों से दूर, किन्तु बहुत नजदीक है आचार्य श्री के पास, हमने इस संगोष्ठी को यहाँ रखा ।

दूसरी बात, आप लोग चारित्रवान हैं बहुत उच्च कोटि के विद्वान हैं । पूजा-पाठ करेंगे, समय के अन्दर शुद्ध भोजन मिले आपको - ये सारी बातें देखकर यह आयोजन यहाँहुआ है जिससे आप हमारे बीच यहाँ रह सकें और भगवान् की पूजा कर सकें । महाराज का आशीर्वाद प्राप्त कर सकें ।

कदाचित् यह हो सकता है कि यह संगोष्ठी यहाँ पहली बार होने जा रही है । इसलिए त्रुटियाँ होना जरूरी है । हम ऐसे कोई खास कार्यकर्ता नहीं हैं, जिन्होंने ऐसी संगोष्ठी पहले भी की हो । इसलिए हो सकता है कि यहाँके कार्यकर्ताओं से कुछ त्रुटियाँ हो गई हों । उन को आप नहीं गिनेंगे ।

आप के चारित्र और पवित्रता को बनाये रखने के लिए इस स्थान को चुना है। इसका कारण क्या है। समय के अन्दर उठ सकेंगे, समय के अन्दर नजदीक में आ सकेंगे और भगवान के पास जाकर पूजा पाठ कर सकेंगे। क्योंकि उसके बाद यही 9-15 बजे से सत्र चालू करके 11-15 पर इसे समाप्त करना होगा।

मैं आप से निवेदन करता हूं - ट्रस्ट की तरफ से, चैयरमैन की ओर से, कि समय हमारे पास बहुत कम है क्योंकि सुबह का समय रखा है। 1-00 बजे इसे पूरा कर देंगे। 3-00 बजे फिर बैठेंगे और यह संगोष्ठी फिर चालू करेंगे। इसी बीच, जयंती समारोह को भी मनाने जा रहे हैं। मैं आज आपसे कह दूं कि हमारी यहाँ की जो उद्योगपति हैं श्रीमती सरयू दोशी जी, वे हमारे कार्यों में बहुत रुचि लेती हैं, उन्हीं की देखरेख में भोजन की व्यवस्था की गई है।

आप तमाम महानुभाव यहाँ विराजमान हैं। गोष्ठी के बाद भोजन को पधारें। बीच के समय में आचार्य महाराज आमाहिक के लिए जायेंगे और ठीक 1-00 बजे यहाँ विधान के लिए जायेंगे और विधान शुरु हो जायेगा और 3-00 बजे विधानपूर्ण हो जायेगा। मैं कोई वक्ता या भाषणकर्ता नहीं हूं मैं तो केवल दो शब्द कहने के लिए खड़ा हुआ था। पुन: एक बार आप लोगों से आयोजन के आरंभ में व्यवस्था को लेकर जो त्रुटियाँ हो गई हैं, उन सबके लिए क्षमा माँगता हूं।

बहुत बहुत धन्यवाद।

समागत - परिचय

आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज
तपस्वी, साधक, रत्नत्रय के प्रपोषक ।

मुनि श्री भरतसागर जी महाराज
आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज के संघ के प्रमुख साधक, तत्वज्ञानी । जैन विद्या के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक ग्रन्थों के रचयिता और योजनाओं के प्रवर्तक ।

क्षु० श्री सन्मतिसागर जी महाराज
विद्वान, साधना और धर्मरत ।
जैनदर्शन-धर्म, साहित्य का अध्ययन-अध्यापन । विशिष्ट साधक । आचार्य विमलसागर जी महाराज के संघ के प्रमुख साधक और तत्वज्ञानी ।

आर्यिका स्याद्वादमती जी
आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज के संघ में ज्ञान-ध्यानरत । अध्ययन-मननशील विदुषी ।

भट्टारक श्री चारुकीर्ति पंडिताचार्य स्वामी
एम॰ए॰ (हिन्दी, संस्कृत), पी॰एच॰डी॰ (जैनिज़्म)
साहित्यशास्त्री, सिद्धान्तशास्त्री एवं उपाध्याय आदि उपाधियों से समलंकृत । जैन तत्वज्ञान, धर्म और साहित्य के गंभीर अध्येता । बहुभाषाविद् । देश-विदेश में भ्रमणशील । अपने प्रभावकारी व्याख्यान शैली के कारण लोकप्रिय । प्रसिद्ध जैनतीर्थ, मूडबिद्री जैन मठ के भट्टारक एवं अमूल्य सांस्कृतिक निधि के संरक्षक । श्रीमती रमा जैन, शोध संस्थान, मूडबिद्री के उत्कर्ष के लिए निरंतर प्रयत्नशील ।
पता : श्री दिगम्बर जैन मठ,
मूडबिद्री (कर्नाटक)

साहू श्रेयांसप्रसाद जैन
"श्रावकशिरोमणि", "समाजरत्न" ।
प्रसिद्ध उद्योगपति, समाज के अग्रणी नेता, उदार
और लोकप्रिय ।
अध्यक्ष : भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली ।
आवासीय पता : निर्मल, थर्ड फ्लोर,
नरीमन प्वाइंट, बम्बई ।

डा॰ पं॰ जगमोहनलाल शास्त्री
जैनधर्म-दर्शन, साहित्य के वरिष्ठ मूर्धन्य आदरास्पद
विद्वान । प्रभावशाली वक्ता एवं तत्वज्ञानी । जैन
जीवनचर्या के साधक ।
पता : प्राचार्य एवं अधिष्ठाता, जैन शिक्षा संस्था,
कटनी ।

पं॰ कैलाशचन्द्र शास्त्री, सिद्धान्ताचार्य ।
जैनधर्म-दर्शन तथा संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश आदि
प्राच्य विद्याओं के मूर्धन्य विद्वान् । जैन तत्वज्ञान के
तलस्पर्शी व्याख्याता । प्रभावशाली वक्ता । श्रद्धेय
गुरु गोपालदास बरैया की शिष्य-परंपरा को आगे बढ़ाने
वाले उद्भट विद्वान । समाज और विद्वद्-मण्डली से समादृत ।
जैनधर्म, दर्शन, न्याय एवं इतिहास विषयक अनेक मौलिक
ग्रन्थों के लेखक । सम्पादक एवं अनुवादक ।
पता : अधिष्ठाता, स्याद्वाद महाविद्यालय,
भदैनी घाट, वाराणसी ।

डा॰ पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य
पी-एच॰डी॰
जैनधर्म-दर्शन और साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान और व्याख्याता ।
सफल प्राध्यापक । जैन पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों का अनुशीलन-
अनुवादक । तात्विक विवेचक व अनेक स्वतंत्र शोध-ग्रन्थों के प्रणेता ।
पता : प्राचार्य, श्री गणेश दि॰ जैन संस्कृत महाविद्यालय,
वर्णी भवन, सागर (म॰प्र॰)

डा॰ दरबारी लाल कोठिया

एम॰ए॰ (संस्कृत), न्यायाचार्य, शास्त्राचार्य, पी-एच॰डी॰ ।
रीडर : जैन बौद्ध दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
(सेवा निवृत्त) । जैनधर्म, दर्शन, न्याय, साहित्य, इतिहास व
भारतीय न्याय-शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान । हाल ही में विद्वत
परिषद् द्वारा सम्मानित ।
आवासीय पता : चमेली कुटीर, डुमराव कालोनी,
अस्सी, वाराणसी-5 ।

पं॰ नाथूलाल जी शास्त्री, संहितासूरि
जैन सिद्धान्त के मार्मिक विद्वान । जैन मंत्र-तंत्र एवं
ज्योतिष आदि विषयों के गहन अध्येता और साधक ।
जैन प्रतिष्ठापद्धति के मूर्धन्य ज्ञाता एवं नियामक ।
पता : प्राचार्य, सेठ हुकमचन्द जैन संस्कृत महाविद्यालय,
जवरी बाग, इन्दौर ।

प्रो॰ अक्षय कुमार जैन
जैन ज्योतिष व मंत्र-तंत्र के अध्येता व शोधकार्य में संरत ।
प्राध्यापक : हिन्दी विभाग, गुजराती कला एवं विधि
महाविद्यालय, इन्दौर ।
आवासीय पता : 48/2, राजजी बाजार,
इन्दौर-452004 ।

डॉ॰ कमलचन्द सोगाणी
एम॰ए॰, पी-एच॰डी॰
जैनधर्म, दर्शन एवं आचार-शास्त्र के प्रतिष्ठित विद्वान । मूल
शास्त्रों के उद्धरणों पर आधारित अनेक ग्रन्थों के लेखक और निबन्धकार ।
"चयनिका" ग्रन्थमाला के संपादक ।
पता : एसोशियेट प्रोफेसर, दर्शन विभाग,
उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर ।

डॉ॰ कैलाशचन्द्र जैन

एम॰ए॰, पी-एच॰डी॰, डी॰लिट् ।
भारतीय संस्कृति, इतिहास एवं पुरातत्व के प्रख्यात
विद्वान । कुशल प्रवक्ता । राजस्थान में जैनधर्म व जैन
संस्कृति के विविध पक्षों के खोजी ।
पता : प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन ।

श्रीमती कमल वेद

एम॰ए॰ (समाज शास्त्र व हिन्दी), साहित्यरत्न ।
शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत । अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लेखन
की रुचि और स्तम्भ-संपादिका ।
आवासीय पता : 103, जैन कालोनी,
अन्नपूर्णा रोड, इन्दौर-452002 ।

डॉ देवेन्द्रकुमार शास्त्री

एम॰ए॰ (हिन्दी), साहित्याचार्य, पी-एच॰डी॰, डी लिट्
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, नीमच (म प्र॰) । प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के
अधिकृत विद्वान् एवं समीक्षक । जैन तत्वज्ञान के सफल व्याख्याकार ।
प्राकृत एवं अपभ्रंश विषयक अनेक ग्रन्थों के सम्पादक-अनुवादक तथा
अनेक मौलिक कृतियों के प्रणेता । शोध-कार्य के क्षेत्र में मार्गदर्शक ।
आवासीय पता : 243, शिक्षक कालोनी,
नीमच (म प्र॰)

श्री नीरज जैन

एम॰ए॰ (प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व),
अदीब कामिल (उर्दू)
प्राचीन इतिहास और कला की शोध खोज में समर्पित । जैन पुरातत्व
के गंभीर अध्येता व प्रामाणिक व्याख्याता । लोकप्रिय पुरस्कृत कृति
"गोमटेश गाथा" के लेखक ।
आवासीय पता : शान्तिसदन, सतना (म॰प्र॰) 485001

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन
एम॰ए॰ (हिन्दी)
जैनधर्म, दर्शन, इतिहास एवं हिन्दी साहित्य के विद्वान्।
पता : प्राचार्य, श्री पी॰डी॰ जैन इण्टर कॉलेज,
फीरोजाबाद (उ॰प्र॰)

प्रो॰ नन्दलाल जैन
जैन विद्या के विविध पक्षों के अध्येता।
पता : प्राध्यापक, रसायन-विभाग,
गर्ल्स कॉलेज, रीवा (म॰प्र॰)

डा॰ प्रेमसुमन जैन
एम॰ए॰, पी-एच॰डी॰
संस्कृत, पालि, प्राकृत, जैनधर्म तथा भारतीय संस्कृति आदि विषयों का विशेष अध्ययन, अध्यापन तथा शोध कार्य के क्षेत्र में एक सफल मार्गदर्शक। अनेक ग्रन्थों के लेखक।
पता : अध्यक्ष, जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग,
उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर।

प्रो॰ प्रवीणचन्द्र जैन
एम॰ए॰ (हिन्दी व संस्कृत), शास्त्री, साहित्यरत्न।
वनस्थली विद्यापीठ के प्रधानाचार्य रह चुके हैं।
निदेशक, श्री महावीर शोध संस्थान, जयपुर।
आवासीय पता : सी-20, गणेश मार्ग,
बापूनगर, जयपुर-15।

डा॰ टी॰ के॰ खडब्डी

एम॰ए॰, पी-एच॰डी॰

जैन शास्त्र और जैन तत्वज्ञान के अध्येता एवं प्राकृत भाषा और साहित्य के अधिकारी विद्वान ।

पता : रीडर, प्राकृत विभाग,
कर्नाटक आर्ट कालेज, धारवाड़ ।

पाटुली पार्श्वनाथ उपाध्ये शास्त्री

प्राचीन परम्परा के विद्वान । सेवाभावीय कार्यकर्ता । जैनधर्म, दर्शन के अध्येता । जैन मंत्रशास्त्र और जैन ज्योतिष के विशिष्ट विद्वान । तात्त्विक विवेचन की मनोरम शैली के कारण लोकप्रिय ।

आवासीय पता : आचार्य देशभूषण आश्रम,
कोथली,
तालुका - चिकोड़ी,
जि॰ - बेलगाँव (कर्नाटक)

श्री बालचन्द्र जैन

एम॰ए॰ (प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति)

उप संचालक, पुरातत्व एवं संग्रहालय, मध्यप्रदेश शासन (सेवा निवृत्त) प्रतिमा-विज्ञान के विशेषज्ञ । प्रसिद्ध ग्रन्थों जैसे "जैन प्रतिमा-विज्ञान", "कलिंग चक्रवर्ती", "रायपुर संग्रहालय की दीर्घाओं की मार्गदर्शिका" (पाँच भाग), तथा अनेक लेख एवं शोधपत्रों के लेखक ।

आवासीय पता : 2355/1, राइट टाउन, जबलपुर ।

डा॰ भागचन्द्र जैन "भागेन्दु"

एम॰ए॰, पी-एच॰डी॰

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दमोह । संस्कृत साहित्य के व्याख्याता । संस्कृति, कला एवं पुरातत्व के मर्मज्ञ विद्वान् । "देवगढ़ की जैन कला" के लेखक । एक कुशल प्रवक्ता ।

आवासीय पता : सिविल लाइन्स-3, दमोह ।

डा॰ भागचन्द्र जैन "भास्कर"

एम॰ए॰ (संस्कृत, पालि, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व), साहित्याचार्य, शास्त्राचार्य, पी-एच॰डी॰ (सीलोन), डी॰ लिट्

विभागाध्यक्ष, पालि प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय।
जैन एवं बौद्ध साहित्य, इतिहास एवं संस्कृति के अध्येता और व्याख्याता एवं अनेक ग्रन्थों के लेखक। बहुभाषाविद्।
आवासीय पता : न्यू एक्सटेंशन एरिया,
सदर, नागपुर।

डा॰ यतीन्द्र कुमार जैन,

आयुर्वेदाचार्य, एल॰एन॰डी॰एस॰, एम॰आई॰एच॰एस॰,
फिजिशियन एवं सर्जन।

संस्कृत, हिन्दी इतिहास, मंत्र-यंत्र-तंत्र आदि के संबंधी शोध कार्यों में संलग्न।
आवासीय पता : डा॰ जैन का अस्पताल,
25/2, गाँधी नगर,
आगरा।

प्रो॰ लक्ष्मीचन्द्र जैन

एम॰एस॰सी॰ (एप्लाइड मैथेमैटिक्स), डी॰एच॰डी॰

गणित-शास्त्र एवं कर्म सिद्धान्त की गणितीय प्रक्रिया के विशिष्ट विद्वान। अनेक पुस्तकों और शोध-पत्रों के लेखक।
पता : प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय,
छिन्दवाड़ा-480002 (म॰प्र॰)

डा॰ विलास आदिनाथ संगवे
एम॰ए॰, पी-एच॰डी॰

समाजशास्त्र (विशेषकर जैन समाज) प्रभावशाली वक्ता।
जैन समाज, संस्कृति, एवं इतिहास पर अनेक पुस्तकों के लेखक।
आवासीय पता : भरत कालोनी, 6वी॰
राजारामपुरी, कोल्हापुर-416008

डा॰ विद्याधर जोहरापुरकर
एम॰ए॰, पी-एच॰डी॰
प्राचार्य, महाकौशल कला महाविद्यालय, जबलपुर ।
जैनधर्म, दर्शन, भाषा, साहित्य और इतिहास के अन्वेषक ।
भट्टारक-परंपरा और यापनीय संघ आदि विषयों पर मौलिक
अनुसंधान-कर्ता । अनेक पुस्तकों के लेखक । बहुभाषाविद् ।
आवासीय पता : 14, ए॰पी॰ कालोनी,
पचपेढ़ी, जबलपुर ।

श्रीमती सरयू दोशी,
एम॰ए॰, पी-एच॰डी॰
भारतीय पुरातत्व, कला, शिल्प और स्थापत्य की प्रमुख
विदुषी । विदेशों में भारतीय पुरातत्व, विशेष रूप से जैन पुरातत्व
की प्रामाणिक व्याख्याता । अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की कला-
पत्रिका "मार्ग" की संपादिका । श्रवणबेलगोल के कला वैभव
का दिग्दर्शन कराने वाले विशेषांक की संपादिका-संयोजिका ।
पता : नीला हाउस, एम॰एल॰दहनुकर मार्ग,
बम्बई-26 ।

श्री सोहनलाल देवोत
एम॰ए॰ (समाजशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र), बी॰एड॰
शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत ।
जैन ज्योतिष और मंत्र तंत्र के अध्येता एवं साधक ।
पता : लोहारिया,
जि॰- बाँसवाड़ा- 327605 (राज॰)

श्री सत्यंधर कुमार सेठी
सफल व्यवसाय के संचालक किन्तु मूल रूप से जैनधर्म, दर्शन और पुरातत्व के अध्येता । उज्जैन में जैन संग्रहालय के संस्थापक। जैन मूर्तिकला के पारखी और शोध के कार्य में निरंतर प्रवृद्ध ।
पता : क्लाथ मर्चेन्ट, सराफा बाजार,
उज्जैन ।

डा॰ हुकमचन्द भारिल्ल
एम॰ए॰,पी-एच॰डी॰
जैन तत्वज्ञान के गहन अध्येता । निश्चय और व्यवहार नय एवं कुन्दकुन्दाचार्य साहित्य के व्याख्याता ।
प्रभावशाली वक्ता ।
पता : टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,
4-ए, बापूनगर,जयपुर ।

डा॰ हरीन्द्र भूषण जैन
एम॰ए॰,पी-एच॰डी॰, साहित्याचार्य एवं जैन सिद्धान्तशास्त्री, डिप्लोमा इन जर्मन लैंग्वेज़, महामहोपाध्याय ।
रीडर, संस्कृत-पालि-प्राकृत विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन [सेवा निवृत्त]। मंत्री, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वतपरिषद् । संस्कृत साहित्य के प्रतिष्ठित व्याख्याता । जैनधर्म,दर्शन एवं इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् ।
आवासीय पता : 1/1, एफ-2, विश्वविद्यालय निवास,
उज्जैन-456010 [म.प्र.]

श्री चाँदमल मेहता
बम्बई जैन समाज के कुशल कार्यकर्ता और नेता । श्री शान्तिसागर
स्मारक ट्रस्ट के मैनेजिंग ट्रस्टी । बम्बई समाज में लोकप्रिय ।
पता : 245/5, जवाहर नगर रोड-15
गोरेगाँव (वेस्ट)
बम्बई-400 062

डा॰ नेमीचन्द जैन
एम॰ए॰, पी-एच॰डी॰
हिन्दी भाषा साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् ।
यशस्वी पत्रकार, चिंतक, लेखनी के धनी । सामाजिक
चेतना के प्रत्येक क्षेत्र में कर्मठ और प्रभावशाली । लब्ध
प्रतिष्ठित पत्रिका "तीर्थंकर" मासिक के संपादक ।
आवासीय पता : 65 पत्रकार कालोनी,
कानोडिया रोड, इन्दौर ।

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन
एम॰ए॰ (संस्कृत, अंग्रेजी)
बहुभाषाविद्, साहित्यकार । "अन्तर्द्वन्द्वों के पार" के
लेखक ।
निदेशक : भारतीय ज्ञानपीठ, बी/45-47, कनॉट प्लेस
नई दिल्ली-110 001.

श्री बाल स्वरूप राही
एम॰ए॰ (हिन्दी)
कवि, लेखक, समीक्षक एवं पत्रकार ।
सचिव : भारतीय ज्ञानपीठ, बी/45-47, कनॉट प्लेस,
नई दिल्ली-110 001.

श्री गोपीलाल अमर

एम॰ए॰, दर्शनाचार्य, धर्मालंकार ।

संस्कृत साहित्य और जैन दर्शन के विद्वान । जैन पुरातत्व के ज्ञाता और व्याख्याकार । भारतीय ज्ञानपीठ से संबद्ध ।

पता : भारतीय ज्ञानपीठ, बी/45-47, कनॉट प्लेस,
नई दिल्ली-110 001.

डा॰ गुलाबचन्द्र जैन

एम॰ए॰,पी-एच॰डी॰, दर्शनाचार्य ।

संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के सम्पादक एवं समीक्षक । भारतीय ज्ञानपीठ में प्रकाशन-अधिकारी के रूप में कार्यरत ।

पता : भारतीय ज्ञानपीठ, बी/45-47, कनॉट प्लेस
नई दिल्ली-110 001.

प्रथम सत्र

मंगलवार, 7 सितम्बर, 1982 (प्रात: 11.15 से 1.15 तक)

विषय : जैन इतिहास (सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक) पुरातत्व एवं स्थापत्य

अध्यक्ष	:	सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री
सह अध्यक्ष	:	डा. विद्याधर जोहरापुरकर
मंगलाचरण	:	मुनिश्री भरतसागरजी महाराज
विषय प्रवर्तन	:	डा. नेमीचन्द्र जैन

भाषण एवं आलेख

1.	श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन	:	जैन इतिहास: उपलब्धियाँ और संभावनाएँ
2.	डा. कैलाशचन्द्र जैन	:	जैन इतिहास (सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, पुरातत्व एवं स्थापत्य)
3.	डा. नेमीचन्द जैन	:	जैन समाज के सामाजिक इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता और समस्याएँ
4.	श्री नीरज जैन	:	जैन इतिहास, पुरातत्व एवं स्थापत्य भारतीय मूर्तिकला के विकास में जैनों का योगदान
5.	डा. बी.के. खड़बड़ी	:	Studies in South Indian Jainism Achievements & Prospects
6.	श्री बालचन्द्र जैन	:	मध्यप्रदेश का जैन पुरातत्व (उपलब्धियाँ एवं संभावनाएँ)
7.	डा. विद्याधर जोहरापुरकर	:	इतिहास की खोज-उपलब्धि और संभावना
8.	डा. विलास ए. संगवे	:	Jain History : Social
9.	डा. प्रेमसुमन जैन	:	इतिहास और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में जैन साहित्य का मूल्यांकन
10.	डा. भागचन्द्र "भागेन्दु"	:	जैन साहित्य, संस्कृति और कला को मध्यप्रदेश का अवदान
11.	श्री गोपीलाल अमर	:	जैन पुरातत्व की उपलब्धियाँ और अपेक्षाएँ
12.	श्री सत्यंधर कुमार सेठी	:	जैन पुरातत्व कला और इतिहास
13.	डा. भागचन्द्र जैन "भास्कर"	:	महाराष्ट्र का जैन इतिहास और
14.	मुनि भरतसागरजी महाराज	:	जैन धर्म का मर्म पुरातत्व
15.	स्वस्तिश्री चारुकीर्ति पी. स्वामी जी महाराज	:	Jainism in Karnataka
16.	डा. श्रीमती सरयू दोशी	:	जैन कला एवं पुरातत्व (भाषण)

जैन इतिहास : उपलब्धियाँ और सम्भावनायें

- नरेन्द्रप्रकाश जैन, फीरोजाबाद

दुर्भाग्य से भारत में इतिहास - लेखन पर बहुत कम ध्यान दिया गया। जब मुस्लिम शासकों ने भारत में अपने पैर जमा लिए, तब उनके मुल्ला-मौलवियों ने उनकी राजनीतिक तवारीखें लिखना शुरू किया। इनका मुख्य उद्देश्य अपने आश्रयदाताओं का गुणगान कर उन्हें प्रसन्न रखना था। अपने मालिकों की मर्जी के अनुसार वे तथ्यों को छिपा या दबा जाते थे। सम्प्रदायगत पूर्वाग्रह और पक्षपात के कारण भी उन्होंने प्रायः सत्य का अपलाप किया है। बाद में अँग्रेजों ने जो इतिहास लिखे, उनका आधार भी ये तवारीखें ही रहीं। उन्होंने प्रचलित जनश्रुतियों, चारणों एवं भाटों की कृतियों, ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य, नाटक, रासो-साहित्य आदि को या तो छुआ ही नहीं या महत्व नहीं दिया। जो पुरातात्विक सामग्री उपलब्ध थी, उसका भी उपयोग नहीं हो सका। फलतः इतिहास के नाम पर जो कुछ सामने आया, वह एकांगी, पक्षपात व अतिशयोक्तिपूर्ण बनकर रह गया।

जब भारतीय इतिहास की यह स्थिति है, तब जैन संस्कृति के इतिहास की दशा तो और भी दयनीय रही है। प्रथम जैनियों का एतद् विषयक साहित्य ही पूरा-पूरा प्रकाश में नहीं आया, दूसरी ओर ऐतिहासिक शोध करने वालों को समाज से कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। इसके विपरीत जिन्होंने साहस संजोकर इस दिशा में अपने कदम बढ़ाये भी, उनको समाज की निन्दा का पात्र बनना पड़ा। अतः इस क्षेत्र में काम करने वालों की संख्या अत्यल्प रही, किन्तु प्रसन्नता है कि पिछली आधी सदी में जैन इतिहास को अंधकार की इस गुफा से निकालने के लिए कुछ जोरदार प्रयत्न हुए हैं।

गत पाँच दशकों में बहुत सा अलभ्य साहित्य प्रकाश में आया है। अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्रशस्तियों, आयागपट्टों आदि में निहित आलेखों का उद्घाटन हुआ है। जैन साहित्य के साथ इतर साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति को भी इधर बढ़ावा मिला है। यह अपनी जगह बिल्कुल सच है कि जैन संस्कृति के बारे में केवल जैन साहित्य के आधार पर जो कहा जायेगा, उसे जैनेत्तर लोग स्वीकार नहीं करेंगे। उसके लिए अपने मत के समर्थन में जैनेत्तर ग्रन्थों से भी उद्धरण जुटाना आवश्यक है, जो बिना सर्वांगीण एवं विस्तृत अध्ययन के संभव नहीं है। पिछली अर्द्ध शताब्दी में

सर्वश्री स्वर्गीय नाथूराम प्रेमी, स्व॰ नेमिनाथ उपाध्ये, स्व० जुगलकिशोर मुख्तार, स्व॰ कामताप्रसाद जैन, स्व॰ डा॰ हीरालाल जैन, स्व॰ पं॰ परमानन्दजी आदि का इस क्षेत्र में उल्लेख्य योगदान रहा है । श्रद्धेय पं॰ कैलाशचन्द्रजी शास्त्री ने भी जैन साहित्य का इतिहास [पूर्व पीठिका तथा प्रथम-द्वितीय भाग] लिखकर स्व-संस्कृति के पूर्व गौरव पर पड़ी विस्मृति की परतों को उघाड़ने का स्तुत्य प्रयास किया है । डा॰ ज्योतिप्रसाद जैन की सेवायें भी महत्वपूर्ण रही हैं । वर्तमान में साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं पुरातत्व सम्बन्धी जैन इतिहास के क्रमबद्ध अनुशीलन एवं शोध का कार्य चल रहा है । भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली और महावीर अकादमी जयपुर द्वारा इस दिशा में प्रचुर और सुनियोजित कार्य हो रहा है ।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध को हम ऐतिहासिक जागरण का काल कह सकते हैं । अब से कुछ पहले जब भारतीय इतिहास में जैनधर्म और संस्कृति के सन्दर्भ में अनेक भ्रान्तिपूर्ण विवरण पाये जाते थे । इस जागरण-काल में उनमें से कुछ का निरसन हुआ है और अनेक की चूलें हिल गयी हैं । आधुनिक इतिहासकार अपनी उन [भ्रान्त] मान्यताओं के बारे में नये सिरे से सोचने के लिए विवश हुए हैं । इस दिशा में जैन और जैनेत्तर सभी विद्वानों के द्वारा गम्भीर अन्वेषण किये गये हैं । जैन इतिहास की कुछ सन्तोषजनक उपलब्धियों के निम्न उदाहरण हैं :-

1. हमारे प्रारम्भिक प्राच्यविद जैनधर्म को बौद्धधर्म की एक शाखा के रूप में निरूपित करते रहे हैं । चीनी पर्यटक युवान च्वांग ने अपने यात्रावृत्त से इस भ्रम को खूब फैलाया। प्रो० हौरेस विलसन, हण्टर, वेबर आदि विदेशी इतिहासकारों ने इस मत का समर्थन ही नहीं किया, बल्कि सातवीं सदी से पूर्व जैनधर्म के अस्तित्व को ही नकार दिया । जब सम्राट अशोक के शिलालेख पढ़ लिए गए और बौद्ध ग्रन्थों से यह सिद्ध हो गया कि उनमें चर्चित निगंठनातपुत्त ही भगवान् महावीर थे तो इस धारणा को छोड़ने के लिए इतिहासकार बाध्य हुए । सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा॰ हर्मन जैकोबी, मैक्समूलर तथा डा॰ गेरीनाट ने अपनी खोजों से अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया कि जैनधर्म एक स्वतंत्र धर्म है और उसका अभ्युदय बौद्धों से बहुत पहले हुआ है । डा॰ राधाकृष्णन ने भी स्पष्ट लिखा है कि जैनधर्म की एक स्वतंत्र सत्ता है और उसके इतिहास की जड़ें वेदों तक फैली हुई हैं । अब इस विषय में शायद ही किसी को कोई संदेह हो ।

2. बहुत समय तक भगवान् महावीर को जैनधर्म का संस्थापक माना जाता

रहा लेकिन अब तेईसवें और बाइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ और नेमिनाथ की ऐतिहासिकता स्वीकार कर ली गई है ।

3. हमारा देश "भारतवर्ष" के नाम से जाना जाता है । सभी विद्वान मानते हैं कि यह नाम भरत के नाम पर पड़ा है । इस भारत भूमि में तीन भरत हुए हैं - §1§ दशरथ - पुत्र भरत §2§ दुष्यन्त - पुत्र भरत और §3§ ऋषभ - पुत्र भरत । इनमें से किस भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ, यह विचारणीय है । कुछ विद्वानों की धारणा थी कि यह नाम राजा दुष्यंत के पुत्र भरत के नाम पर पड़ा है । और काफी अर्से तक जनमानस द्वारा यही बात स्वीकार की जाती रही किन्तु अब यह सिद्ध हो गया है कि वैदिक धारा के ग्रन्थों में भी प्रजापति ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत को ही इस देश के नाम भारतवर्ष का मूलाधार माना गया है । ऋषभ पुत्र भरत से पहले इस देश का नाम "अजनाभवर्ष" या "नाभि-खण्ड" था, जो अन्तिम कुलकर नाभिराय के नाम पर रखा गया था । बाद में उनके प्रपौत्र भारत के नाम पर यह देश भारतवर्ष कहलाया । डा. प्रेमसागर जैन ने अपनी पुस्तक "भरत और भारत" में स्कन्दपुराण, अग्निपुराण, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, शिवपुराण आदि अनेक हिन्दू धर्म-ग्रन्थों से इस मत के समर्थन में पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किये हैं तथा श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन, वासुदेवशरण अग्रवाल प्रभृति विद्वानों ने भी इस मत का अनुमोदन कर इस विषय में किसी भी प्रकार की भ्रान्ति के लिए अवकाश नहीं रहने दिया है ।

4. बहुत लम्बे समय तक जैन साहित्य को साम्प्रदायिक कहकर उसकी घोर उपेक्षा की गयी और हिन्दी के साहित्यिक मानचित्र में उसे कोई स्थान नहीं दिया गया । चाहे वह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रहे हों या श्री शिवसिंह सेंगर, ग्रियर्सन रहे हों या मिश्रबन्धु किसी ने भी जैन कवियों की कृति को महत्व नहीं दिया । सर्वप्रथम आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने अपने ग्रन्थ "हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास" में यह स्वीकार किया कि हिन्दी अपभ्रंश भाषा का अधिकांश साहित्य जैन कवियों की देन है । महाकवि स्वयंभू के "पउमचरिउ" कवि धनपालकृत "भविष्यत्तकहा" तथा जोइन्दु कवि के "परमात्मप्रकाश" की प्रशंसा करते हुए उन्हें उच्च कोटि की रचना कहा है तथा हिन्दी के आदिकाल में जैन कवियों के वर्चस्व को खुले हृदय

से स्वीकार किया है । हिन्दी के वर्तमान साहित्यिक इतिहास में कविवर बनारसी दास जैन के "अर्धकथानक" को हिन्दी का प्रथम आत्मचरित मान लिया गया है । इन स्थापनाओं को जैन इतिहास की उपलब्धि के रूप में स्वीकार करने में किसी को कोई झिझक नहीं होनी चाहिए, भले ही जैन साहित्य की विपुलता और श्रेष्ठता को देखते हुए अभी वह नगण्य ही क्यों न हो ।

5. इतिहासकारों की दृष्टि जब से जैन साहित्य, शिल्प और पुरातत्व की ओर आकर्षित हुई है, तब से अपनी कुछ पूर्वबद्ध मान्यताओं में उन्होंने परिवर्तन किया है । उदाहरण के लिए सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने जैन कवि श्रीधर के पार्श्वनाथ चरित के दिल्ली - वर्णन के आधार पर कुतुबमीनार को किसी मुसलमान बादशाह द्वारा निर्मित न मानकर तोमरकालीन कीर्तिस्तम्भ सिद्ध किया है । श्रीधर ने "गयण मंडला लग्गु साल" (एक बहुत ऊँची मीनार) के रूप में तोमर शासकों के काल में उसके होने का विस्तृत उल्लेख किया है । इसी प्रकार "ग्वालियर के तोमर" नामक अपने ग्रन्थ में उन्होंने यशोधर चरित, सम्यक्त्वकौमुदी, षट्कर्मोपदेश आदि जैन ग्रन्थों के प्रकाश में अनेक नई निष्पत्तियाँ प्रस्तुत की हैं । जेम्स फर्गुसन ने अजमेर की "अढ़ाई दिन का झोपड़ा" नामक मस्जिद को पुरातत्व और शिल्प की अपेक्षा जैन मन्दिर के रूप में प्रमाणित किया है ।

जैन इतिहास की उपलब्धियों का क्रमिक, वैज्ञानिक और सुसंगत परिशीलन तो कोई इतिहासविद् ही प्रस्तुत कर सकते हैं । मैं तो जैन इतिहास का एक सामान्य पाठक मात्र हूँ और उस नाते ही जिन बातों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उन्हें मैं अपनी दृष्टि से कम महत्व का नहीं मानता । मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि इस क्षेत्र में निरन्तर अपनी गति बनाये रखने की महती आवश्यकता है ।

जैन इतिहास का क्षेत्र बहुत व्यापक है । अभी इस क्षेत्र में कार्य करने को बहुत कुछ बाकी है । भावी सम्भावनाओं के आकलन का शुभारम्भ इस संगोष्ठी में हो रहा है, यह एक शुभ संकेत है । अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार मैं कुछ सुझाव प्रस्तुत कर रहा हूँ :-

1. आचार्य जिनसेन ने इतिहास, इतिवृत्त और ऐतिह्य को पर्यायवाची माना है । इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति "इति इह आसीत्" (यहाँ ऐसा हुआ)

प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अपने महापुराण को इतिहास कहा है । आचार्य रविषेण ने भी पुराणों को इतिहास मानते हैं । हिन्दू परम्परा के ग्रन्थों में तो "इतिहास पुराण" इस संयुक्त पद का प्रयोग मिलता है । कौटिल्य के अनुसार पुराण, आख्यायिका, धर्मशास्त्र ये सब इतिहास के अंग हैं । अतः हमारा निवेदन है कि जैन विद्वानों को पौराणिक साहित्य को आधुनिक भाषा और शिल्प में प्रस्तुत करने की चुनौती पूरे जीवट के साथ स्वीकार करनी चाहिए । पुराणों में जो भी अतिरंजित या कल्पित है, उसे बुद्धिगम्य बना कर पाठकों के सामने परोसा जाना चाहिए । श्री वीरेन्द्र जैन के मुक्तिदूत और अनुत्तरयोगी, आनन्दप्रकाश जैन के तन से लिपटी बेल आदि उपन्यासों का आधार इतिहास ही है और वह इसी तरह का एक सुष्ठु प्रयास है । श्री माईदयाल जैन की "हरिवंश कथा" की तरह सभी प्रमुख पुराणों का सुसम्बद्ध सार - संक्षेप सामने आये तो यह भी एक ऐतिहासिक कार्य होगा । जैन पुराणों के प्रमुख पात्रों के व्यक्तित्व व कृतित्व पर शोधपरक पुस्तकें लिखने के लिए पर्याप्त क्षेत्र है । बोलोपयोगी ऐतिहासिक पुस्तिकाओं की कमी तो निश्चय खटकने वाली है ।

2. जैन समाज में समय-समय पर अनेक आन्दोलन चलते रहते हैं । ग्रन्थों के प्रकाशन, तेरापन्थ-बीसपन्थ, हरिजन-मन्दिर-प्रवेश, विधवा, अन्तर्जातीय और विजातीय विवाह, जिनाभिषेक, स्त्री-प्रक्षाल, सोनगढ़ की निश्चय प्रधान विचारधारा, मुनियों का शिथिलाचार आदि विषय इन आन्दोलनों के आधार रहे हैं । स्थितिपालक और सुधारकों के टकराव से बड़ी रोचक स्थितियाँ उत्पन्न होती रही हैं । तटस्थ दृष्टि से इनका इतिहास लिखा जा सके तो उससे भावी पीढ़ियाँ अवश्य लाभान्वित होंगी । "जैन जागरण के अग्रदूत" पुस्तक इस दिशा में एक अच्छा प्रयास था किन्तु उसके बाद इस क्रम में कोई नयी पुस्तक देखने में नहीं आयी ।

3. जैन आचार्य परम्परा पर तो डा. नेमीचन्द्र जैन; पं. परमानन्द जैन, पं. बलभद्र जैन आदि की कुछ रचनाएँ सामने आयी हैं किन्तु पौराणिक राजवंशों (इक्ष्वाकु, सोम, कुरु, रघु, नाथ, भोज, हरिवंश आदि) पर वर्गीकृत शोध के लिए अभी बहुत संभावनाएँ हैं । आशा है, इधर भी विद्वानों का ध्यान जायेगा ।

4. कल्पना के पंखों पर बैठकर तथ्यों को बिना कोई क्षति पहुँचाये जैन पुरातत्व और इतिहास को श्री नीरज जैन ने "गोमटेश गाथा" के रूप में बड़े

सरस और औपन्यासिक ढंग से निबद्ध किया है । उनका यह प्रयास स्तुत्य है और आगे भी इसका अनुकरण जारी रहना चाहिए ।

ये कुछ परिकल्पनाएँ मेरे मन-मस्तिष्क में हैं । इतिहास के शोधार्थी पारखी इन्हें रचनात्मक रूप देंगे, ऐसी आशा है । अन्त में मैं डा. ज्योतिप्रसाद जैन के इन शब्दों के साथ अपनी बात समाप्त करता हूँ कि जैन इतिहास पर किया जाने वाला श्रम जैनों की दृष्टि से ही परमावश्यक नहीं है, अपितु भारतीय एवं विश्व इतिहास की दृष्टि से भी परम उपादेय है ।

जैन इतिहास (सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनैतिक)

पुरातत्व एवं स्थापत्य

– डा॰ कैलाशचन्द्र जैन

जैन धर्म प्राचीन समय से ही प्रायः भारत के समस्त भागों में पाया जाता है । जैन मनीषियों ने देश की विभिन्न भाषाओं में अपने ग्रन्थों की रचना की है । जैन पुरातत्त्व और स्थापत्य के अवशेष प्रत्येक युग के प्राप्त होते हैं, तथा उनमें विविधता है । इस प्रकार से जैन धर्म का भारतीय संस्कृति के विकास और उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

जैन इतिहास :

भारतीय ऐतिहासिक ग्रंथ जैसे "द हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ द इंडियन पीपुल" में जैन इतिहास को भी स्थान दिया गया है । इस धर्म के उदय और विकास पर प्रकाश डाला गया है । यह बतलाया गया है कि विभिन्न युगों में यह धर्म कैसे फला-फूला है । इसके उत्थान में राजाओं व उनके मंत्री, जैन साधुओं और जैन व्यापारियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । चूँकि भारतीय इतिहास के निर्माण में जैन आगमिक साहित्य, कुवलय माला, प्रबन्ध चिन्तामणि, प्रबन्ध कोश, जैन तीर्थ-मालाएँ, प्रशस्तियाँ, पट्टावलियाँ, वंशावलियाँ आदि का प्रयोग किया गया है, इस कारण इन सबका ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व है । कुछ अभिलेख जैसे खारबेल का हाथी गुफा और पुलकेशिन द्वितीय का एहोल भारतीय इतिहास के लिए महत्वपूर्ण माने जाते हैं । जैन साहित्यिक ग्रन्थ भारत की विभिन्न भाषाओं में हर युग के प्राप्त होते हैं, जिनका उपयोग भारतीय साहित्य के इतिहास के लिए किया गया है । जैन धर्म के अहिंसा के सिद्धांत का प्रभाव भारतीय समाज पर स्थाई रहा है । बिना जैन इतिहास के भारतीय इतिहास एक प्रकार से अधूरा ही माना जायेगा ।

जैन पुरातत्व और स्थापत्य :

प्राचीन जैन साहित्य और पुरातत्व से जैन कला की परम्परा बहुत प्राचीन ज्ञात पड़ती है । जैन स्तूप, गुफाएँ, मन्दिर, मूर्तियाँ, भित्तिचित्र और ताड़पत्र व कागज के सचित्र ग्रन्थ के उदाहरण बहुत प्राचीन प्राप्त हुए हैं । काष्ठ तथा वस्त्र पर भी चित्र मिलते हैं । जैन कला के अवशेष देश के

विभिन्न भागों में पाये जाते हैं, तथा वे प्राय: प्रत्येक युग का प्रतिनिधित्व करते हैं । उनमें विविधता भी पाई जाती है । इस प्रकार भारतीय कला के विकास में जैन कला का योगदान बड़ा महत्वपूर्ण रहा है ।

जैन मूर्तियों के लेख तथा कुछ हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रशस्तियाँ जैनियों के धार्मिक, राजनैतिक व सामाजिक इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती हैं ।

<u>परिकल्पनाएँ</u> :

प्रश्न उठता है कि भविष्य के अध्ययन मनन प्रतिपादन के कार्यक्रम को क्या रूप दिया जाये ? उन परिकल्पनाओं पर विचार करना आवश्यक है जिससे जैन विद्या के अध्ययन के विकास की दिशाएँ खुलें ।

§1§ जिस प्रकार डा॰ आर॰सी॰ मजूमदार ने "द हिस्ट्री एण्ड द कल्चर आफ द इंडियन पीपुल" आरम्भ से 1947 ई० तक कुछ जिल्दों में सम्पादित की है, उसी प्रकार से जैन इतिहास भी तैयार किया जाय । डा॰ आर॰सी॰ मजूमदार द्वारा सम्पादित इतिहास में जैन धर्म संबंधी अनेक महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख नहीं किया गया है । यदि इस प्रकार का स्वतंत्र जैन इतिहास लिखा जायेगा तो इन बातों पर विस्तार से वर्णन हो सकता है ।

§2§ पहले इतिहास लिखने का दृष्टिकोण राजाओं तथा उनसे संबंधित संस्थाओं से था, किन्तु अब लोगों का इतिहास लिखा जाता है । मथुरा के अभिलेखों तथा जैन ग्रन्थों से विदित होता है कि जैन धर्म जन-मानस में प्रचलित था । कुम्हार, बढ़ई, मणिकार, गान्धिक, लुहार आदि वर्गों के लोग इस धर्म का अनुसरण करते थे । दक्षिण भारत में एक तिहाई लोग इस धर्म का पालन करते थे ।

§3§ प्रान्तीय जैन धर्म पर कुछ पुस्तकें लिखी गयी हैं, किन्तु फिर भी कुछ प्रान्त जैसे बंगाल, उत्तर प्रदेश, सिंध, पंजाब आदि शेष रह गये हैं । भारतीय जैन इतिहास का ठीक मूल्यांकन करने के लिए यह प्रयत्न आवश्यक है ।

§4§ अनेक जैन अभिलेख एपिग्राफिया इंडिया तथा इंडियन एंटीक्वेरी में प्रकाशित हुए हैं । उनको फ्लीट के कार्पस इंस्क्रिपशनस इंडिकेरम के नमूने पर जैन कार्पस इंस्क्रिपशनम् के नाम से सम्पादित किया जावे ।

§5§ यदि अब भी सर्वेक्षण किया जाये तो अनेक प्राचीन जैन मन्दिर, मूर्तियाँ, अभिलेख, हस्तलिखित ग्रन्थ व प्रशस्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं । ये न

केवल जैन अपितु भारतीय इतिहास के लिए भी उपयोगी है।

साधन व सुविधाओं का स्वरूप :

इन परिकल्पनाओं का व्यावहारिक रूप देने के लिए यह आवश्यक है कि एक संस्था को गठित किया जावे जो विशिष्ट विद्वानों को उनसे संबंधित कार्य सौंपे, आर्थिक सहायता की व्यवस्था करे तथा ठीक अवधि में कार्य करावे। ऐसे कार्यों के लिए विशेषकर रिटायर्ड विद्वानों की सेवाओं का उपयोग किया जा सकता है।

भाषण : [आलेख के पूरक अंश]

मैं दो-तीन बातें बतलाना चाहता हूँ। इन्होंने कहा कि विदेशी विद्वान ने जैन धर्म का इतिहास लिखा। मेरी समझ में उन्होंने जितना मौलिक कार्य किया है उसमें उन्होंने जैन इतिहास कभी नहीं पढ़ा। दूसरी बात उन्होंने जैन धर्म की प्राचीनता के लिए कही। जैन धर्म की प्राचीनता में पहला जैकोबी था। उसने सिद्ध कर दिया कि पार्श्वनाथ ऐतिहासिक पुरुष है। उसके बाद नेमिनाथ, ऋषभनाथ है। यह हम अनुश्रुतियों के आधार पर कह सकते है - इतिहास के आधार पर नहीं कह सकते।

तीसरे उन्होंने यह प्रश्न किया कि जब हम ऋषभ की ऐतिहासिकता सिद्ध नहीं कर सके तो भरत का नाम तो चौथी शताब्दी से चालू हुआ था। इस तरह की कल्पनाएँ नहीं रखनी चाहिए। हमारे निष्कर्ष ऐसे होने चाहिए जो सर्वमान्य हों। जैनेतर विद्वान भी मानें। अपनी प्रशंसा अपने आप अपने ढंग से लिखना मेरी समझ में ठीक नहीं है।

आज से 60-70 वर्ष पहले अंग्रेजों के द्वारा लिखा हुआ इतिहास है उनमें भी बहुत सी भ्रांतियाँ रही हैं। इसके बाद अनेक अनेक इतिहासकारों ने समय-समय पर प्रस्तुत किये हैं। जहाँ तक ऋषभनाथ की ऐतिहासिकता की बात है वह तो इतनी पुरानी बात है कि आज के वातावरण में और साधनहीनता में उसको सिद्ध करना मुश्किल है। लेकिन वह वेदकालीन है। इसमें तो किंचित् संदेह नहीं है। चूँकि वेद सबसे पुरानी सांस्कृतिक विरासत मानी जाती है, अतः जैनधर्म की जड़ें कम से कम वेद के काल तक पहुँचती हैं। यह तो इतिहास प्रमाणित है। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं होना चाहिए।

सबसे प्राचीन प्राच्य विद्या में महत्वपूर्ण जो घटना है सन् 1730 में

विलियम जेन्स ने एसियाटिक सोसायटी की स्थापना की । 1823 में जेम्स ि. ा ने ब्राह्मी लिपि की खोज की वह बहुत महत्वपूर्ण घटना है । कर्नल टाड ने ।..3 और 3 5 में जैन लिपि की सहायता से जैन एंटीक्वीटीज इन राजस्थान लि. यह भी बहुत महत्वपूर्ण घटना है । कनिंघम ने आर्के-लाजिकल सर्वे रिपोर्ट्स ... वोल्यूम्स में जैन तात्विक सामग्री का विश्लेषण किया है । मार्शल ने सर्वे आफ इंडिया जो 1904 में शुरू किया उसमें भी आपको जैन के सम्बन्ध में काफी ... मिलेगी । इसके अतिरिक्त एपीग्राफिक इंडिका जिसका एडीशन 1880 के करी हुआ था । इंडियन एंटीक्वेरी का प्रकाशन भी इसी समय शुरू हुआ था । ... सर्किल रिपोर्टर्स भी लिखी गयी थी । बाद में जैनियों ने सोचा कि हमको भी स्वतंत्र ग्रन्थ लिखना चाहिये और औरों ने भी सोचा । इसमें पूर्णचिन्द्र नाहर "एपीटोमी आफ जैनिज्म " पुस्तक लिखी और इसके पश्चात् वी·वी·लाल ने ... मुनि जिनविजय ने भी इस क्षेत्र में काम किया - उनका योगदान भी काफी है । जैन साहित्य, जैन अभिलेखों पर विन्टरनित्स ने भी लिखा । जैन आगमों पर ... पहले जैकोबी ने लिखा । और यह सिद्ध किया कि पार्श्वनाथ ऐतिहासिक पुरुष ... आधुनिक समय में जगदीशचन्द्र जैन ने "जैन कैनुनस आफ लिटरेचर" पर काफी ... किया । डा· हीरालाल जैन का "जैनधर्म की भारतीय संस्कृति को देन" बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है ।

मैंने आपको बताया प्रारंभ में भी जैन ग्रन्थ लिखे गये है । किन्तु ... जैन धर्म की प्रशास्तियाँ काफी लिखी गईं । और जो अंग्रेजी ग्रन्थ लिखे गये ... का अनुवाद किया गया । उनमें कोई मौलिक देन नहीं है । प्रश्न यह है कि ... धर्म का भारतीय संस्कृति को क्या योगदान है । जहाँ तक मेरा अध्ययन है जैनधर्म का जैन आचार्यों ने नैतिक स्तर पर बहुत जोर दिया है । अहिंसा, ब्र... अपरिग्रह । अगर आप राजस्थान, मालवा और दक्षिण का इतिहास देखें ... शाकाहार पर बल रहा है । अहिंसा का सारी भारतीय संस्कृति पर प्रभाव पड़ा ।

मैंने राजस्थान में जैनधर्म के बारे में लिखा है । "लार्ड महावीर एंड ... टाइम्स" भी मैंने लिखा है । मैं एक इतिहास लिखना चाहता हूँ - जैन इतिहास की दृष्टि से नहीं ; भारतीय विद्या भवन के जैसे वोल्यूम्स निकले हैं उसी तरह से । परन्तु मैं जैन स्रोतों-सामग्री को उतना ही स्थान दूँगा जितना उसका महत्व है ।

एक प्रश्नोत्तर

प्रश्न : बालचन्द्र जैन

मैं समय नहीं लूँगा ज्यादा । मेरा निवेदन यह था कि डाक्टर साहब का लेख बहुत बड़ा है – विस्तार से लिखा हुआ है । मैं चर्चा कर रहा था कि कहीं-कहीं हम लोग भी फंडामेंटल्स में चूक जाते हैं, जिसका असर थोड़ा-सा कभी-कभी गलत हो जाता है । जैसे डाक्टर साहब ने प्रयोग किया निगण्ठनाथ पुत्त अशोक के शिलालेखों में मिलता है । मेरा ऐसा ख्याल है कि यदि अशोक के सभी शिलालेखों को देख लिया जाय तो पता लगता है कि निगण्ठ तो मिलता है लेकिन निगण्ठ नाथपुत्त नहीं मिलता । यदि निगण्ठ नाथपुत्त अशोक के शिलालेखों में मिलने लगे तो हम सिद्ध कर दें कि अशोक जैन था जो कि आज विवादास्पद हो गया है । कभी-कभी कुछ चीजें ऐसी हो जाती हैं ।

उत्तर : डा. कैलाशचन्द्र जैन

निगण्ठनाथ पुत्त अशोक के शिलालेखों में नहीं मिलता; वह बौद्ध जातक कथाओं में आता है ऐसा मैंने कहा है । दोनों आधार पर कहा – दोनों बातें अलग-अलग थीं । सुनने में आपस में मिल गया इसलिए ऐसा हुआ ।

एक प्रस्ताव : डा. प्रेमसुमन जैन

एक बात हमें कहनी है कि इतिहास और संस्कृति के संबंध में हम चर्चा करते हैं । मैं केवल विद्वान मित्रों से प्रस्ताव रखना चाहता हूँ कि वे स्वयं जो पेपर पढ़े, उस विषय पर क्या काम करना चाहते हैं और काम करने के लिए अपना क्या उत्तरदायित्व बताते हैं । वह भी कहते जायें । तब तो ये लगे, हाँ हम तैयार हैं, कुछ करने जा रहे हैं । अन्यथा हम प्रशस्ति गाते रहें तो यह सारा समय निकल जायेगा । अगर 20 आदमी भी कह दें कि हम 20 प्रोजेक्ट पर काम करेंगे तब तो हम मानेंगे कि ये गोष्ठी सफल है । मैं जानना चाहूँगा कि प्रस्तुत पेपर के लेखक 5 साल में, 10 साल में, 15 साल में क्या काम हाथ में ले रहे हैं । ऐसा हरेक विद्वान कहे तो हरेक समस्या हमारी हल हो सकेगी । यही मेरा निवेदन है ।

"जैन समाज के सामाजिक इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता और समस्यायें

- डा॰ नेमीचन्द जैन, इन्दौर

1॰ मार्च 1981 में वाराणसी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में "जैन धर्म के सामाजिक इतिहास की रूपरेखा - 1901 -1910" शीर्षक से एक शोधपत्र मैंने एकत्रित विद्वानों के सम्मुख रखा था और चाहा था कि इस दिशा में कोई सावधान प्रभावी कदम उठाया जाए ; किन्तु न तो किसी सामाजिक इतिहासवेत्ता की आँख खुली और न ही किसी संस्था का ध्यान इस महत्व की प्रायोजना की ओर गया । एक साल से ऊपर हो जाने के बाद आज पुनः मेरा ध्यान इस ओर गया है ; किन्तु इस बार मैंने कई ग्रन्थों को देखा है और इस सन्दर्भ में कई विशेषज्ञों से मिला हूँ । मैंने पाया है कि जैन समाज का सामाजिक इतिहास बहुत फैला हुआ है, अतः उससे सम्बन्धित तथ्यों के एकत्रण, एकीकरण, संगठन और व्यवस्थापन की आवश्यकता है । इस दिशा में हमारा ध्यान वस्तुतः एक ऐसे इतिहासकार की भाँति नहीं जायेगा जो व्यतीत/मृत तथ्यों का कोरा निर्जीव आकलन करता है अपितु वह उस इतिहासवेत्ता की तरह होगा जो तथ्यों को अपने जीवन्त/विश्लेषणात्मक हाथों से इसलिए छूता है कि उसके वैसा करने से समाज के भावि को स्पष्ट किया जा सके और अतीत अभग्न/अक्षत/अक्षुण्ण बना रहे, उस पर कोई आँच न आये । यह प्रक्रिया बेहद दहनशील, नशीली, खतरों भरी है ; किन्तु एक सम्यक्/संतुलित इतिहास लेखन के लिए अपरिहार्य है ।

2॰ मैंने अपने शीर्षक में "पुनर्लेखन' शब्द का उपयोग किया है । वह सार्थक इस मायने में है कि जाने-अनजाने कुछ ऐसे ग्रन्थ हमारे सामने आये हैं, जिनमें हमारा सामाजिक इतिहास दर्ज तो हुआ है; किन्तु बिखराव अनवरत बना रहा है ; किन्तु अब वह क्षण पूरी शक्ति से उपस्थित है जब हमें उसे व्याख्यात्मक शैली में प्रस्तुत करना है । उदाहरणार्थ, "जैन जागरण के अग्रदूत" - अयोध्याप्रसाद गोयलीय - भारतीय ज्ञानपीठ -- 1952 - एक ऐसी पुस्तक है, जो संस्मरणपरक होकर भी तथ्यनिष्ठ/विपुल है और सामाजिक इतिहासकारों को तथ्यों के आकलन/एकीकरण और पुनर्लेखन की प्रेरणा देती है । सही है कि जिस सामाजिक इतिहास को हम लिख डालना चाहते हैं, वह किसी एक व्यक्ति का कार्य नहीं होगा अपितु एक प्रधान सम्पादक के साथ प्रशिक्षित सहसम्पादकों का एक दल इस काम को पूरी सावधानी से सम्पन्न करेगा ।

3. प्रश्न उठाया जा सकता है कि इस तरह के इतिहास-लेखन की आज क्या आवश्यकता है ? क्या इससे अधिक अहम सवाल हमारे सामने नहीं है ? वस्तुतः हम सामाजिक इतिहास-लेखन के काम में आज काफी पीछे छूट गये हैं । हमने धर्म, साहित्य भाषा इत्यादि के इतिहास तो लिखे हैं, किन्तु उन प्रवृत्तियों की विकास-कथा लिखना हम भूल गये हैं, जो हमारी तत्कालीन चेतना से जुड़ी हुई है और आगे चल कर जो हमारी भावी पीढ़ी का मार्गदर्शन करेगी । इस/ऐसे इतिहास के लेखन में अनेक सावधानियों का ख्याल रखना होगा । समग्रता, सम्प्रदायातीत कार्यशैली, वस्तुन्मुख दृष्टि, पूर्वाग्रह मुक्त समीक्षा और असंदिग्ध व्याख्या को केन्द्र में रख कर ही यह काम हमें करना होगा । वस्तुतः जहाँ एक इस तरह का इतिहास हमारे प्राचीन गौरव का सम्यक् परिचायक होगा, वहीं वह हमारे भावी सामाजिक विकास के लिए प्रेरणा, मार्गदर्शन और नियमन का काम भी करेगा । "पुनर्लेखन" से यहाँ हमारा आशय है तथ्यों को इतिहास की भाषा में प्रस्तुत करना ताकि वे हमारी विकास-कथा के प्रामाणिक दस्तावेज़ बन सकें । टुकड़ों में, एक असरदार तथा विलीन होते बिखराव में तो हमारा सामाजिक इतिहास आज उपलब्ध है, किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जाता है इसके लेखन/पुनर्लेखन की संभावनाएँ मंद/धूमिल पड़ती जाती हैं । जो भी हो हमें किसी भी स्थिति में इस प्रायोजन/प्रोजेक्ट को अविलम्ब हाथ में लेना, और सम्पन्न करना चाहिए ।

4. प्रश्न यह भी उठ सकता है कि इस तरह के सामाजिक इतिहास-लेखन के निमित्त सामग्री कहाँ से आयेगी ? उत्तर मुश्किल होते हुए भी बहुत स्पष्ट है । हमें इस कार्य के लिए एक व्यापक सर्वेक्षण करना होगा । कई-कई सामग्री स्रोत होंगे, जिनके माध्यम से हमें पूरी सतर्कता के साथ तथ्यों का आकलन/दोहन करना होगा । हमारी दृष्टि में सामग्री संचयन के अग्रलिखित स्रोत हो सकते हैं ।

1. सबसे पहले हमारा ध्यान पत्र-पत्रिकाओं की ओर जाता है, जिनमें समाज में होते रहने वाले आन्दोलनों, विवादों, परिवर्तनों, घटनाक्रमों आदि की सूचनाएँ संवादों/लेखों/टिप्पणियों/सम्पादकीयों के रूप में रहती हैं । "जैनमित्र" "जैन हितैषी" "जैन बोधक" जैसी पत्र-पत्रिकाओं के पुराने अंक इधर के सौ वर्षों का इतिहास प्रस्तुत करने में हमारी पर्याप्त मदद कर सकते हैं ; वस्तुतः इधर का हमारा सामाजिक इतिहास भी कई कारणों से महत्त्वपूर्ण है । उक्त पत्र-पत्रिकाओं के अध्ययन से हमें इस तथ्य का पता लगता है कि जैन समाज ने किस तरह

युग की चुनौतियों का सामना किया अथवा किस तरह उसने उनके आगे घुटने टेके । इस बीच कई आन्दोलन क्षितिज पर आये, कई संस्थाएं स्थापित हुईं, कई व्यक्तियों ने समाज के नेतृत्व की बागडोर अपने हाथ में ली; इन सबका व्याख्यात्मक अध्ययन आवश्यक है । जैन समाज किस तरह क्रमशः आधुनिकता की ओर पग उठाता गया, इसे जानना और इसके ऐतिहासिक/सामाजिक कारण ढूंढना भी काफी रोचक होगा भारतीय इतिहास में गत शताब्दी में जो सामाजिक मोड़ आये हैं, उन्हें लाने में जैनों की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका रही है, इसका मूल्यांकन भी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हो सकता है ।

2. आत्मकथाओं के माध्यम से भी तथ्यों का आकलन सम्भव है । "मेरी जीवन-गाथा" "अर्द्धकथानक" आदि इसी के दस्तावेज़ हैं ।

3. जैन-जैनेतर इतिहासों में से भी तथ्यों का आकलन किया जा सकता है । साहित्य आदि के इतिहास भी हमें सामाजिक प्रवृत्तियों की जानकारी दे सकते हैं । इनका उपयोग भी किया जाना चाहिए ।

4. नये पुराने यात्रा-वृत्तान्त भी इस सन्दर्भ में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं ।

5. शिलालेखों/मूर्तिपट्टों/मन्दिरों/चैत्यालयों आदि के उपलब्ध विवरणों से भी इस दिशा में काफी सहायता मिल सकती है ।

6. सल्लेखनाओं/समाधियों आदि से भी हम अपनी जानकारी समृद्ध कर सकते हैं । कई जगह चरण-पादुकाओं को स्थापित करने की प्रथा है, इनसे भी तत्कालीन लोकचित्त/क्षमता की जानकारी हमें मिल सकती है ।

7. अभिनन्दन ग्रन्थों, स्मारिकाओं, स्मृतिग्रन्थों आदि से भी तथ्यों का सुनियोजित दोहन सम्भव है । इस दिशा में महोत्सव, मानपत्र, अभिनन्दनपत्र भी हमारी सहायता कर सकते हैं ।

8. जीवनचरित्रों से भी सामग्री आकलित करना सम्भव है ।

9. कुछ बड़े जैन खानदानों के व्यक्तिगत विवरणों से भी कई प्रामाणिक सूचनाएं प्राप्त हो सकती है। अभी समय है कि हम इस तरह के ठोस स्रोतों का उपयोग कर लें अन्यथा कुछ समय बाद ये दुष्प्राप्य हो जायेंगे ।

10. उन व्यक्तिगत पत्रों का भी एकत्रण किया जा सकता है, जो उन व्यक्तियों से सम्बन्धित रहे हैं, जिन्होंने हमारे सामाजिक आन्दोलनों/घटनाओं को प्रभावित किया है अथवा जिनकी सामाजिक बदलाव में महत्व की भूमिका

रही है ।

11• इस दृष्टि से डायरियों/दैनंदिनियों का महत्व भी कम नहीं है । यद्यपि इन्हें प्राप्त करना आसान नहीं है तथापि यदि ये मिलती हैं तो इनके माध्यम से कई दुर्लभ तथ्य प्राप्त किये जा सकते हैं ।

12• जो लोग बड़े उद्योगपति/कारखानेदार/व्यापारी/व्यवसायी रहे हैं, उनकी खातेबहियों से भी बहुविध सामाजिक तथ्यों को संकलित किया जा सकता है । कई उद्योगपतियों, व्यापारियों/राजकीय महत्त्व के जैनों ने समय-समय पर मन्दिर/चिकित्सालय/विश्रामालय आदि बनवाये हैं, ऐसे व्यक्तियों के वित्तीय विवरण काफी महत्त्व के सिद्ध हो सकते हैं ; इनका भी काफी सावधानी से दोहन किया जाना चाहिए ।

13• हैंडबिल्स, पोस्टर्स, भित्तिपत्र आदि भी इस दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होंगे । इनका आकलन भी किया जाना चाहिए । हमारे यहाँ मन्दिरों में सूचनाएँ टाँगने का रिवाज रहा है, अतः इस तरह के सूचनापत्र प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । पंचायतों के निर्णय भी यदि मिल सकते हों तो वे भी हमारी मदद कर सकते हैं । इनसे हम घटनाओं, व्यक्तियों की तालिकाएँ तैयार कर सकते हैं और तदनन्तर संबंधित विवरणों को लेकर अधिक जानकारी एकत्रित करने का प्रयत्न कर सकते हैं । इस दृष्टि से "जैन जागरण के अग्रदूत" में काफी चुनौतियाँ हैं । इस कार्य को सामाजिक इतिहास-लेखन का "कखग" मान कर आगे बढ़ा जा सकता है ।

14• उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम तथा बीसवीं सदी के आरम्भिक दो दशकों में जैन समाज की सार्वदेशिक/आंचलिक/प्रादेशिक डायरेक्टरियाँ प्रकाशित हुई हैं ; इनके माध्यम से भी तत्कालीन जैन समाज की नब्ज पर हमारी अंगुलियाँ जा सकती हैं । इस दिशा में डा• विलास आदिनाथ संगवे का कार्य अत्यधिक गहन/प्रामाणिक है । उसे आधार बनाया जा सकता है । इधर के दशकों में भी कई डायरेक्टरियाँ और व्यक्ति-विवरण प्रकाश में आये हैं, इन्हें भी सामाजिक इतिहास के पुनर्लेखन/पुनर्व्यवस्थापन का आधार बनाया जा सकता है ।

15• जैन समाज अनेक सामाजिक/राष्ट्रीय आन्दोलनों से सम्बद्ध रहा है, इनके अहवालों का उपयोग भी किया जा सकता है । इनसे समाज के वित्त की काफी प्रामाणिक झलक मिल सकती है ।

16• अभी कई लोग ऐसे उपलब्ध हैं जिन्होंने समाज की कम-से-कम पौन सदी

को दर्पण की तरह अपनी आँखों से देखा है । ऐसे प्रत्यक्षदर्शियों से "बातचीत" रिकार्ड की जानी चाहिए । इन बातचीतों के माध्यम से जहाँ एक ओर हम संकलित तथ्यों को पुष्ट कर पायेंगे, वहीं दूसरी ओर हमें कई नयी जानकारियाँ भी प्राप्त हो सकेंगी । इन बातचीतों को बहुमूल्य दस्तावेज़ों की तरह सुरक्षित रखा जा सकता है ।

17• संस्थाओं के वार्षिक विवरणों का एक बृहद् संग्रहालय भी बनाया जा सकता है । इन वार्षिक विवरणों से हमें कतिपय आंचलिक प्रवृत्तियों/सामाजिक परिवर्तनों की प्रामाणिक जानकारी मिल सकेगी । इस काम को पूरी तत्परता तथा सावधानी से किया जाना चाहिए ।

18• कई ऐसे विद्वज्जन हुए हैं जो निजी उपयोग के लिए टिप्पण/नोट्स लेते रहे हैं । इन्हें भी इन-इन पंडितों के वंशधरों से प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । इनके चित्र/पत्र/अन्य दस्तावेज़ सामाजिक इतिहास-लेखन में काफी उपयोगी साबित होंगे ।

5• इन सारे स्रोतों से प्राप्त सामग्री के आधार पर जब हम जैन समाज के सामाजिक इतिहास के लेखन/पुनर्लेखन का दायित्व हाथ में लेंगे तब हमारे सामने कई-कई समस्याएँ उपस्थित होंगी । सामग्री की अपूर्णताएँ/अपरिपक्वताएँ हमारी हमारी आरम्भिक बाधाएँ होंगी, जिनके लिए हमें उक्त स्रोतों का अत्यधिक सावधानी से उपयोग करना चाहिए ।

6• ग्रन्थालयों का अभाव हमें अनवरत चुभेगा । ग्रन्थ हमारे पास हैं ; किन्तु एकीकरण के अभाव में अड़चनें आयेंगी । इस दृष्टि से हमारे सरस्वती-भण्डारों का एक व्यापक/गहन सर्वेक्षण किया जाना चाहिए ताकि प्राप्त स्रोतों की व्यापक सूचियाँ बनायी जा सकें और उन्हें किसी एक केन्द्रीय जैन ग्रन्थालय में अवलोकनार्थ/उपयोगार्थ रखा जा सके । दरअसल, अभी हमारे पास किसी केन्द्रीय जैन ग्रन्थालय की कोई योजना नहीं है । संभवत: श्री महावीरजी में इस तरह का कोई विशाल/परिपूर्ण ग्रन्थालय आकार ग्रहण करे । तीर्थ के अध्यक्ष/मंत्री इस ओर पूरी निष्ठा से यत्नशील हैं । यदि इस तरह के दो-तीन ग्रन्थालय देश में बनते या बनाये जाते हैं तो उन्हें वैज्ञानिक साधनों के इस्तेमाल से तथ्यों से अधिकाधिक लैस किया जाना चाहिए ।

7• ऐसा होने के बाद "सामाजिक इतिहास" में रुचि रखने वाले योग्य विद्वानों का एक दल गठित किया जाना चाहिए, जो सारे देश का भ्रमण करें

और केन्द्रीय ग्रन्थालयों/शोध-संस्थानों में प्राप्त तथ्यों के व्यवस्थापन/वर्गीकरण पर अनेक स्तरों से विचार-विमर्श करें तथा सामाजिक इतिहास-लेखन की एक परिपक्व रूपरेखा तैयार करें । इस दृष्टि से वित्तीय साधनों की भी आवश्यकता होगी ; प्रशिक्षित व्यक्तियों की ज़रूरत से भी हम इंकार नहीं कर सकेंगे ; अतः दोनों प्रावधानों पर भी हमें समय रहते विचार कर लेना होगा ।

जैन इतिहास, पुरातत्व एवं स्थापत्य

- नीरज जैन, सतना.

भारतवर्ष के इतिहास पर किसी भी दृष्टि से विचार किया जाये, चाहे उसकी सांस्कृतिक समृद्धि का आकलन करें, या उसकी सामाजिक संरचना को व्याख्यायित करें अथवा उसके राजनैतिक उत्थान-पतन का लेखा-जोखा लगाने बैठें, जैन तत्व उस इतिहास में सर्वव्यापी तत्व की तरह उपस्थित मिलेंगे । हमारी भाषा हो या साहित्य हो, वास्तुकला हो या मूर्तिकला हो, जैन सर्जनहारों ने सर्वत्र अपनी सार्वकालिक छाप से उसे अंकित किया है । सृजन की दीर्घ यात्रा में उनका योगदान प्रचुर है, महत्वपूर्ण है और उदारता से भरा हुआ है । यह बात जुदी है कि इस लम्बे इतिहास का वर्गीकरण करके, प्रत्येक विधा के यत्र-तत्र बिखरे प्रमाणों का संकलन और अध्ययन प्रस्तुत करने के सम्यक् प्रयास अभी तक नहीं हो सके हैं । अपने अतीत को हम स्वयं अब तक न्याय नहीं दे सके हैं । शायद अब वह समय आ गया है जब उस दिशा में प्रयत्नों का प्रारम्भ हमारे संकल्पों में सम्मिलित होने जा रहा है ।

अपनी पुरा-सम्पदा को सरसरी दृष्टि से देखने पर जो चित्र हमारे समक्ष उपस्थित होता है, वही अगली पंक्तियों में प्रस्तुत है ।

वास्तुकला

मथुरा के कंकाली टीला जैन स्तूप की वास्तु रचना विधान की परिकल्पना की जा सके, जो कि बहुत कठिन नहीं है, तो लेखांकित शिल्प स्तूपों में उसका प्रमुख स्थान ठहरेगा । खण्डगिरि-उदयगिरि के गुफा मन्दिरों लोमशऋषि की गुफा को इसके साथ मिलाकर परखने पर मौर्य, खारवेल और कुषाण काल की वास्तुकला का सर्वांग अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है ।

गुफा मन्दिरों की निर्माण शैली के क्रमिक विकास का अध्ययन करते हुए देश के जैन गुफा मन्दिरों की वास्तुगत विशेषताओं पर विचार करके काल-क्रमानुसार उनकी तालिका प्रस्तुत करने का काम अभी तक प्रारम्भ नहीं किया जा सका ।

गुफा मन्दिरों से निकलकर गुप्तकाल के सपाट छतवाले, अथवा छोटे-छोटे कुम्भ-कलशों से युक्त प्रतीक शिखर वाले मन्दिरों की परिगणना में जैन-अवशेषों की शोध अभी करना शेष है ।

ऊँचे शिखर वाले मन्दिरों में उत्तरभारत की "नाग-वेसर शैली" और दक्षिण भारत की "द्रविड़ शैली" के मन्दिरों का कालानुसारी क्रमिक विकास और समय-समय पर उनमें हुए वास्तुगत परिवर्तन-परिवर्द्धन स्वयं अपनी यात्रा की कथा कह सकते हैं। उनका यह अध्ययन सचमुच बहुलरोचक हो सकता है। इन मन्दिरों की दीवारों में, वेदियों और उपवेदियों पर, अनेक लघुकाय मन्दिरों का अंकन हमें और भी बहुत सी वास्तुगत विशेषताओं का परिचय दे सकता है।

आवश्यकता है कि चतुर्दिक फैली हुई इस धरोहर का लेखा-जोखा तैयार हो और शोधकर्ताओं द्वारा उनके प्रत्येक प्रच्छन्न पहलू को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया जाय।

मूर्तिकला

तीर्थंकर प्रतिमाओं का उद्भव, उनकी पीठिका में धर्मचक्र और प्रभामण्डल के आसपास विद्याधरों अथवा देव-युगलों का समावेश। तीर्थंकरों की पीठिका पर शासन देवताओं की उपस्थिति और उनका विकासक्रम, उनके परिकर में चामरधारी इन्द्र, छत्र और अन्य परिकर प्रतिमाओं का प्रवेश। पीठिका पर तीर्थंकरों के चिन्ह और वक्ष पर अंकित श्रीवत्स के आकार और प्रकार। यह सब एक लय-बद्ध विकास के रूप में हमें दिखायी देता है। इन प्रतीकों की समृद्धि से युक्त हजारों दिगम्बर जिनबिम्ब, सैकड़ों प्राचीन स्थानों पर पाये जाते हैं। इनमें बहुतों के साथ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों वाले मूर्तिलेख अंकित हैं। बहुतों के साथ ऐसी रहस्यमय प्रतीक रचनायें उपलब्ध हैं जिनके अर्थ हम आज तक नहीं समझ पाये हैं। इन मूर्तियों में एक-एक पाषाण खण्ड पर कहीं आदि और अन्तिम जिनेश्वर का युगल अंकित है, कहीं तीन चक्रवर्ती तीर्थंकर विराजमान हैं, कहीं चार को जोड़कर सर्वतोभद्रिका का सृजन हुआ है और कहीं पाँच बालयति तीर्थंकरों का समूह अंकन प्राप्त होता है। चौबीसी की चौबीस प्रतिमाएँ, तीन चौबीसी के बहत्तर बिम्ब और सहस्रकूट के अंकन अलग है। और भी कुछ सम्भीकरण होंगे और हो सकते हैं, इन सबका विधिवत लेखा-जोखा होना चाहिए।

तीर्थंकर मूर्तियाँ जितनी भी हैं, उनसे कई गुनी संख्या है शासन देवताओं की, अप्सरा मूर्तियों की और किन्नर-गन्धर्व, व्याल आदि प्रतीक प्रतिमाओं की। कुछ विरल प्रतीक भी हैं जिनमें तीर्थंकर की जननी, उनके सोलह स्वप्न, आदिनाथ के साथ भरत और बाहुबली, नेमिनाथ की बरात, अम्बिका, धरणेन्द्र-पद्मावती और चक्रेश्वरी के विविध अंकन रखे जा सकते हैं। अष्ट-दिक्पाल,

नवग्रह, दसभुजा देवियाँ, द्वादश राशियाँ, सप्ताश्व, सत्ताईस नक्षत्र सोलह विद्यादेवियाँ और अपने-अपने वाहन तथा आयुधों से युक्त चौबीस शासनदेवियाँ कितने प्रकार से कहाँ-कहाँ अंकित हैं, उनमें कितनी विविधताएँ हैं, कैसे-कैसे उनमें परिष्कार हुआ है, यह सारा गणित हमारे ही आंगन में पाषाण खण्डों पर लिखा हुआ सदियों से उपेक्षित पड़ा है ।

शिल्प में अंकित प्रतीकों की भाषा हमें समझना है और निर्धारित भी करना है । खण्डगिरि-उदयगिरि के शिल्पांकनों की पुराण कथाओं के साथ संगति बैठानी है । मूर्तिकला में अति सहज भाव से संकेतों और प्रतीकों का जो आदान-प्रदान हुआ है, उसे हमारे आचार्यों ने जो अर्थ दिये थे वे खो गये हैं । सन्दर्भ ढूँढ कर उन अर्थों की प्रतिष्ठा करना है, उनकी सार्थकता और आनुषंगिकता सिद्ध करना है । अर्हन्त की पूजा धर्म है या नहीं, उनका अभिषेक धर्म संभव है या नहीं, शासन देवताओं का अस्तित्व है या नहीं, ये प्रश्न और इनके उत्तर निर्गुण उपासना के बौद्धिक धरातल पर पहुँचे हुए साधकों को भले ही तृप्ति दे दें परन्तु लक्ष-लक्ष उपासकों के लिए अर्हन्त की प्रतिमा धर्म साधना का ही निमित्त है । उसका प्रक्षाल, पूजन और आरती उनके पुण्य अर्जन का साधन है । उसके लिए वह जिनेन्द्र के मार्ग से अनुबद्ध रहने का बड़ा शाश्वत माध्यम है । हमारे पूर्वज आचार्यों ने जन-कल्याण की जिस भावना से, जिस उपयोगिता और सार्थकता को दृष्टि में रखकर, मूर्ति और मन्दिर निर्माण में इन सारी विविधताओं का समावेश किया था, उस दृष्टि को समझना, उस महत्त्व को आंकना बहुत बड़ा काम है, बहुत हितकारी काम है ।

चित्रकला

शास्त्रों की चित्रित पाण्डुलिपियों और भक्तामर आदि काव्यों के आधार पर अंकित चित्र तथा करणानुयोग के ग्रन्थों की संदृष्टियाँ वैसे ही हमारे पास बहुत थोड़ी हैं, वे भी बड़ी तेजी के साथ विलीन होती जा रही हैं । रंगीन ट्रांसपेरेन्सी और माइक्रोफिल्मिंग के इस वैज्ञानिक युग में भी यदि हम उनके संरक्षण का प्रयास नहीं कर पाये तो इस उपेक्षा के लिए कौन दोषी होगा यह हमारे विचारने की बात है ।

भित्तिचित्रों में हम समृद्ध भले न हों, पर विपन्न भी नहीं हैं । यह अवश्य खेद की बात है कि हमारी वह धरोहर प्रकाशित और प्रचारित तो है ही नहीं, विधिवत् संरक्षित भी नहीं है । सित्तन्न वासल के भित्तिचित्र मध्यकालीन तूलिका के उत्कृष्ट वरदान माने जा सकते हैं । उनके विनाश में

अधिक देर नहीं है । एलोरा में इन्द्रसभा के चित्रांकन हमारे देखते-देखते विनष्ट हो रहे हैं । तिनकाची के तिरुपरुत्तिकुनरम् के मन्दिर में जो उत्तर मध्यकालीन चित्रांकन है, वह घोर अव्यवस्था के बीच परकृत उपसर्ग और प्रकृतिजन्य परीषह अधिक काल तक सह सकेगा इसमें सन्देह है । परवर्तिकाल में मराठा, मुगल और राजपूत शैलियों के अनगिनत चित्र, मन्दिरों की दीवारों पर, छतों पर और शास्त्र की पाटियों पर बिखरे हुए हैं। अज्ञानवश कहीं उन्हें तोड़कर मन्दिरों का नवीनीकरण हो रहा है, कहीं उन पर चूना और डिस्टेम्पर पोतकर दीवारों को चमकाया जा रहा है और कहीं सीलन या दीमक या हमारी कोई अन्य उपेक्षा उनके अस्तित्व को धमकी दे रही है ।

पूर्वजों की इस अनमोल धरोहर के बारे में जो जानते ही नहीं हैं, उनका महत्व जिन्हें ज्ञात ही नहीं है, उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता । हमसे भी अनजाने में और साधनों के अभाव में जो अपराध हो गया उसके परिमार्जन का यही मार्ग है कि अब बिन समय खोये अपनी पूरी शक्ति और साधन लगाकर हम उस धरोहर के संरक्षण में जुट जाये । इस अभियान के लिए मार्ग तो विशेषज्ञ ही बता सकेंगे, किन्तु कुछ संकेत इस प्रकार हो सकते हैं -

(अ) समस्त प्राचीन मन्दिरों और खण्डहरों तथा खण्डित और अखण्डित मूर्तियों के संबंध में अधिक से अधिक सूचनाएँ/विवरण एकत्र किये जायें । उनके फोटोग्राफ्स तैयार कराये जायें । उन्हें प्राकृतिक क्षरण और संभावित विनाश से बचाने के उपाय किए जायें ।

(ब) जैन कला के विकास का क्रमबद्ध इतिहास तैयार कराकर इन अवशेषों के ऐतिहासिक सन्दर्भ निश्चित किये जायें ।

(स) जैनकला के संग्रहालयों को रख-रखाव और प्रचार-प्रसार के लिए सक्षम बनाया जाये । जहाँ सामग्री सहज उपलब्ध है वहाँ तत्काल नये संग्रहालयों की स्थापना की जाये और उनके वैज्ञानिक ढंग से संचालन के लिए आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्थाएँ की जायें ।

(द) शोध छात्रों को अपनी ओर से शोध के विषय और शोधवृत्ति प्रदान करके पूर्व निर्धारित शोधकार्य हाथ में लिया जाये । जिन विश्वविद्यालयों में जैन विद्यापीठ स्थापित हैं उन्हें योजनाबद्ध कार्यक्रम के लिए प्रोत्साहित और बाध्य किया जाये ।

भारतीय मूर्तिकला के विकास में जैनों का योगदान

भारतीय संस्कृति का विकास अपनी चिरलम्बी यात्रा को पार करके अपने वर्तमान तक पहुँचा है, उस यात्रा की कथा बड़ी रोचक है। संस्कृति के सन्दर्भ में भारतवर्ष को हम एक बड़े भारी उपवन की तरह समझ सकते हैं। उपवन की शोभावृद्धि में हर पौधे का, प्रत्येक लता का और यहाँ तक कि धरती की दूब का भी महत्वपूर्ण योग होता है। दूब, लता, पौधे और वृक्ष अपने आप में उपवन नहीं कहे जा सकते, किन्तु इनका समूह सहज ही उपवन का नाम पा जाता है और उसकी शोभा सुषमा का भागीदार बन जाता है। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति के विकास में कला की जिन विधाओं का और कला के जिन प्रकारों का योगदान है, वे सब उसकी महानता के भागीदार हैं।

भारतीय संस्कृति के विकास की इस प्रक्रिया में जैनों का बहुमुखी योगदान रहा है; चाहे वह साहित्य का क्षेत्र रहा हो, चाहे ललित कलाओं की किसी भी विधा का क्षेत्र रहा हो। आदिम युग की भित्ति-चित्रकला से लेकर परवर्ती काल के पाण्डुलिपि, चित्र-फलकों तक तथा ईसा पूर्व के स्तूपीय वास्तु शिल्प से लेकर, शैलोत्कीर्ण गुफा मन्दिरों की दुर्गम राह से होते हुए परवर्तीकाल के गगनचुम्बी, शिखर शोभित अलंकृत मन्दिरों तक और शुंगकालीन आयागपट्ट की प्रतीक प्रतिमाओं से लेकर कुण्डलपुर के बड़े बाबा और श्रवणबेलगोल के गोम्मटेश्वर तक भारतीय कला के विकास में सर्वत्र जैन कलाकार अपना महत्वपूर्ण योगदान बड़ी सक्षमता के साथ अर्पित करता दिखाई देता है।

इस छोटे से लेख में विचार करने का प्रयत्न किया जायेगा कि "भारतीय मूर्तिकला के विकास में जैनों का योगदान" कहाँ तक अपने उचित उत्तरदायित्व के सन्दर्भ में पर्याप्त कहा जा सकता है।

हमारे देश में मूर्तिकला के अवशेष तथा प्रमाण आज से सवा दो हजार वर्ष पूर्व तीसरी शती ईसा पूर्व से मिलना प्रारम्भ होते हैं। इसी समय से ही हमें जैन स्थापत्य तथा मूर्तियाँ बड़ी संख्या में प्राप्त होती हैं। अवशेषों से यहाँ हम तीन हजार वर्ष ईसा पूर्व के हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो के अवशेषों की गणना नहीं कर रहे क्योंकि अभी तक उस कला का न तो पूर्वापर संबंध जोड़ा जा सका है और न उस काल की लिपि ही पढ़ी जा सकी है।

तो भी, सैन्धव सभ्यता के अवशेषों में भी हमें एक विशाल स्कन्ध युक्त वृषभ तथा एक जटाधारी योगी का अंकन - वहाँ प्राप्त हुए हैं । वृषभ तथा जटाजूट के कारण हम योगी की प्रतिमा को प्रथम जैन तीर्थंकर मान सकते हैं । यहाँ से प्राप्त अवशेषों में एक धड़ भी है जो खड्गासन है तथा स्पष्ट ही जैन मूर्ति से मिलता जुलता है ।

वर्तमान प्रमाणों के आधार पर यदि हम तीसरी शती ईसा पूर्व के काल को भारतीय मूर्तिकला के उद्भव का प्रारंभ मानें तो हमें ज्ञात होता है कि प्रारम्भ से ही भारतीय मूर्तिकला के उद्भव और विकास की इस यात्रा में जैन कलाओं का योगदान उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण रहा है । भारतीय मूर्तिकला की कोई ऐसी परम्परा या विधा नहीं है, जिसका सम्पूर्ण और सही प्रतिनिधित्व जैन कलावशेषों में प्राप्त न होता हो । यह बात केवल विविधता पर ही नहीं, बहुलता पर भी लागू होती है । उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक प्रायः समस्त देश में प्रत्येक काल का प्रतिनिधित्व करने वाले जैन शिल्पावशेष इतनी प्रचुर मात्रा में हमें उपलब्ध होते हैं कि उनके माध्यम से भारतीय मूर्तिकला का सर्वांगीण अध्ययन सुगमता पूर्वक किया जा सकता है । नागरी लिपि के क्रमिक विकास का अध्ययन किया जा सकता है; गुर्वावली तथा गच्छ और गण परम्परा में अनेक नये नाम जोड़े जा सकते हैं और जैन कथा साहित्य के कतिपय सर्वथा नवीन आख्यानों का उद्घाटन किया जा सकता है । यह बात अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी कि "पत्थरों से सिर टकरा कर" इन उपलब्धियों की प्राप्ति के लिए जो अध्यवसाय और श्रम किया जाना चाहिए, उसका शतांश भी अभी नहीं किया गया है ।

यही स्थिति अप्रकाशित जैन साहित्य तथा अप्रसिद्ध जैन चित्रकला की भी है । साहित्य में तो मेरी गति नहीं है पर इतना मैं कह सकता हूँ कि "सित्तन्नवासल्ल" के जैन मन्दिरों की अनुपम चित्रकारी, एलोरा की जैन गुफा इन्द्र-सभा की विस्मृत प्राय चित्र-सम्पदा और "जिन काँची" आदि अनेक स्थानों की जैन चित्रकला जब प्रकाश में लाई जाएगी तब भारतीय चित्रकला का इतिहास नये सिरे से लिखने की आवश्यकता पड़ेगी ।

मौर्य एवं शुंगकाल

भारत पर सिकन्दर महान् के आक्रमण (326 ईसा पूर्व) के उपरान्त उत्तर भारत में प्रसिद्ध मौर्य साम्राज्य स्थापित हुआ । इस साम्राज्य का सबसे प्रतापी सम्राट अशोक हुआ । अशोक यद्यपि बौद्ध धर्मानुयायी था परन्तु

जीवन के अन्तिम समय में उसके द्वारा जैन धर्म, अंगीकार कर लिए जाने के उल्लेख जैन-साहित्य में मिलते हैं। जैनधर्म, साहित्य और कला को अशोक का संरक्षण प्राप्त होने का भी उल्लेख आता है। अशोक के पौत्र सम्प्रति ने तो न केवल जैनधर्म धारण किया वरन् देश भर में तथा देश के बाहर अफगानिस्तान तक उसका प्रचार भी किया। बिहार में जो इतिहास प्रसिद्ध जैन राजा हुए, उनमें श्रेणिक (बिम्बिसार), अजातशत्रु, चेटक, जितशत्रु, नन्दवर्द्धन, चन्द्रगुप्त और सम्प्रति के नाम उल्लेखनीय हैं।

यद्यपि इस काल में बौद्धमठ, बिहार, स्तूप और स्तम्भ ही अधिकतर निर्मित किये गए तथा जैन और शैव निर्माण बहुत ही अल्प हुए, फिर भी इस काल के कुछ बहुत ही शानदार अवशेष खण्डगिरि उदयगिरि की गुफाओं में, बिहार में पटना के आसपास तथा मथुरा में प्राप्त हुए हैं। खण्डगिरि उदयगिरि की जैन गुफाओं का निर्माता सम्राट खारवेल अशोक की ही तरह महान् प्रतापी धार्मिक और यशस्वी सम्राट था। हाथीगुम्फा शिलालेख के अनुसार, खारवेल ने अपने शासनकाल के बारहवें वर्ष में मगध पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की और भगवान् जिनेन्द्र की वह प्रसिद्ध प्रतिमा पुनः प्राप्त की जिसे कभी राजा नन्द उठाकर लाया था और जो "कलिंग जिन", नाम से प्रसिद्ध थी। सम्राट खारवेल का यह शिलालेख, भारतीय शिलालेखों के समूह में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वास्तव में किसी शासक के शासनकाल का, देशकाल और समाज से सम्बद्ध, तिथि क्रमपूर्वक लिपिबद्ध किया गया यह हमारे देश का सर्वाधिक प्राचीन ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। इसके पूर्व के किसी भी शिलालेख में शासक की उपाधियों और नाम के साथ उसकी उपलब्धियों का ऐसा सिलसिलेवार लेखा-जोखा कहीं अंकित किया गया हो ऐसे प्रमाण हमारे समक्ष नहीं है। इस प्रकार ईसा से बहुत पहले जैन मूर्तियों का न केवल अस्तित्व सिद्ध होता है बल्कि उनकी लोक प्रसिद्धि भी सिद्ध होती है।

उदयपुर के संग्रहालय में संकलित, अजमेर के पास से उपलब्ध, शिलालेख के खण्ड पर ब्राह्मी में अंकित संवत् 71 को यदि वीर निर्वाण संवत् मानें तो जैन शिलालेखों की यह परम्परा पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व तक पहुँच जाती है।

जैन कलाकार इस काल में अपने आराध्य तीर्थंकरों की एक से एक मनोज और सुन्दर मूर्तियाँ बनाने लगे थे। यद्यपि वैदिक पीठ और तोरण पूजा के मांगलिकों का अंकन मथुरा के जैन स्तूपों में भी मिला है परन्तु तात्कालिक

तीर्थंकर प्रतिमाओं के निर्माण की यह श्रृंखला उत्तरोत्तर विकसित होती हुई, गुप्तकाल में हमें अद्भुत रूप में दिखाई देती है । देश के अनेक भागों में, दूर-दूर तक, मथुरा के स्थानीय लाल लुवा पत्थर से मथुरा में ही बनी हुई प्रतिमाएँ इतनी अधिक मात्रा में प्राप्त हुई हैं जिनसे लगता है कि या तो इन प्रतिमाओं का निर्माण किसी वृहद और सुनियोजित धार्मिक अनुष्ठान अभियान के अन्तर्गत हुआ होगा या फिर मथुरा में व्यापारिक दृष्टिकोण से ये मूर्तियाँ बनाकर देश-देशान्तर को भेजी जाती थीं । शुंगकाल में मथुरा में जिस अद्भुत शिल्प का निर्माण हुआ, उसमें जैन आयागपट्ट तथा कतिपय जैन तीर्थंकर मूर्तियाँ उस काल की समूची निर्मिति में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं । आयागपट्ट के मध्य में तीर्थंकर का अंकन करके चारों ओर नंद-यावर्त, धर्मचक्र, मीनयुगल, स्वस्तिक, कलश तथा अनेक प्रकार के लता वृक्षों का जो मनोहारी संयोजन मथुरा के कलाकार ने किया है अथवा उसकी कुशल और प्रवण छेनी से तीर्थंकर मूर्तियों पर देवत्व और वीतरागता के जो भाव अवतरित हुए हैं, उससे वहाँ के कलाकार के सौन्दर्य-बोध और भावांकन दोनों की क्षमता का प्रमाण मिलता है ।

लगभग उसी काल में निर्मित खण्डगिरि-उदयगिरि की गुफाओं में भी तात्कालिक विकसित और एक सर्वथा सुनियोजित जैन मूर्तिकला के दर्शन होते हैं । वहाँ "कलिंग जिन" की पुनः स्थापना का महोत्सव मनाते हुए सम्राट खारवेल और उनकी राजमहिषी का उल्लासपूर्ण अंकन तो दर्शनीय ही बन पड़ा है । उनके अतिरिक्त-पूजन की सामग्री लेकर जाते हुए राजपुरुषों तथा क्रीड़ारत बालकों आदि का अंकन भी हुआ है । तीर्थंकर प्रतिमाओं के परिवार में शासनदेवियों का आयुध, वाहन आदि के साथ बनाया जाना भी खण्डगिरि की अपनी विशेषता है । पुरातत्व में शासनदेवियों का प्राचीनतम अस्तित्व संभवतः यहीं प्राप्त होता है । इस स्थान की सामग्री को शोध कराकर उसे प्रकाश में लाने की बड़ी आवश्यकता है । लोहानीपुर (पटना) से प्राप्त कतिपय तीर्थंकर प्रतिमाएँ भी जो पटना संग्रहालय में संग्रहीत हैं, इस काल का अच्छा प्रतिनिधित्व करती हैं ।

गुप्तकाल

कला और संस्कृति के विकास में गुप्तकाल (चौथी, पाँचवीं और छठवीं शती ई०) को इस देश का स्वर्णकाल कहा जाता है । स्थापत्य, शिल्प

चित्रांकन और साहित्य रचना का जो कार्य इस काल में हुआ, वह उसके बाद उतनी विशिष्ट कलात्मक और मौलिक शैली में फिर कभी नहीं हो सका ।

इस काल में भी कला की किसी भी शाखा के विकास और निर्माण में जैनों का योगदान कम नहीं रहा । चित्रांकन तथा साहित्य-सृजन के अलावा शिल्प के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य हुआ है । इस काल में जैन धर्म की स्थिति, देश में प्रायः हर जगह अच्छी थी । जगह-जगह नागर शैली के ऊँचे-ऊँचे शिखरबन्द जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ । इन मन्दिरों के शिखर नीचे की ओर से उत्तरोत्तर संकीर्ण होते हुए ऊपर जाकर एक आमलकलश के रूप में परिवर्तित हो जाते थे । जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ की तपस्या भूमि और निर्वाण स्थली कैलाश थी, अतः ये शिखर उसी की अनुकृति के रूप में निर्मित किये जाते थे । नागवंशियों द्वारा अपनी राज्य-सीमा के प्रतीकरूप में नागर शैली के मन्दिरों के प्रवेश-द्वार पर गंगा और यमुना का अंकन प्रारम्भ किया गया था । राज्य चिह्न होने के कारण जैनों ने इस पद्धति को भी अपनाया ।

भुमरा और नचना के शिव तथा पार्वती मन्दिर पूर्व गुप्तकाल के अच्छे उदाहरण माने जाते हैं । इन्हीं मन्दिरों के पार्श्व में, उसीकाल में सीरा पहाड़ की जैन गुफाओं तथा उनमें स्थित मनोहर तीर्थंकर प्रतिमाओं का निर्माण हुआ तथा सिद्धनाथ की जटा-जूट युक्त सुन्दर जैन मूर्तियाँ अस्तित्व में आयीं । सीरा पहाड़ की मूर्तियों के इन्द्र और विद्याधर युगल अपनी सुन्दरता और सुघड़ता के कारण गुप्तकाल के उत्तम प्रतिनिधि हैं तथा वहाँ से प्राप्त भगवान् पारसनाथ की सप्तफणावलि युक्त उत्थित पद्मासन प्रतिमा - जो अब रामवन (सतना) के तुलसी संग्रहालय में स्थित है - उस काल की प्राणवान् कला का एक श्रेष्ठ उदाहरण है ।

उत्तर तथा मध्यभारत में गुप्तकाल के अवशेषों में विदिशा, देवगढ़, राजघाट, वाराणसी, मन्दसौर और पवाया आदि अनेकों स्थानों से प्राप्त सामग्री की गणना की जाती है । देवगढ़ में यद्यपि मध्ययुग का शिल्प ही अधिक है तथापि वहाँ की कतिपय मूर्तियाँ और एक दो मन्दिर निश्चित ही गुप्तकाल की रचना हैं । ये मूर्तियाँ सज्जा की विविधता तथा कला के अंकन में गुप्तकालीन कला के मान की रक्षा करती हैं । प्रो॰ कृष्णदत्त वाजपेयी द्वारा विदिशा से प्राप्त करके प्रकाशित की गई जैन तीर्थंकरों की वे तीन प्रतिमाएँ तो अपना पृथक ही ऐतिहासिक महत्व रखती हैं जिनके मूर्तिलेख के आधार पर महाराजाधिराज रामगुप्त की ऐतिहासिकता प्रमाणित करके गुप्त

साम्राज्य के इतिहास की एक दुर्लभ कड़ी प्रस्तुत की जा सकी है। राजघाट से प्राप्त धरणेन्द्र-पद्मावती सहित पारसनाथ प्रतिमा भी कला की दृष्टि से उत्कृष्ट मानी गयी है। यह मूर्ति भारत कला भवन, वाराणसी में संग्रहीत है।

दक्षिण का योगदान

विख्यात पुरातत्त्वज्ञ श्री टी॰एन॰रामचन्द्रन के मतानुसार "दक्षिण में जैनधर्म के प्रचार-प्रसार का इतिहास द्रविड़ों को आर्य सभ्यता का पाठ पढ़ाने का ही इतिहास है। इस अभियान का प्रारम्भ तीसरी शती ई॰पू॰ में आचार्य भद्रबाहु की दक्षिण यात्रा से हुआ। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य आचार्य की इस यात्रा में साथ रहा। उसी समय से जैनकला और साहित्य की गतिविधियों का विशेष विकास दक्षिण में परिलक्षित होता है।

आचार्य भद्रबाहु के उपरान्त कालकाचार्य और विशाखाचार्य द्वारा भी दक्षिण की यात्रा की गयी। पैठन के दरबार में कालकाचार्य की बड़ी मान्यता थी। पैठन प्रतिष्ठान के नाम से प्रसिद्ध था और यहीं चतुर्थकाल में तीर्थंकर मुनिसुव्रत-नाथ की प्रतिमा स्थापित किये जाने का उल्लेख पद्मपुराण में है। पैठन के सातवाहन राजाओं द्वारा निर्मित दूसरी शती ई॰पू॰ का स्थापत्य उपलब्ध है। छठवीं शती ई॰ में कवि रविकीर्ति द्वारा ऐहोल में विशाल जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ। चालुक्यों के राज्यकाल में इसी समय ऐहोल तथा बदामी में अन्य अनेक मन्दिरों, मूर्तियों तथा गुहामन्दिरों का निर्माण हुआ। ऐहोल में रवि-कीर्ति के शिलालेख में इस राज्याश्रय का उल्लेख है। यहाँ की विशाल अम्बिका मूर्ति भी कला की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

कर्नाटक में जैनकाल के लिए स्वर्णयुग का प्रारम्भ गंगवंश के राज्यकाल में हुआ। कहा जाता है कि इस राजवंश की स्थापना में जैनाचार्य सिंहनन्दि का बड़ा हाथ था और वंश के प्रथम राजा को उनका परामर्श भी प्राप्त था। इसी राजवंश का तीसरा राजा दुर्विनीत (605-50 ई॰) हुआ जो आचार्य पूज्यपाद स्वामी का बड़ा भक्त था। दुर्विनीत के पुत्र मस्कर ने तो जैनधर्म को राजधर्म ही घोषित कर दिया था।

इसी वंश में राजमल प्रथम (817-28 ई॰) हुआ जिसने अरकाट जिले में वल्ली मलई गाँव में एक विशाल जैन गुफा और कुछेक मन्दिरों का निर्माण कराया। इस राजवंश के दीर्घ शासनकाल में दक्षिण में अनेक जगह समय-समय पर जो मूर्तियाँ, मन्दिर और गुफाएँ निर्मित हुईं, वे दक्षिण भारत में जैनकला

के एक सुनियोजित और क्रमिक विकास की साक्षी हैं । यह राजवंश जैनधर्म के प्रति इतना आस्थावान तथा श्रद्धालु था कि इसके एक प्रतापी राजा मारसिंह तृतीय (961-74 ई॰) द्वारा अन्त में सल्लेखना मरण अंगीकार करने का उल्लेख मिलता है । इसी मारसिंह के स्वनामधन्य सेनापति श्री चामुण्डराय हुए जिनके द्वारा श्रवणबेलगोल की अद्भुत गोम्मटेश्वर प्रतिमा का निर्माण हुआ ।

यह वह काल था जब दक्षिण में पुरी और कोणार्क से लेकर मदुरई, काँचीपुरम, वेलुर, हलेबीड़ एलौरा और अजन्ता में भारतीय तक्षकों की दक्षतापूर्ण छैनी पूरी शक्ति और पूरे वेग के साथ सक्रिय हो रही थीं । अब तक कहीं तो उनके निर्माण प्रतिष्ठित हो चुके थे और कहीं उनकी योजना के आधार स्थापित किये जा रहे थे । आज दक्षिणापथ में उपलब्ध समस्त पुरी सम्पदा को यदि हम एक साथ देखें तो यह बात स्वत: सिद्ध हो जायेगी कि देश के इस कला भण्डार को समृद्ध करने में जैन वास्तु निर्माता बड़ी आस्था और पुष्कलता से अपना योगदान दे रहे थे । इस निर्मिति में गुफा मन्दिर थे, शिखर बन्द मन्दिर थे और एक से एक सुन्दर और विशाल बिम्ब थे ।

दशवीं शती ई॰ के अन्तिम चरण में विन्ध्यगिरि पर निर्मित भगवान् बाहुबली की विशाल एवं सौम्य प्रतिमा 57 फीट ऊँची है । इस मूर्ति में केवल आकार में ही ऊँचाई नहीं है वरन् शरीर-सौष्ठव, अनुपात, कला और भाव-प्रवणता की ऊँचाइयाँ भी जितनी इस मूर्ति ने पाई हैं, उतनी अन्यत्र देखने में नहीं आतीं । अपनी इसी महानता और विशिष्ठता के कारण यह प्रतिमा संसार के आश्चर्यों में गिनी जाती है । भारतीय मूर्तिकला में जैन कलाकारों का यह संभवत: सबसे निराला, बहुमूल्य और महत्वपूर्ण योगदान है ।

कतिपय विशाल-प्रतिमाएँ

बाहुबली की खड्गासन मूर्तियों की स्थापना दक्षिण भारत की अपनी विशेषता रही है । ऐहोल और बदामी की गुफाओं तथा मन्दिरों में छठवीं सातवीं शती में निर्मित बाहुबलि की अनेक सुन्दर मूर्तियाँ उपलब्ध हैं । आठवीं, नौवी और दशवी शती में एलौरा की महान् जैन गुफाओं का निर्माण हुआ जो वास्तुकला का एक अद्वितीय उदाहरण है । बाहुबली की स्थापना की यह परम्परा दक्षिण में दीर्घकाल तक वर्तमान रही है जिसके प्रमाण में हम कारकल की 42 फुट ऊँची तथा वेनूर की 35 फुट की उन प्रतिमाओं को ले सकते हैं जिनका निर्माण क्रमश: 1432 और 1604 वि॰ में हुआ ।

उत्तर भारत में बाहुबली की स्थापना प्राचीन काल में प्रायः नहीं हुई। खजुराहो, देवगढ़, बिलहरी, तेवर आदि में जहाँ उनका अंकन हुआ भी, वहाँ प्रायः छोटी-छोटी मूर्तियाँ बनाकर ही सन्तोष कर लिया गया, परन्तु प्रायः इन सभी स्थानों पर सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ की मूर्ति अथवा तीनों चक्रवर्ती तीर्थंकरों - शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की एक प्रतिमायें एक से एक विशाल और सुन्दर बनायी गयीं। इन मूर्तियों के सन्दर्भ में अहार, देवगढ़, खजुराहो, बानपुर, बजरंगगढ़, ऊन, ग्वालियर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें अहार क्षेत्र पर 1235 वि० में स्थापित 14 फुट ऊँची भगवान शान्तिनाथ की चमकदार पालिश से युक्त प्रतिमा सर्वाधिक सुन्दर और आकर्षक है। इसे "उत्तर भारत का गोमटेश्वर" कह सकते हैं। खजुराहो में भी शान्तिनाथ की एक विशाल-प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

विशाल प्रतिमाओं का यह वर्णन तब तक पूरा नहीं कहा जा सकता जब तक इसमें कुण्डलपुर (दमोह, म०प्र०) की विशाल पद्मासन प्रतिमा का उल्लेख न कर दिया जाये। भव्य आसन और सौम्यमुद्रा में विराजमान 14 फुट ऊँची जटाजूट युक्त यह मूर्ति भगवान् आदिनाथ की है। सिंहासन के यक्ष गोमुख और यक्षी चक्रेश्वरी भी इसी की साक्षी है पर तीन सौ वर्ष पूर्व इस मन्दिर के जीर्णोद्धार के समय, सिंहासन के सिंह युगल से प्रभावित होकर एक तत्कालीन शिलालेख में इसे महावीर की प्रतिमा मान लिया गया। तब से यह मूर्ति महावीर के रूप में ही पूजी जा रही है। वैसे तो देश में अनेक स्थानों पर इससे भी विशाल पद्मासन प्रतिमाएँ हैं परन्तु कला का जो सरल और अविस्मरणीय प्रभाव तथा वीतरागता की जो सूक्ष्म अनुभूति इस प्रतिमा से होती है, वह अन्यत्र दुर्लभ ही है। इसका निर्माण पूर्व मध्यकाल में हुआ।

<u>मध्ययुगकाल</u>

आज देश में जितने भी शिल्पावशेष उपलब्ध होते हैं, उनमें से अधिकांश का निर्माण मध्यकाल में ही हुआ। देश के इतिहास में यह समय एक सर्वव्यापी धार्मिक चेतना का काल था और इस काल में प्रायः समूचे देश में जो धार्मिक अनुष्ठान, मन्दिर निर्माण और प्रतिमा प्रतिष्ठायें हुई, उनके खण्डित साक्ष्य आज हमारे चारों ओर बिखरे पड़े हैं। केवल बौद्धधर्म को छोड़ कर इस काल में शैव वैष्णव, शाक्त और जैन मतावलम्बियों द्वारा अपने अपने आराध्य देवताओं की प्रचुरता पूर्वक स्थापना की गई। बड़े-बड़े मन्दिर ही नहीं बल्कि अगणित मन्दिरों के समूह और नगर भी निर्मित हुए। देवगढ़, खजुराहो,

निरूपकत्तिकुनरम, हलेबीड, आबू, कोणार्क, एलौरा, मूडबिद्री, चित्तौड आदि ऐसे ही स्थान हैं। इस काल में कला के विकास और प्रचार प्रसार के इस दौर में जैनों का योगदान कम नहीं है। एलोरा की इन्द्रसभा नामक जैन गुफा की दो मंजिला बनावट, उसमें पारसनाथ, बाहुबलि, इन्द्र और अम्बिका की सविशेष प्रतिमाएँ तथा उसकी योजनाबद्ध सज्जा सहज विस्मरणीय नहीं है।

कलात्मक निर्माण की यह होड़ हम प्रायः देश के हर एक कला क्षेत्र में देखते हैं। हुमचा के पार्श्वनाथ पर उपसर्ग वाले शिलाफलक अद्वितीय हैं। श्रवण बेलगोल में जिननाथपुर जिनालय की बाह्याभित्ति पर अंकित शिल्प सौन्दर्य बेलूर और हलेबीड़ की किसी भी मूर्ति के समकक्ष रखा जा सकता है। कांचीपुरम में जिनकांची के मन्दिर के भित्तिचित्र अपने आप में एक निधि है। वारंगा के मठ का शिल्प वैभव प्रायः अनजाना पड़ा है। इधर कुम्भारिया और चन्द्रावती में हमें देलवाड़ा के निर्माण के पूर्व की जो योजना दिखाई देती है उसका तारतम्य राणकपुर तक एकरस सामने आता है।

चित्तौड़ में शृंगारचौरी और मीरा मन्दिर के समकक्ष सातबीस देहरा और महावीर मन्दिर का निर्माण, कला के उत्थान की स्वाभाविक प्रक्रिया के अंग से लगते हैं। विजय स्तम्भ के निर्माण के लगभग दो सौ वर्ष पूर्व बना हुआ आदिनाथ कीर्तिस्तम्भ अपनी विलक्षणता के लिए अविस्मरणीय बना रहेगा।

देवगढ़ में तो मध्यकाल की जैनकला की सम्पत्ति का जो कोष भरा पड़ा है, उसकी खोज खबर लेने में भी अभी एक युग लगेगा। वहाँ धरणेन्द्र पद्मावती के सैकड़ों युगल मूर्तिखण्ड तथा अम्बिका के विविध रूपों की अनेक मूर्तियाँ और प्रायः सभी शासनदेवियों की एक से एक बढ़कर सुन्दर स्वतंत्र मूर्तियाँ जैनकला की उत्कृष्टता, सौन्दर्य-बोध और सूक्ष्मतर कल्पना-शक्ति का परिचय देती आज भी यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं।

खजुराहो में जैन कलाकार के महत्वपूर्ण योगदान का मूल्यांकन करना अधिक आसान है, क्योंकि वहाँ एक ही केन्द्र में शैव, वैष्णव और शाक्त मन्दिरों के समूह भी पाये गये हैं। इनमें विशालता की दृष्टि से कन्दरिया महादेव का मन्दिर सबसे बड़ा है परन्तु जैन समूह का पार्श्वनाथ मन्दिर खजुराहो के मन्दिरों में अपनी विशेषता रखता है। बाह्य भित्तियों पर निर्मित अप्सरा और यक्षिणी मूर्तियों में इस मन्दिर ने खजुराहो में अद्वितीय ख्याति पायी है। इन मूर्तियों का आकार समूचे खजुराहो के किसी भी मन्दिर की मूर्तियों के आकार से बड़ा है। हास्य, लास्य, नृत्य, शृंगार, युद्ध, राग-रंग,

क्रीड़ा तथा शोक, अकाल, क्षुधा आदि के साथ भजन, पूजन, अर्चना, स्तुति, शास्त्रार्थ, प्रवचन आदि के नाना अभिप्रायों के माध्यम से खजुराहो के मूर्ति कलाकार ने कलाकार की भावना को इस मन्दिर की भित्तियों पर बड़ी सफलतापूर्वक व्यंजित किया है । शास्त्रीय दृष्टि से देखें तो दिक्पाल, द्वारपाल, गंगा-यमुना, अष्ट मातृकायें, नवग्रह, सोलह विद्यादेवियां, चौबीस शासन - देवियां और अनगिनत यक्ष-यक्षियां खजुराहो के इन पारसनाथ और आदिनाथ मन्दिरों में अंकित हैं । पारसनाथ मन्दिर की तीन चार अप्सरा प्रतिमायें तो अनेक देशी-विदेशी विद्वानों की सम्मति में समूचे खजुराहो की अद्वितीय अनुपम और अनमोल निधि है । शान्तिनाथ मन्दिर में मूलनायक की 14 फुट ऊँची प्रतिमा के अतिरिक्त धरणेन्द्र पद्मावती की अति सुन्दर युगल मूर्ति तथा सत्ता इन मकानों का शिलांकन उल्लेखनीय है । घंटाई मन्दिर भी बारीक कला-कारी के लिए प्रसिद्ध है ।

आबू के संगमरमर निर्मित जैन मन्दिर तो अपनी विलक्षणताओं के कारण बहुश्रुत है । संगमरमर की सूक्ष्म से सूक्ष्म कटाई और रंग-बिरंगी पच्चीकारी तथा बड़े-बड़े खम्भों के आधार पर विशाल सभाकक्ष आबू की विशेषता है । छतों, और तोरणों की संयोजना में तो वहाँ के कलाकार की छैनी और अधिक संतुलित और अधिक चमत्कार पूर्ण हो उठी है । बारहवीं शती में आबू में डिजाइनों, जालियों और पच्चीकारी के जो नमूने इन जैनकला आराधकों ने प्रस्तुत किये थे, उनकी समानता कर पाने में ताजमहल का कलाकार भी सक्षम नहीं हो सका ।

पाषाण प्रतिमाओं के अतिरिक्त धातु प्रतिमाओं के क्षेत्र में भी जैन-भण्डारों की समृद्धि किसी प्रकार कम नहीं है । पारसनाथ का किला, चौसा, अकोटा आदि के कला भण्डारों ने जो महत्वपूर्ण प्रतिमायें प्रदान की हैं वे इस दिशा में जैन कलाकारों के रुझान का सबल प्रतीक है । इनके अतिरिक्त दक्षिण भारत के मूडबिद्री और कारकल के अनेक मन्दिरों में तथा मद्रास के धातुमूर्ति संग्रहालय में जैन प्रतिमाओं का अच्छा और महत्त्वपूर्ण संकलन है ।

देश की पराधीनता के दिनों में जो सामग्री विदेशों में पहुँच गई है उसमें भी जैनकला का अच्छा प्रतिनिधित्व है । लन्दन के विक्टोरिया एण्ड अल्बर्ट म्यूजियम में तथा ब्रिटिश म्यूजियम में धातु और पाषाण की अनेक सुन्दर जैन प्रतिमायें संकलित हैं । देश के तो प्रायः सभी संग्रहालयों में इनकी विपुल संख्या पाई जाती है ।

परवर्तीकाल में जब भारतीय मूर्तिकला की आराधना दक्षिण में विशेष रूप से हुई तब वहाँ भी जैन कलाकार पीछे नहीं रहा, पर जब कला का ह्रास देश में हुआ तो जैनकला का भी ह्रास होता गया। फिर भी आज जो प्रमाण उपलब्ध हैं उनके सहारे यह कहा जा सकता है कि भारतीय कला के विकास में ही नहीं, प्रसार में भी जैनों का योगदान प्रचुर एवं महत्वपूर्ण रहा है।

Studies in South Indian Jainism
Achievements and Prospects

- Dr. B.K.Khadabadi, Dharwar

With an humble beginning by the publication of a few reports about the Jaina Community in the Asiatic Researches (Calcutta and London), Vol.IX, during the first quarter of the 19th Century, and showing a notable progress with the rise of a host of scholars, both western and India, by the first quarter of the 20th century,[1] Jaina Vidyā or Jainology nowadays has become a vast distinct field of study comprising many aspects of Jainism - historical, philosiphical, doctrinal, literary, inscriptional, scientific etc; and the 2500th Anniversary of Lord Mahāvīra's Nirvāṇa can be said to have given a new philip to the study of all these branches of the field all over India and abroad too. Now the organizers of this unique Seminar, I should say, have decided upon the most relevant topic for deliberation viz., the Various Branches of Jainology : Achievements and Prospects; and I have chosen to reflect on the Studies in South Indian Jainism Achievemnents and prospects.

It is quite possible that the first team of Jaina teachers entered South India viz., the Telugu country through Kalinga as early as 600 B.C., and were pioneers in bringing the teachings of Lord Mahāvira to the South. But it is the second team, certainly a larger one, headed by Bhadrabahu and accompannied by his royal disciple Candragupta, which entered Karnataka in 400 B.C. and established its first colony at Kalbappu, that radiated those teachings more effectively and extensively to the Southern and nearby regions in South India. The study of this early phase of South India Jainism, which can be said to have its beginning with B.L.Rice in 1909,[2] progressed at the hands of scholars like Ramaswami Aiyangar and

B. Sheshagiri Rao,[3] R. Narasimhachar,[4] Vincent Smith[5] etc. and the historicity of this South Indian tradition of the great Jain migration was almost established.

The next phase of studies in South Indian Jainism is found represented by the works of B.A. Saletore,[6] S.R.Sharma,[7] P.B. Desai,[8] S.B. Deo,[9] Kailas Chandra Shastri[10] etc., wherein the religious history of South Indian Jainism with the corresponding political background, and based on tradition, inscriptions, monuments and literary evidence, has been very well depicted. Considerable light on the Yāpaniyas, the Kūrcakas, the Gommaṭa cult, the Yakṣiṇī cult, the innovations and adaptations etc., has been thrown in these works.

At this stage we can hardly forget the timely and relevant miscellaneous contributions, in different degrees, to this field by scholars like N.R. Premi, Hiralal Jain, A.N.Upadhye, Bhujabali Shastri, Jyoti Prasad Jain, B.R. Gopal, Sarayu Doshi, B.K.Khadabadi etc.[11]

Further, V.P. Johrapurkar's findings on the South Indian Bhattaraka tradition as a part of his whole work[12] and V.A. Sangave's findings on the South Indian Jaina Community as a part of his novel work,[13] have added new dimensions to the studies in South Indian Jainism.

Moreover we have to remember with gratitude scholars like Robert Swell,[14] T.N. Ramachandran,[15] A. Chakravarti,[16] S. Vaiyapuri Pillai,[17] K.V. Ramesh[18] etc. for their varied contributions to the different aspects of the hold of ancient and medieval Jainism, particularly in the Tamil country, as based on the Jaina inscriptions, monuments, vestiges, literature etc. Similarly we have to be proud of scholars like B. Sheshagiri Rao, M.Somashekhara Sharma, S. Gopalkrishna Murthy etc. for enlightening us on the position of medieval Jainism particularly in the Telugu country as based on some Jaina living monuments, inscriptions,

sculptures and vestiges.[19]

The latest works connected with South Indian Jainism, as far as I know, are two. One is by P.Gururaj Bhatt, Studies in Tuluva History and Culture,[20] which contains a separate Chapter (No.XXV) on Jainism in Tuluva Country, wherein is given a brief interesting account of the late medieval Jainism along with its political, social and cultural (including art and architectural) background. The other one is by R.P.P.Singh, Jainism in Early Medieval Karnatak,[21] wherein the author has given a religious history of Jainism in Karnataka from 500 to 1200 A.D. Admitting his claim on some novel features in the treatment of the subject, I find that he has also confused himself by mixing the significant Bhattāraka tradition with the Digambara monarchism in the Karnataka of that period.

After taking, thus, a bird's eye-view of the salient achievements in the field of the studies in South Indian Jainism, I propose, now, to present to this galaxy of scholars a few outstanding prospects or tasks that strike my mind, at this hour, so that the interested and capable scholars may note them and exert themselves to accomplish them too in the days to come. I would enlist them, with some observations, as follows:

(1) <u>The Yāpanīya Saṁgha : its origin, growth and merger</u>: It is well known that numerous references to the Yāpanīya Saṁgha are found in inscriptions and literary works. It was N.R.Premi who particularly drew the attention of scholars on some features of this compromising Sect.[22] Then some historians, religious and political, furnished some further details about it.[23] A.N. Upadhye instituted a systematised study of this interesting Sect by contributing three valuable papers.[24] Recently B.K. Khadabadi presented some thoughts on Vijahana, a characteristic feature of the Yāpanīyas.[25] But a thorough study of this impor-

tant Sect, which is said to be a product of South Indian Jainism, particularly Karnatak Jainism, is a desideratum. Some 25 years ago, V.S. Agarwal expressed that a detailed study of the Yāpanīyas could be presented in the form of an important research dissertation.[26] Last year Munisrī Hastimallajī, who was staying at Raichur, had sent one of his follower-scholars to Dharwad to plan a line of study in this regard. This shows the need as well as importance of this prospect.

(2) Reconstruction of the history of Jainism in Andhra Pradesh: We know that the Telugu country was rather the first in South India to receive the gospal of Lord Mahāvīra through the first team of Jaina teachers moving through Kalinga. Later Jaina teachings must have penetrated into this region from the Kalbappu centre too. Thus Jainism must have flourished in this region to a considerable degree. But unfortunately owing to the Buddhist rivalry in the early days and the Hindu revival in the later days, almost all the Jaina literary works, most of the Jaina inscriptions and monuments appear to have been destroyed. As a result of this and on some other ground, scholars have just surmised the 9th and 10th centuries A.D. as the possible Jaina period of prosperity in this region. But after going through the monograph entitled 'Jaina Vestiges in Andhra' by S. Gopalkrishna Murthy,[27] I feel that a few more intensive and extensive efforts, after the manner of the one by this learned Professor, on the part of some enthusiastic archaeologists, epigraphists, and art specialists, would make some more material available for the primary reconstruction of the history of Jainism in Andhra Pradesh. I felt overwhelmed when I read about the existence of a Jaina University at Raydurga University in stone, with inscriptions mentioning the names of Jaina teachers belonging to the Mūlasamgha and the Yāpanīya Samgha, which was contemporaneous with the Rāstrakūtas and the

Western Cālukyas.[28]

(3) <u>Reconstruction of the history of Jainism in the Western Coast of South India</u> : Scholars like Saletore, Desai etc.[29] noted that several petty kings and chieftains patronised Jainism in the Tuluva country, and Mudabidri happened to be its last strong hold in the upper Western Coast of South India in the late medieval period. Then P. Gururaj Bhatt gave a better picture of this fact in this region.[30] On the strength of some inscriptions and antiquities found in the Kerala region, some scholars have postulated that the 8th to 11th Cent.A.D. constituted a glorious period of Jainism in the Kerala region.[31] But we do not have so far a good picture of Jainism that flourished in this region. It is learnt that the Bhāratīya Jnānpītha had entrusted P. Gururaj Bhatt to conduct this kind of study. But unfortunately he expired suddenly and I have no idea of what were the fruits of his study and who has resumed his work.

(4) <u>Jaina teachers and social Uplift in South India</u>: Much of the work done in South Indian Jainism is regarding its religious and political aspects in the main. Now we can take up its social aspect and treat it thoroughly. The Jaina teachers' sermons, and the stories, illustrations etc. in them, were the most effective media of social education in the early and medieval periods.[32] The Jaina teachers always struggled to eradicate the seven vices (sapta-vyasana)[33] from the masses and cultivate among them social virtues like compassion, truth, honesty, charity etc. Moreover the remarkable adaptibility of Jainism to the contemporary social trends and local environments (keeping its basic tenets intact) can also be highlighted here. Keeping these and such other things in view, a social historian can take up this work for the full growth of the knowledge of South Indian Jainism.

(5) Contribution of Jainism to the cultural heritage of South India : This is one of the most important desideratior which can also partly include the one noted just above. The tol rent attitude, accomodative nature, vegetarianism etc; availabl among the people of this part of the country, can be reasoned t owe much to the cultural impact of Jainism that gloriously flou shed here. Tradition, political history, literature and above a the inscriptional wealth of this area, can be of great use in this task. S. Vaiyapuri Pillai observed:"So far as Tamil Nadu is concerned, we may say that the Jainas were the real apostles of culture and learning."[34] Moreover, Saletore long back understood the need of this work in the following words:"The contribution of Jainism to the culture of Karnatak, Tamil Nadu and Andhra Pradesh can be given in a separate dissertation."[35]

(6) Lastly I have to pose a small problem but not of less importance. It is, Ṣaṭkhaṇḍāgama and Dṛṣṭivāda :Seemingly this problem is of a literary nature, but it has full bearing on South Indian Jainism - its tradition and its history. So far we were , on the strength of the authority of eminent scholars like Hiralal Jain and A.N.Upadhye, under the impression that the Ṣaṭkhaṇḍāgama Volumes are the only surviving pieces of the lost Dṛṣṭivāda, the 12th Aṅga of the Jaina Canon.[36] But Ludwig Alsdorf, a few years ago, has opined that this is not so.[37] This sets aside not only our above noted impression, but also the important Dharasenācārya-Puṣpadanta-Bhūtabali tradition underlying the composition of the Ṣaṭkhaṇḍāgama Volumes, a singular manuscript (in Kannada script) of which has been preserved at Mudabidri. Now unfortunately we do not have amongst us Hiralal Jain or A.N.Upadhye to reconsider their view in the light of Alsdorf's opinion. Hence I, with due respect to Alsdorf (whom I know by meeting him at Ujjain)[38] and to his valuable contribution

to the Jaina Studies, appeal to scholars like Kailasa Chandra Shastri to scrutinise this eminent German scholar's opinion in the light of the internal as well as external evidence of the Satkhandagama Volumes, form their views and publish them.

SELECT REFERENCES AND NOTES

1. For further details vide 'A Short History of Jaina Research' in The Doctrine of the Jains, by Walther Schubring, Delhi. 1962, pp. 1-17.
2. Mysore and Coorg from the Inscriptions, London, 1909-
3. Studies in South Indian Jainism, Madras, 1922.
4. Epigraphia Carnatica, Vol. II, Bangalore, 1923.
5. The Oxford History of India, Oxford, 1923.
6. Medieval Jainism, Bombay, 1938.
7. Jainism and Karnatak Culture, Dharwad, 1940.
8. Jainism in South India and some Jaina Epigraphs, Sholapur, 1957.
9. In the History of Jaina Monachism from Inscriptions and Literature, Poona, 1960.
10. Daksina Bharatamem Jaina Dharma, Varanasi, 1967.
11. (i) These contributions are scattered in the form of various chapters of books and stray papers by these scholars, which are too many to be enumerated here.

    (ii) This list of scholars is not claimed as exhaustive.
12. Bhattaraka Sampradaya, Sholapur, 1958.
13. Jaina Community, Bombay, 1959.
14. Historical Inscriptions of South India, Madras, 1932
15. As noted by S. Gopalkrishna Murthy in his preface to the Jaina Vestiges in Andhra, Hyderabad, 1963.
16. Jaina Literature in Tamil, Arrah, 1941.

-8-

17. History of Tamil Language and Literature, Madras, 1956.
18. The same as noted in No. 16, but re-edited by him with some additions and an introduction, Delhi, 1974.
19. For the contribution of the first two scholars, vide Preface to Jaina Vestiges in Andhra and for that of the third, this excellent monograph itself as a whole.
20. Kallianpur, 1975.
21. Delhi. 1975.
22. Vide Jain Sāhitya aur Itihāsa, Bombay, 1956, pp-55-73, pp. 559-563 etc.
23. Scholars like B.A. Saletore, S.R. Sharma, P.B. Desai etc.
24. These three papers are:
    (i) Yāpanīya Saṁgha : A Jain Sect, Journal of the Bombay University (Arts and Law), Vol.I, Part 6, 1933.
    (ii) On the meaning of Yāpanīya, Śrīkaṇṭhikā, Mysore, 1973.
    (iii) More light on the Yāpanīya Saṁgha, Annals of the Bhandarkar O.R.I., Vol.LX, 1975.
25. Some observations on Vijahaṇā, Journal of the Karnatak University (Humanities) Vol.XXIV, 1982.
26. Jain Sāhitya aur Itihāsa, Bombay, 1956, Paricaya, p.16.
27. Already noted above.
28. Vide Op.cit., pp. 87-88.
29. In their respective works noted above.
30. Op.cit., pp.425 ff.
31. Vide P.B. Desai, Jainism in Kerala, Journal of Indian History, Vol.XXXV-2, 1957.
32. This is true even to this day.
33. Jaina teachers have told, and have been telling,

-9-

34. Op.cit., p.60.

35. op.cit., p. 262.

36. Vide Intro. to the Ṣaṭkhaṇḍāgama, Vol.I.

37. Vide 'What were the contents of Dṛṣṭivada'?, German Scholars on India, Vol.I., Varanasi, 1973.

38. At the 26th Session of the All India Oriental Conference, 1971.

...

मध्यप्रदेश में जैन पुरातत्व

(उपलब्धियाँ और संभावनाएँ)

– बालचन्द्र जैन, जबलपुर.

भारतीय संघ के बाईस राज्यों में मध्यप्रदेश सबसे बड़ा राज्य है । यहाँ निवास करने वालों की संख्या पाँच करोड़ से ऊपर है ।

देश के मध्यभाग में स्थित होने के कारण मध्यप्रदेश की सीमाएँ सात पड़ोसी राज्यों यथा, उत्तरप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान से मिलती हैं ।

मध्यप्रदेश की मुख्य विशेषता है कि यह प्रदेश प्राचीन काल में उत्तर और दक्षिण भारत की संस्कृतियों का संगम स्थल सो रहा है, वर्तमान काल में भी बुन्देलखण्डी, बघेलखण्डी, छत्तीसगढ़ी (बस्तर समेत) और मालवी रीति-रिवाजों के समवाय का केन्द्र बना हुआ है । ये क्षेत्र अतीतकाल में जैनधर्म और जैन विद्या के प्रचार एवं प्रसार के क्षेत्र रहे हैं ।

मध्यप्रदेश में जनजातियों अथवा आदिवासियों का भी बाहुल्य है । पिछड़ी कही जाने वाली आदिवासी जातियाँ अतीत काल में अपेक्षाकृत समृद्ध और समुन्नत रही हैं । राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से भी वे उस समय विकास के उच्च सोपानों पर प्रतिष्ठित थीं । अतएव आदिवासी-बहुल क्षेत्रों में भी पुरातन इतिहास और सभ्यता के उच्च कोटि के प्रमाण उपलब्ध होते हैं । इन क्षेत्रों में जैन सांस्कृतिक इतिहास के साक्ष्य भी मिले हैं । लगातार खोज किये जाने पर और महत्वपूर्ण प्रमाण उपलब्ध हो सकते हैं ।

पुरातत्व सामग्री की बहुलता के लिये मध्यप्रदेश और राजस्थान का नाम सर्वत्र लिया जाता है । इस सामग्री में विविधता है । स्थापत्य, शिल्प, अभिलेख, सिक्के, पाण्डुलिपियाँ, सभी प्रकार की सामग्री यहाँ विद्यमान है । कुछ ज्ञात हो चुकी है । बहुत सी खोजी जाना है । श्रम और लगन के साथ प्रयत्न किये जावें, तो संभावना है कि पौराणिक एवं साहित्यिक इतिहास में वर्णित हमारे धार्मिक राजनीतिक और सामाजिक इतिहास की पुष्टि पुरातत्वीय प्रमाणों से भी हो जावे ।

अद्यतन उपलब्धियाँ

जैन इतिहास - पुरातत्व के क्षेत्र में मध्यप्रदेश की सर्वमान्य और प्रतिष्ठित उपलब्धियों को संक्षेप में निम्नलिखित प्रकार से गिनाया जा सकता है :-

दुर्जनपुर (विदिशा) से महाराजाधिराज रामगुप्त के तीन अभिलेख जो आठवें

तीर्थंकर चन्द्रप्रभ और नौवें तीर्थंकर पुष्पदन्त की प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण है । इन प्रतिमाओं का निर्माण उक्त नरेश द्वारा कराया गया था । प्रतिष्ठा पाणिपात्रिक चन्द्रक्षमाचार्य श्रमण श्रमण के प्रशिष्य और आचार्य उग्रसेन श्रमण के शिष्य चेलु क्षमण के उपदेश से करायी गयी थी ।

2. उदयगिरि (विदिशा के निकट) की पहाड़ी की गुफा में गुप्त संवत् 106 का उत्कीर्ण लेख । इस अभिलेख में जिनवर पार्श्व की सर्पफणयुक्त प्रतिमा के निर्माण कराये जाने का उल्लेख है । इस अभिलेख में आचार्य भद्र के अन्वय के आचार्य गोश[?]र्म मुनि का उल्लेख है । मूर्ति का निर्माता शंकर उत्तर भारत का निवासी था । मूर्ति प्रतिष्ठा का उद्देश्य कर्मशत्रुओं का क्षय बताया गया है । उदयगिरि के निकटवर्ती बेसनगर से भी गुप्तकालीन तीर्थंकर प्रतिमा प्राप्त हुई है, जो ग्वालियर के संग्रहालय में प्रदर्शित है । विदिशा जिले के बरो ग्राम में भी प्राचीन प्रतिमा मिली है ।

3. सीरा पहाड़ी की गुप्तकालीन प्रतिमाएँ । इनमें से एक रामवन संग्रहालय में (पार्श्वनाथ) की, और एक पन्ना के राजेन्द्र उद्यान में सुरक्षित है ।

4. गुना जिले तुमैन (प्राचीन तुम्बवन) में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमा प्राप्त हुई है । यह छठी शताब्दी ईस्वी की है ।

ग्वालियर जिले की कुछ प्रतिमाएँ भी लगभग इतनी ही प्राचीन अनुमानित की गयी हैं । छत्तीसगढ़ में आरंग और सिरपुर में भी इतनी ही प्राचीन जैन प्रतिमाएँ पायी गयी हैं ।

5. मध्यकाल में निर्मित खजुराहो के जैन मंदिरों ने भारी प्रसिद्धि पायी है । किन्तु ऊन, आरंग (रायपुर) और पतियानदाई (सतना) के मंदिर भी अखिल भारतीय कीर्ति प्राप्त कर चुके हैं ।

6. ग्वालियर जिले में चतुर्दिक् निर्मित जैन गुफा-मंदिरों और उत्तुंग प्रतिमाओं ने तोमर नरेशों के समकालीन धार्मिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड़ा है ।

मैंने केवल उन्हीं कुछेक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का उल्लेख किया है जिन्होंने अखिल भारतीय स्तर पर इतिहास-पुरातत्त्व के विद्वानों को चिन्तन की दिशा प्रदान की है । लेकिन जैनत्व के दृष्टिकोण से मध्यप्रदेश में बहुत कुछ है । इस प्रदेश के गाँव-गाँव में खण्डित-अखण्डित जैन प्रतिमाएँ उपेक्षित देखी जाती हैं । जबलपुर जिले के उमरियापान ग्राम के निकटवर्ती टीला की एक बावड़ी में सुन्दर से सुन्दर प्रतिमाएँ जड़ी हुई हैं । इसी जिले में अन्य स्थानों पर भी सैकड़ों की तादाद में मूर्तियाँ असुरक्षित, उपेक्षित और अनदेखी पड़ी हुई हैं । अन्य जिलों

में भी ऐसी ही स्थिति है । इनके संग्रह, संरक्षण, छायाचित्रण और डाकूमेंटेशन के लिये कुछ किया जाना चाहिए ।

परिकल्पनाएँ एवं आवश्यकताएँ

इतिहास की प्रामाणिकता पुरातत्वीय अवशेषों से सिद्ध की जाया करती है । पुरातत्वीय प्रमाणों के अभाव में इतिहास ग्रन्थ का मूल्य पुराण या काव्य ग्रन्थ के तुल्य होता है । मैं इस कथन द्वारा पुराणों और साहित्यग्रन्थों के महत्व अथवा मूल्यांकन को अवनत नहीं कर रहा हूँ बल्कि इस बात पर जोर दे रहा हूँ कि हमारे पौराणिक एवं अन्य विषयक साहित्य के कथन की पुष्टि यदि पुरातत्व के प्रत्यक्ष प्रमाण से हो जाती है तो इससे हमारे परम्परागत अनुमानों को बल मिल जाना स्वाभाविक है । इसे क्रियान्वित करने हेतु हमें करना तो बहुत है किन्तु फिलहाल निम्नलिखित योजनाएँ हाथ में ली जा सकती हैं ।

1. मध्यप्रदेश के गाँव-गाँव का सर्वेक्षण किया जावे -'विलेज टू विलेज सर्वे'। इसके लिये एक जीपगाड़ी और एक पूर्णकालिक फोटोग्राफर नितान्त आवश्यक होंगे । कार्य से जुड़ी अन्य सुविधाएँ भी जुटाना होंगी । यह कार्य न केवल श्रमसाध्य होगा अपितु इसमें समय भी लगेगा। अतएव प्रदेश के एक-एक क्षेत्र को लेकर कार्य प्रारंभ किया जावे ।

2. ग्वालियर जिले के जैन पुरातत्व पर एक आकर्षक ग्रन्थ तैयार कराया जावे और प्रकाशित कराया जावे । इसी प्रकार खजुराहो के जैन मंदिरों पर एक स्वतंत्र और स्वयंसम्पूर्ण सचित्र ग्रन्थ प्रकाशित होना चाहिये ।

3. अहार के समस्त मूर्तिलेखों का वाला संग्रह ग्रन्थ ' कार्पस इंस्क्रिप्शन इंडिकेरं' जैसा तैयार किया जाना चाहिये और प्रकाशित होना चाहिए । इन मूर्तिलेखों का एक संग्रह बहुत छोटे आकार में पूर्व में प्रकाशित हुआ है किन्तु विश्व के विद्वानों तक उसे पहुँचाने की व्यवस्था नहीं की गयी थी ।

4. देवगढ़ में विभिन्न काल के 300 के लगभग अभिलेख हैं । ये जैन इतिहास के लिये भारी महत्व के हैं । इनका सम्पादन-प्रकाशन आवश्यक है ।

5. छत्तीसगढ़ में मल्लार (बिलासपुर जिला) में उत्तुंग जैन प्रतिमाएँ हैं, रतनपुर में जैन प्रतिमाओं की अच्छी संख्या है, आरंग में सम्पूर्ण मंदिर ही खड़ा हुआ है । इसलिये छत्तीसगढ़ का जैन पुरातत्व शीर्षक से एक अच्छे और आकर्षक ग्रन्थ की आवश्यकता है ।

6. मध्यप्रदेश के शासकीय और अशासकीय, सभी प्रकार के संग्रहालयों में सुरक्षित सभी जैन प्रतिमाओं का एक कैटलाग तैयार किया जा सकता है। यह कार्य आसानी से संभव हो सकेगा ।

क्षेप - मध्यप्रदेश के सभी जैन अभिलेखों, सभी जैन मंदिरों (प्राचीन) और सभी जैन प्रतिमाओं का डाकुमैंटेशन समय की मांग है । प्राचीनता का सर्व-सम्मत संकेत एक सौ वर्ष पुरानी वस्तु से है ।

इतिहास की खोज : उपलब्धि और सम्भावना

- डा. विद्याधर जोहरापुरकर

जैन इतिहास की खोज के दो क्षेत्रों में कुछ काम करने का अवसर मुझे मिला। इन्हीं में अब तक की उपलब्धि और भविष्य की सम्भावना का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत रहा हूं।

भट्टारक परम्परा के विषय में लगभग सौ वर्ष पूर्व इंडियन एंटिक्वेरी में संघ पट्टावली प्रकाशित हुई। जैन सिद्धान्त भास्कर के प्रथम वर्ष में चार और पट्टावलियाँ छपीं। इनमें वर्णित भट्टारकों में से कई के विषय में ग्रन्थ प्रशस्ति और मूर्तिलेखों द्वारा पं. नाथूराम प्रेमी, पं. जुगलकिशोर मुख्तार, पं. परमानन्द आदि विद्वानों ने प्रकाश डाला। मेरी पुस्तक भट्टारक संप्रदाय 1958 में छपी। इसमें इन पूर्ववर्ती लेखकों द्वारा प्रकाशित लगभग 350 लेखों का समाकलन है। साथ ही मेरे गृहनगर नागपुर के समीपवर्ती क्षेत्रों में प्राप्त लगभग 400 अप्रकाशित लेख (मूर्तिलेख और हस्तलिखितों के उद्धरण) भी इसमें हैं। इनसे भट्टारकों की सोलह शाखाओं का काफी विवरण क्रमबद्ध किया जा सका। इस क्षेत्र में राजस्थान से सम्बन्धित काफी सामग्री डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल ने पहले राजस्थान के जैन सन्त पुस्तक में और बाद में वीरशासन के प्रभावक आचार्य पुस्तक में प्रस्तुत की है। उन के निर्देशन में संचालित श्रीमहावीर जी शोध विभाग में अभी काफी सामग्री प्रकाशन की राह देख रही है। दक्षिण के भट्टारकों के विषय में अभी अध्ययन का आरम्भ भी नहीं हुआ है, उस क्षेत्र में मूर्ति लेख और हस्तलिखितों के अध्ययन के लिए स्थानीय युवकों को प्रोत्साहित करना होगा। इसी प्रकार महाराष्ट्र और गुजरात के सैकड़ों मन्दिरों की सामग्री अभी अछूती पड़ी है। भट्टारकों के इतिहास की सामग्री से मुझे तीन संबद्ध विषय अर्थात् तीर्थक्षेत्रों का इतिहास, श्रावक जातियों का इतिहास और मराठी के पुराने जैन साहित्य का इतिहास समझने में काफी मदद मिली है। भट्टारकों सम्बन्ध में अरुचि हो तो भी इन सम्बद्ध विषयों के लिए उनका अध्ययन अपरिहार्य है।

शिलालेखों के विषय में -

जैन शिलालेखों का पहला बड़ा संग्रह बी. लेविस राइस द्वारा संपादित श्रवणबेलगोल के लेख लगभग सौ वर्ष पूर्व छपा। एपिग्राफिया इंडिका आदि अनेक पत्रिकाओं में सन् 1908 तक छपे 850 जैन शिलालेखों की सूची फ्रेंच विद्वान गेरिनो द्वारा संपादित हुई, ये सब लेख माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला में जैन शिलालेख संग्रह भाग 1, 2, 3 में प्राप्त हैं। सन् 1908 के बाद सरकारी प्रकाशनों में प्राप्त लगभग एक हजार लेखों का समावेश

इसी सीरीज के भाग 4 और 5 में मेरे द्वारा किया गया। दक्षिणभारत के कुछ मह... लेख डा. देसाई के जैनिज्म इन साउथ इंडिया में संपादित हैं। इस क्षेत्र में स्व. पू... नाहर और अगरचन्द जी नाहटा ने श्वेताम्बर मन्दिरों का अध्ययन कर लगभग दस... लेख प्रकाश में लाये हैं। ऐसा व्यक्तिगत प्रयास अब कठिन है किन्तु संस्थागत प्रया... में उसका अनुसरण अभीष्ट है। इस के लिए कुछ युवा विद्वानों को पुरानी लिपि ... का प्रशिक्षण देना होगा। शिलालेख और हस्तलिखितों के अध्ययन में प्रारम्भिक बाधा ... लोगों का असहयोग और यात्रा की असुविधा होती है। संस्थागत प्रयास से इन बाधाओं को दूर करना कुछ सीमा तक संभव होगा। अध्ययन से एकदम कोई बड़ी आश्चर्यकारक उपलब्धि की अपेक्षा न रख कर धैर्य से प्रतिवर्ष दो-तीन सौ लेखों के संकलन की व्यवस्था भी हम कर सकें तो यह कार्य प्रकाशन में विशेष विलम्ब का शिकार होने से बच सकता है।

भाषण : परिशिष्ट

मैंने मन्दिरों का निरीक्षण किया है और उसके बाद जब भी अवसर मिला निरीक्षण करता गया और उसके बाद नोट्स इकट्ठा करता गया। मेरा ऐसा प्रयत्न रहा कि भट्टारकों का 700 वर्ष का इतिहास है उसे मैंने संयोगवश अध्ययन के लिए चुना लेकिन अधिकतर मैंने प्रारंभ में भी, और मेरी पुस्तक छपने के बाद भी, विद्वानों ने भी उस विषय की ओर कुछ उपेक्षा का भाव रखा। शायद इसलिए कि भट्टारकों का जो कार्य करने का तरीका है, उनकी दृष्टि से बहुत प्रशंसनीय नहीं रहा हो। उनकी गौण देने की दृष्टि रही हो। यह एक ऐसा विषय है जो पुरानी पद्धति के करीब-करीब बाहर का रहा है। ऐसा मैं समझता हूँ। सर्वसाधारण पंडितों में एक भावना रही है कि मध्यकाल के जो मंदिर हैं कब बने और किसने बनाये यह कोई ध्यान देने की बात नहीं है। परन्तु 5-6 वर्षों से मेरा अध्ययन रहा उससे तीन नये विषयों के अध्ययन के लिए एक आधार बना। वे तीन विषय हैं :

पहले तो मराठी में जो पुराना साहित्य जैनों का है। पहले जितने ग्रन्थ छपे थे, मेरे अध्ययन के पूर्व, उसमें केवल दो लेखकों का पुरानी मराठी का था लेकिन मैं देखता हूँ कि कम से कम 16 लेखक ऐसे हैं जिन्होंने मराठी में अच्छी पुस्तकें लिखी हैं और करीब 450-500 वर्षों का उनका एक काल है। उस पर कई लेख समय-समय पर मैंने भी लिखे और बाद में मेरे एक मित्र जो आजकल प्राचार्य हैं जयसिंहपुर महाविद्यालय के, सुभाष... – उन्होंने उसे पी-एच.डी. के रूप में चुना। उनको प्रस्तुत

. यदि अभी देखें तो मालूम पड़ा इन 500 वर्षों में, 1400 से 1900 के बीच में, करीब करीब 60 ऐसे लेखक मराठी में हुए हैं जिन्होंने कथा, पुराण, गीत आदि की रचना की है। तो मैं समझता हूं कि पिछले 25 वर्षों में एक अच्छी उपलब्धि मराठी के क्षेत्र में रही है।

दूसरा जो सम्बद्ध विषय है उससे मिलता जुलता, इस सामग्री से मिलता वो है हमारे तीर्थ क्षेत्रों का इतिहास। जैसा कि मैंने शुरू में कहा जो हमारे मध्य युगीन मंदिर हैं उनमें से अधिकतर तीर्थक्षेत्रों के मंदिर भी शामिल हैं। जो भट्टारकों द्वारा या उनके शिष्यों द्वारा बनाये गये थे। जब भी आप इन तीर्थक्षेत्रों का इतिहास देखने की कोशिश करेंगे, उनके लेख वगैरा देखने की कोशिश करेंगे, तो इनका अध्ययन करना अनिवार्य हो जायेगा।

यह भी मुझे आश्चर्य हुआ कि यहाँ शिरपुर में अंतरिक्ष पार्श्वनाथ का मंदिर है जिस पर बड़ा विवाद चला। जब ये विवाद शुरू हुआ तो ये हमारे समाज के लोगों को बिल्कुल मालूम नहीं था कि इस मंदिर में आने वाले आचार्यों का या भट्टारकों के कौन-कौन कथा-क्रम थे। उनकी ओर से कोई साक्षियाँ कचहरी में प्रस्तुत नहीं की गई। जबकि श्वेताम्बरों की तरफ से 500-600 वर्षों के साक्ष्य प्रस्तुत किये गये। खैर उस काल तो जो कुछ हुआ। मुझे करीब 20 भट्टारकों की, उनके शिष्यों की, रचनाएँ मिली जिनमें तीर्थक्षेत्र के विभिन्न प्रकार से वर्णन किये गये हैं। तो उनका एक संग्रह छपा 'तीर्थ वन्दन संग्रह' के नाम से। मैं समझता हूं कि ये भी एक अच्छी उपलब्धि रही।

तीसरे जो विषय इसी से सम्बन्धित मुझे मिला, जो है - हमारी श्रावक जातियों का इतिहास। अभी जैसा भाई नेमीचन्दजी ने चर्चा की थी कि हमारे समाज के जो विभिन्न घटक हैं उनका यदि लेखा-जोखा लें, इस काल में 7-8 सौ वर्षों में, जितने भी श्रेष्ठि लोग थे वे प्रायः किसी न किसी भट्टारक से सम्बन्धित थे। अब उनका आपको कोई स्वतंत्र रिकार्ड नहीं मिलेगा। किसी सेठ की तारीफ में लिखी गई हो, इक्की-दुक्की रचनाएँ हैं। ऐसी बात नहीं है। लेकिन जितने भी वर्णन मिलते हैं उन भट्टारकों के शिष्य के रूप में अथवा श्रेष्ठियों का गौरव करने वाली रचनाएँ मिलती हैं।

जैसे मेरी जाति बघेरवाल है। इसके सम्बन्ध में खोजबीन की और मालवा के समीपवर्ती 5-6 मंदिरों का निरीक्षण किया। ये करीब 5-6 साल पहले की बात है तो मुझे 50 लेख मंदिरों भानपुरा, पंढारा, धौलपुर, कोटा में मिले। इनको भट्टारकों के लेख भी कह सकते हैं, श्रेष्ठियों के लेख भी कह सकते हैं, और तीर्थस्थानों के लेख भी कह सकते हैं।

इन तीनों क्षेत्रों की दृष्टि से जितना बन पड़ा थोड़ी सी उपलब्धि की बात है।

संभावनाओं की जहाँ तक बात है वह तो अनन्त है । क्योंकि हर जिले में 100 - 50 मंदिर अवश्य मिल जायेंगे । और हर मंदिर में 10-50 लेख भी आपको मिल जायेंगे । मेरा संकेत इतना करना पर्याप्त होगा कि अब तक जो काम हुआ है वह हम लोगों ने व्यक्तिगत अपनी जितनी शक्ति है, क्षमता है उसके हिसाब से किया है । कुछ यात्रा का कष्ट सहन करके, कुछ अपना व्यय करके और समय तो खैर देना ही पड़ता है, किया । लेकिन इसमें जो प्रत्यक्ष बाधायें आती हैं वो आप लोगों से छिपी हुई नहीं है । समाज के लोगों की ओर से इसमें सहयोग नहीं मिलता । प्रायः अड़चनें आती हैं कहीं ताले की चाबी नहीं मिलती, कहीं ट्रस्टियों को दिखाने का समय नहीं रहता है । व्यावहारिक कठिनाइयां हैं । जो हमारा अब तक का प्रकाशन है, रिकार्डस् पब्लिकेशन्स है । जो लोग बाजार में गाड़ियां लाते थे कपास की, तो व्यापारी पसन्द करते थे और खरीदते थे । अब तक वैसी ही स्थिति रही है विद्वान की । अपने मन से कहे कि इनमें से पसंद आये तो प्रकाशन-प्रबंधक उसे छापे । अब स्थिति प्रायः बदल गई है । अब यदि संस्था अपनी ओर से आयोजन करे और उसमें विद्वानों का सहयोग ले तो मेरा ख्याल है कि सामाजिक बाधायें कम होंगी और इस दिशा में ज्ञानपीठ ने जो गोष्ठी की शुरुआत की, यदि कोई ठोस रूप लेती है तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी ।

डा० दरबारीलाल कोठिया की टिप्पणी

डा० विद्याधर जोहरापुरकर ने भट्टारकों के विषय में वक्तव्य दिया । मैं यह कहना चाहता हूँ कि भट्टारकों के सम्बन्ध में सभी विद्वानों के विचार एक से नहीं है । मैंने खुद प्रमाण-प्रमेय कलिका नाम की पुस्तक में भट्टारक सम्प्रदाय से काफी सामग्री ली है । छत्रसेन, नरेन्द्रसेन कई भट्टारक उससे पूर्व के भट्टारक काल निर्धारण वैसे ही किया है जैसे उन्होंने किया है और किसने क्या काम किया है उसका भी उल्लेख किया है । ऐसा नहीं है कि पंडितों ने भट्टारकों के सम्बन्ध में स्वीकार नहीं किया । कम से कम मैंने और मेरे जैसे बहुत सों ने स्वीकार किया है ।

JAIN HISTORY : SOCIAL

- Dr. Vilas A. Sangave, Kolhapur.

Neglected Branch of Study :

The social history of Jains is an important but completely neglected branch of study. The history of Jains in India has been written mainly from political or cultural points of view. The political history of Jains deals with an elaborate account (i) of military exploits and administrative achievements of Jain Rulers, Ministers and Generals, (ii) of the details of Royal patronage received by the Jains in different parts of the country, and (iii) of the distinctive services rendered by the Jain businessmen and common people for strengthening the political stability of the region or for gaining political freedom. The cultural history of Jains is also a developed branch of study and it is concerned with the description and evaluation of the varied and remarkable contributions made by the Jains to enrich the cultural life of the people in the fields of language, literature, architecture, sculpture, painting, music etc. But unfortunately the social history of Jains has not as yet received due attention at the hands of Jainologists. Since the common members of the Jain Community have preserved the prestige of Jainism as a living religion from heavy antiquity to the present day by their faithful observance and continuous practice of the rules of conduct laid down by the religion, the various aspects of the social life of the Jains constitute an important field of study. The history of the Jains will, therefore, not be complete unless the social aspects of the Jain Community are taken into account along with the political and cultural activities and achievements of the Jains.

Jains - A Significant Minority :

Among the Muslim, Christian, Buddhist, Sikh and other religious minority communities of India, the Jain community

occupies an important place from different points of view. The Jains have the smallest population among the six major religious communities listed by the Government of India in their Census Report of 1971. In the total population of India, viz., 54,79,49,809, the Jain population is only 26,04,646. Thus the percentage of the Jain population to the total population of India is only 0.47. It means that per 10,000 persons in India, 8,272 are Hindus, 1,121 are Muslims, 260 are Christians, 189 are Sikhs, 70 are Buddhists and only 47 are Jains.

Again, this meagre Jain population is spread all over India. The Jains are settled practically in all parts of India and are not concentrated, like Sikhs, in a particular geographical region. The Jains also, like Sikhs, do not have a special dress or a specific language of their own. The Jains are thus truly Indian in character and enjoy considerable prestige in India even though they are few in number.

It is also noteworthy that the Jain community is more urban than rural. According to 1971 Census, urban Jains constitute 59.83 percent of the total Jain population, whereas rural Jains account for 40.17 percent of all Jains. Hence the Jains are largely urbanised but not very highly urbanised like the Parsis and Jews in India.

Further, the Jain community is one of the very ancient communities of India. The existence of Jain religion can be traced to the very beginning of Indian history. This hoary antiquity is a special feature of the Jain community and it is pertinent to note that this feature is not present in other religious minority communities in India.

Moreover, unlike other religious minority communities in India, the Jain community is Indian in every sense of the term. The Jains are the indigenous inhabitants of this country and

their mythological and historical personages, their languages, and their sacred places pertain to this country. The Jains have no religious connections or affiliations with people outside India.

Furthermore, the Jains, though small in number, constitute a separate entity and have succeeded in maintaining their distinctive features. Jainism being an independent religion, its followers have got their own and vast sacred literature, distinct philosophy and outlook on life, and special ethical rules of conduct based on the fundamental principle of Ahimsa. The entire activities of the Jains are moulded by the considerations of Ahimsa. This utmost importance given to the observance of Ahimsa in the life of every individual is not found in other communities of India even though they may attach some value to the principle of Ahimsa.

Apart from antiquity, the Jain community has got the characteristic of unbroken continuity. Few communities in the world can claim such a long and continued existence. It is really a matter of wonder to find how the Jains could maintain their perpetuity when the followers of many other religions and sects, which were prevalent in the past, are not found at present in India. Thus the survival of Jains, as a separate entity, from the hoary antiquity to the present day can be considered as their distinctive feature.

Survival of Jains :

In fact the most creditable achievementof Jainas is survival from ancient times up to the present day. The Jainas and the Buddhists were the main representatives of S'ramaṇa culture in India and it is pertinent to note that while Buddhism disappeared from the land of its birth, though it survives in other parts of the world, Jainism is still a living faith in India though it never spread outside India with the exception perhaps of Ceylon. There are many reasons responsible for the continuous

survival of Jainas in India.

Perhaps the most important reason which contributed to the continued existence of the Jain community to the present day is the excellent organisation of the community. The significant part of the Jain organisation is the fact that the laity has been made an integral part of the community. The community has been traditionally divided into four groups, viz., Sādhus or male ascetics, Sādhvīs or female ascetics, S'rāvakas or male laity and S'rāvikās or female laity, and these groups have been bound together by very close relations. The same Vratas or religious vows are prescribed for ascetics and laity with only difference that the ascetics have to observe them more scrupulously while the laity is allowed to follow them in a less severe manner. The laity is made completely responsible for the livelihood of the ascetics and to that extent the latter are dependent on the former. From the beginning ascetics have controlled the religious life of the lay disciples and the lay disciples have kept a strict control over the character of the ascetics. That is why the ascetics are required to keep themselves entirely aloof from worldly matters and to regorously maintain their high standard of ascetic life. If they fall short of their requirements they are likely to be removed from their positions. In this connection, H. Jacobi rightly remarks as follows. "It is evident that the lay part of the community were not regarded as outsiders, or only as friends and patrons of the Order, as seems to have been the case in early Buddhism; their position was, from the beginning, well defined by religious duties and privileges; the bond which united them to the Order of monks was an effective one... It can not be doubted that this close union between laymen and monks brought about by thesimilarity of their religious duties, differing not in kind, but in degree, had enabled Jainism to avoid fundamental changes within, and to resist dangers from

without for more than two thousand years, while Buddhism, being less exacting as regards the laymen, underwent the most extraordinary evolutions and finally disappeared in the country of its origin."

Another important reason for the survival of the Jain community is its inflexible conservatism in holding fast to its original institutions and doctrines for the last so many centuries. The most important doctrines of the Jaina religion have remained practically unaltered up to this day and, although a number of the less vital rules concerning the life and practices of monks and laymen may have fallen into disuse or oblivion, there is no reason to doubt that the religious life of the Jain community is now substantially the same as it was two thousand years ago. This strict adherence to religious prescriptions will also be evident from Jaina architecture and especially from Jaina sculpture, for the style of Jaina images has remained the same to such an extent that the Jaina images differing in age by a thousand years are almost indistinguishable in style. Thus an absolute refusal to admit changes has been considered as the strongest safeguard of the Jains.

The royal patronage which Jainism had received during the ancient and medieval periods in different parts of the country has undoubtedly helped the struggle of the Jain community for its survival. The Karnataka and Gujaratha continued to remain as strongholds of Jains from the ancient times because many rulers, ministers and generals of renowned merit from Karnataka and Gujaratha were of Jain religion. Apart from Jain rulers many non-Jain rulers also showed sympathetic attitude towards the Jain religion. From the edicts of Rajputana it will be seen that in compliance with the doctrines of Jainism orders were issued in some towns to stop the slaying of animals throughout the year and to suspend the revolutions of oil-mill and potter's

-6

wheel during the four months of the rainy season every year. Several inscriptions from theSouth reveal the keen interest taken by non-Jain rulers in facilitating the Jains to observe their religion. Among these the most outstanding is the stone inscription dated 1368 A.D. of the Vijayangara monarch Bukka Raya I. When the Jains of all districts appealed in a body for protection against their persecution by the Vaishnavas, the king after summoning the leaders of both sects before him declared that no difference could be made between them and ordained that they should each pursue their own religious practices with equal freedom.

The varied activities of a large number of eminent Jain saints contributed to the continuation of Jain community for a long period because these activities produced a deep impression upon the general public regarding the sterling qualities of Jain saints. They were mainly responsible for the spread of Jainism all over India. The chronicles of Ceylon attest that Jainism also spread in Ceylon. As regards the South India it can be maintained that the whole of it in ancient times was strewn with small groups of learned Jain ascetics who were slowly but surely spreading their morals through the medium of their sacred literature composed in the various vernaculars of the country. These literary and missionary activities of the Jain saints ultimately helped the Jains in South India to strengthen their position for a long time in the face of Hindu revival. Even in political matters the Jain saints were taking keen interest and guiding the people whenever required. It has already been noted that the Gangas and the Hoyasalas were inspired to establish new kingdoms by the Jain Acharyas. Along with the carrying of these scholastic, missionary and political activities, the Jaina Acharyas tried to excel in their personal accomplishments also. Naturally princes and

people alike had a great regard for the Jain saints in different parts of the country. Even the muslim rulers of Delhi honoured and showed reverence to the learned Jain saints of North and South India. It is no wonder that the character and activities of such influential Jain saints created an atmosphere which helped to lengthen the life of Jain community.

A minority community for its continued existence has always to depend on the goodwill of the other people and that goodwill could be persistently secured by performing some benevolent activities. The Jains did follow and are still following this path of attaining the goodwill of all people by various means like educating the masses and alleviating the pain and misery of people by conducting several types of charitable institutions. From the beginning the Jains made it one of their cardinal principles to give the four gifts of food, protection, medicine and learning to the needy (āhāraabhaya-bhaishajya-s'astra-dāna) - irrespective of caste and creed. According to some this was by far the most potent factor in the propagation of the Jain religion. For this they established alm-houses, rest-houses, dispensaries and schools wherever they were concentrated in good numbers. It must be noted to the credit of the Jains that they took a leading part in the education of the masses. Various relics show that formerly Jain ascetics took a great share in teaching children in the Southern countries, viz., Andhra, Tamil, Karnataka and Maharashtra. In this connection Dr. Altekar rightly observes that before the beginning of the alphabet proper the children should be required to pay homage to Gaṇes'a, by reciting the fomula "S'ri Gaṇes'aya Namah", is natural in Hindu society, but that in the Deccan even today it should be followed by the Jain formula "Om Namah Siddham" shows that the Jain teachers of medieval age had so completely controlled the mass education that the Hindus continued to teach their children this

originally Jain formula even after the decline of Jainism. Even now the Jains have rigorously maintained the tradition by giving freely those four types of gifts in all parts of India. In fact the Jains never lag behind in liberally contributing to any national or philanthropic cause.

Another important factor which helped the continuation of the Jain community is the cordial and intimate relations maintained by the Jains with the Hindus. Formerly it was thought that Jainism was a branch either of Buddhism or of Hinduism. But now it is generally accepted that Jainism is a distinct religion and that it is as old as, if not older than, the Vedic religion of the Hindus. As Jainism, Hinduism and Buddhism, the three important ancient religions of India, are living side by side for the last so many centuries, it is natural that they have influenced one another in many respects. In matters like theories of re-birth and salvation, descriptions of heaven, earth and hell, and belief in the fact that the prophets of religion take birth according to prescribed rule, we find similarities in the three religions. Since the disappearance of Buddhism from India the Jainas and Hindus came more close to each other and that is why in social and religious life the Jains on the whole do not appear to be much different from the Hindus. From this it should not be considered that the Jains are a part of the Hindus or Jainism is a branch of Hinduism. In fact if we compare Jainism and Hinduism, we find that the differences between them are very great and their agreement is in respect of a few particulars only concerning the ordinary mode of living. Even the ceremonies which appear to be similar are in reality different in respect of their purport if carefully studied.

It is evident that there are several items of social and religious practices on which there are basic differences between the Jains and the Hindus. It is pertinent to note that these di-

fferences are persisting even up to the present day. At the same time it will have to be admitted that there had been an infiltration of non-Jain elements into Jain social and religious usages. It is not that the Jains blindly accepted these non-Jain elements. Perhaps the Jains had to allow the infiltration of non-Jain element as an adjustment to changed circumstances. Thus the Jains, as a policy for survival, willingly accepted the infiltration of non-Jain element in Jain practices. But in doing so they made every attempt to maintain the purity of religious practices as far as possible. The Jain Acharyas, mainly with a view to maintain the continuity of the Jain community in troubled times, did not oppose but on the contrary gave tacit sanction to the observance of local customs and manners by the Jains. In this connection Somadeva, the most learned Jain Acharya of medieval age in the South, observes in his Yas'astilaka-Champu that

> द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः ।
> लोकाश्रयो भवेदाद्यः परः स्यादागमाश्रयः ।।
> सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः ।
> यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ।।

the religion of Jain householders is of two varieties, Laukika, i.e. this worldly, and Paralaukika, i.e. the other-worldly; the former is based upon popular usage and the latter on the scriptures. Further, it is legitimate for the Jains to follow any custom or practice sanctioned by popular usage so long as it does not come into conflict with the fundamental principle of the Jain faith or the moral and disciplinary vows enjoyed by the religion. It thus means that by showing the leniency to the Jains in observing the well established local practices, provided they do not harm the highest principles of Jainism, a conscious effort was made by the Jains to adjust to the adverse circumstances. This wise adjustment ultimately created cordial and intimate relations with Hindus and it appears that due to this

policy the Jains were saved from complete extinction at the hands of persecutionists and they could keep their existence for the last so many centuries. In fact the Jains had made determined efforts to maintain good relations not only with the Hindus but with the members of other communities also. Even though the Jainas were in power for a long time they hardly indulged in the presecution of non-Jains, whereas we find innumerable instances where Jains were severaly persecuted by non-Jains.

Major Aspects of Study :

This unbroken continuity of the Jain Community from the hoary antiquity to the present day is a very significant aspect of the social history of Jains in India. It is, therefore, quite pertinent to find out not only the major factors which helped the survival of the Jains to-day but also the significant factors which will undoubtedly contribute to the continuation of the Jain community in future. In this connection the nature and extent of prevailing social relations of Jains with the Hindus in different parts of India will have to be investigated and the future policy of relationship will have to be formulated. Furth r, the several aspects of social life of the Jains in particular regions, like the Southern Rajasthan, Western Madhya Pradesh, Northern Gujarath, Southern Maharashtra, and Northern Karnataka, where their proportion to total population of the region is comparatively more than in other parts of India, will have to be vividly brought out so that a comprehensive account of the Jain way of life and of their social institutions can be available for the first time. Moreover, a similar account of Jains largely concentrated in cities like Bombay, Amedabad, Delhi, Jaipur, Indore, Calcutta, Bangalore etc. will have to be presented in a scientific way. Furthermore, the distinctive role played by the prominent families in influencing and enriching the Jain way of life over a long

period can be analysed and studied. On the same lines the role played by the leading Jain personalities and families in shaping the economic, political and cultural life of the region can be assessed and evaluated. In addition the specialised institutions in the fields of education, health, social welfare etc. started and conducted by the Jains in the interests of general public can be studied and their contributions to general welfare of the people can be determined.

...

जैन इतिहास (भाषण)

- डा० विलास ए० संघवे

डा० नेमीचन्द जैन की आज्ञा से हिन्दी में बोल रहा हूँ । जो गलतियाँ होंगी वे डा० नेमीचन्द जैन की होंगी । अगर अच्छाई होगी तो वह मेरी होगी ।

जब इतिहास की बात आती है तो जैन इतिहास को राष्ट्रीय इतिहास गिना जाता है । जैनों का दृष्टिकोण राष्ट्रीय है । राजाश्रय मिला - कोई राजा हुए, कोई प्रधान हुए, कोई सेनापति हुए । सब तो प्राप्त होता ही है। जैनों का सांस्कृतिक इतिहास भी बड़ा है । संस्कृति में जैनों ने क्या योगदान किया ? साहित्य है, कला है, वैभव है - सब होता ही है । लेकिन जब हम समाज के बारे में बोलते हैं तो समाज के बारे में जैनियों ने कुछ भी नहीं किया । अर्थात् समाज के इतिहास को लिखने के बारे में हम लोगों ने कुछ भी नहीं किया । जब हम समाज पर विचार करते हैं - मेरा ख्याल है कि हमारे आचार्यों ने समाज की दृष्टि से हमको नहीं देखा है । बीसवीं शती में जैन समाज पर विचार करते हैं कि भारतीय समाज में जैनों का क्या स्थान है । 'दि प्लेस आफ दि जैन सोसायटी इन दि कान्टेक्स्ट आफ दि इण्डियन सोसायटी -

'भारतीय समाज के संदर्भ में जैन समाज की क्या स्थिति है ' इसके बारे में हमें सोचना चाहिए और उसके बारे में कुछ लिखना - संशोधन करना बहुत जरूरी बात है । भारतीय समाज के संदर्भ में जब हम जैन समाज को देखते हैं तो हम पाते हैं कि जैन समाज एक अल्प संख्यक समाज है । एक मायनोरिटी है इसलिए छोटा समाज है । हिन्दुस्तान के 50 करोड़ लोगों में 26 लाख जैन हैं ।

दूसरी बात यह कि हमारी समाज एक पुरातन समाज है । ओल्डेस्ट है । मुसलमान समाज, हिन्दू समाज, क्रिश्चियन समाज एंग्लो इंडियन समाज ये एतादृशी नहीं है । हम इस देश के रहने वाले हैं । इसके लिए हम इंडीज्यूजअल सोसायटी जिसे हम बोलते हैं ऐसी हमारी सोसायटी है। और हमारा समाज जो है अखिल भारतीय संघ का है ।

हम भारत के कश्मीर से कन्याकुमारी तक और कच्छ से कलकत्ता तक बिखरे हुए हैं इसलिए हम अखिल भारतीय सिद्ध होते हैं । उसका स्वरूप जैन समाज में दिखाई देता है ।

दूसरी बात ये कि हम अरबन हैं - नागरिक हैं । नगर में रहने वाले हैं । हमारे 60 प्रतिशत लोग शहर में रहते हैं । हम शहर-वासी हैं । हम आइडियाजवादी

है, धर्मवादी हैं- धर्म मार्गदिक हैं । जितना जैन समाज ने किया है उतना किसी ने नहीं किया । हम विशिष्ट समाज हैं - वैशिष्ट्यपूर्ण समाज हैं । हमारी विशिष्टता क्या है ? हमारा वैशिष्ट्य अहिंसा है - अहिंसा धर्म से चलना हमारा वैशिष्ट्य है ।

जग में हमारा ऐसा समाज है जो अहिंसा धर्म से चलता है । बौद्ध लोग अहिंसा मानते हैं लेकिन वो अहिंसा से चलते नहीं हैं । इसलिए जग में हमें जो मान है, हमें जो प्रतिष्ठा है, इसलिए स्वाभिमान है । इसलिए हम बोलते हैं कि वैशिष्ट्यपूर्ण समाज है ।

जब हम इसका वर्णन करते हैं - इतिहासकार तो बोलते हैं जैन समाज सभ्यतापूर्ण समाज है । अमेरिका के एक बड़े समाजशास्त्री ने भारत के बारे में लिखा है उसमें जैनों के बारे में एक अध्याय है । हमारे ग्रन्थ पर आधारित है । और उन्होंने सब विशेषण लगाये हैं । बोलते हैं सिख कैसे हैं ? मिलिटेंट (युद्धीय मानसिकता वाले) हैं । जैन कैसे हैं ? तो बोलते हैं अनाक्रामक, किसी को सताने वाले नहीं हैं । इस तरह हम बोलते हैं कि भारतीय समाज में जैन समाज का अनन्य स्थान है । अनन्य स्थान कैसे हो गया । हम कल्चर्ड हैं उस पर हमें सोचना चाहिए और समाज शास्त्र के बारे में सोचता हूँ तो हमारी समाज ने इस दृष्टि से कोई विचार नहीं किया । जब हम जैन समाज को देखते हैं तो हमें एक बात याद आती है और उसको हमें दोहराना चाहिए । कि दूसरे समाजों की दृष्टि से हमारी समाज निरंतर से चला है । जिसे कर्मोपलब्धि बोलते हैं, जिससे आज तक हम जिन्दा हैं । भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर समकालीन थे । बौद्ध समाज बहुत फैला भारत में और भारत से बाहर भी, लेकिन वह भारत से लुप्त हो गया । लेकिन जैनियों का ऐसा नहीं हुआ । वह आज भी है और उसी दृष्टि से चल रहा है । इसलिए हम कर्मोपलब्धि कहते हैं । यह कैसे हो सकता है । क्या हुआ है - जब हम उसकी छानबीन करेंगे तो इसके बारे में कह सकेंगे । इसके बारे में हम विचार करें । इसलिए हमें विचार करना चाहिए कि किस लिए हम जिन्दा रह सके और इसका कुछ कारण भी है । ज्यादा समय नहीं लेता हूँ । दूसरे समाजों के संदर्भ में हमारा समाज इतने साल क्यों जिन्दा रहा । पहली बात एक यह है कि हमारी समाज का संगठन बहुत अच्छा रहा । चतुर्विध जैन संघ था । श्रावक, श्राविका, साधु और साध्वी । जातियाँ हमारे में नहीं थीं । इसलिए श्रावक श्राविका साधु साध्वियों में मिलन बहुत अच्छा था । बौद्धधर्म ऐसा नहीं था । इसलिए बौद्ध धर्म यहाँ से लुप्त हो गया । जब बौद्ध चले गये तो बौद्धधर्म भी लुप्त हो गया । जैनधर्म में ऐसा नहीं है क्योंकि साधु हों तो हमारे श्रावक-श्राविकाएँ भी साधु हो जायेंगे । यह परम्परा चल रही है । इसलिए हमारा समाज अब तक जिन्दा रहा ।

दूसरा कारण ये है कि हमने निरंतर धर्मपालन किया । जैसे ऐसे है कि

अपने धर्म पर चलते है, कहीं भी हों । यह हमारी अमर शक्ति है । युग कैसे भी बदले लेकिन हमारे साधु वैसे ही पैदल चलते है । कितना ऊँचा उनका आचार है । हमारे श्रावक सल्लेखना करते हैं । याकोबी लिखते हैं - बौद्ध चले गये, जैन क्यों रह गये । जब तक हमारा समाज धर्म पालन करेगा तब तक हमारा समाज जिन्दा रहेगा ।

तीसरी बात यह है कि राजाश्रय उसे मिला । हमारे जो आचार्य थे - जैन आचार्य, उनका प्रभाव हमारे ऊपर बहुत अच्छा हुआ और इससे हमारे सांस्कृतिक संस्कार अच्छे हुए । जो दूसरे लोग थे उनकी ख्याति प्राप्त कर ली । सबसे बड़ा कारण ये है कि हमारा हिन्दुओं से जो सम्बन्ध है वह बहुत अच्छा रहा गया । हिन्दुओं के साथ हमने अच्छा बर्ताव किया । हमने अपना धर्म कभी नहीं छोड़ा लेकिन हमने उनकी दूसरी बातें स्वीकार कर लीं । हम कर्नाटक गये, कर्नाटक के हो गये हैं । आसाम गये आसाम के हो गये । जहाँ तक धर्म की बात आयी हम अलग रह गये । इसी दृष्टि से हम चले और हम देखते हैं कि ये दृष्टि हमारे आचार में भी है । ईस्वी सन् की दसवीं शताब्दी में सोमदेव सूरि ने लिखा है -

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ।।

तो इस बीसवीं शताब्दी में हमारे सामाजिक इतिहास की ये भावना होनी चाहिए कि हम हिन्दुओं से कैसा वर्ताव करें । हिन्दू परिषद् वाले बोलते हैं कि जैन हिन्दू ही हैं और वो बोलते हैं कि जैनधर्म अलग नहीं है । वह हिन्दुओं में समाहित करना चाहते हैं और हम चाहते हैं कि जैनधर्म अलग है । जैन इतिहास की बड़ी समस्या है कि हम अलग रहें या उसमें शामिल हो जायें । मैं चाहता हूँ कि रहें और अलग रहें हैं । और धार्मिक विशिष्टता के साथ अलग रहेंगे । इस दृष्टि से भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से हिन्दुओं और जैनियों का सम्बन्ध कैसे अच्छा हो इस दृष्टि से जैन इतिहास का समाज शास्त्र में समीक्षा होना चाहिए ।

दूसरी बात यह है कि जैन समाज सारे भारत में बिखरा हुआ है । जैन समाज कहाँ कहाँ एकत्रित हुआ - यह हम देखें । दक्षिण भारत में उत्तर कर्नाटक में जैन लोग अधिक हुए । दक्षिण भारत में कोल्हापुर सांगली - इनमें दक्षिण भारत जैन सभा है और ढाई लाख जैन लोग रहते हैं ।

उत्तर में राजस्थान, मध्यप्रदेश और गुजरात में है । मेरा ख्याल है कि जब जैन समाज का इतिहास लिखा जाय तो उसमें जाति का इतिहास नहीं लिखना लेकिन समाज का इतिहास लिखना चाहिए । जाति पर ज्यादा ध्यान देना आवश्यक नहीं होगा । इस दृष्टि से मैंने दक्षिण भारत के जैनों का इतिहास लिखा है और जैनियों ने जो भी

तरक्की की है उल्लिखित की है ।

हमारी समाज में जो परिवार है, वो अच्छी तरह से चले हैं । जिसे हम 'चाइनी हिस्ट्री' बोलते हैं । उसमें छोटे-छोटे 10 लोगों का कुल होता है फिर भी वृतान्त छपते हैं । वर्षों से, सदियों से, हमारे यहाँ बड़े-बड़े कुल चले आते हैं उनका जैन समाज पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा है । सेठ माणिकचन्दजी, हीराचन्दजी, साहू शान्तिप्रसादजी, दोशी वहिन, शोलापुर यहाँ इनका प्रभाव अच्छा है लेकिन उसके बारे में कुछ भी जानकारी नहीं है ।

जैन इतिहास लिखना होगा समाज की दृष्टि से । जैनियों का हिन्दुओं के साथ वर्ताव कैसा होना चाहिए । जहाँ जैन एकत्र हुए हैं वहाँ जागृति कैसे होनी चाहिए । जैन कुटुम्ब व्यवस्था और जैन परिवार व्यवस्था आदि ।

इतिहास और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में जैन-साहित्य का मूल्यांकन

- डा० प्रेमसुमन जैन, उदयपुर

भारतीय इतिहास और संस्कृति के मूल्यांकन हेतु विभिन्न प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया जाता है। उनमें से साहित्य का उपयोग एक समृद्ध माध्यम है किन्तु भारतीय इतिहास और संस्कृति के लेखन में जितना उपयोग ब्राह्मण और बौद्ध परंपरा के साहित्य का हुआ है, उतना जैन-परंपरा के साहित्य का नहीं हो पाया है जबकि इस साहित्य में इतिहास और संस्कृति की प्रभूत सामग्री है। यद्यपि जैन-साहित्य की कुछ सामग्री का उपयोग इतिहास और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में कुछ विद्वानों के द्वारा किया गया है। फिर भी इन पचास वर्षों में जैन-साहित्य एक बहुत बड़ी मात्रा में प्रकाश में आया है; उसका उपयोग इस विषय में किया जाना अभी शेष है। अपनी परंपरा में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर अपने देश और संस्कृति के इतिहास को जानना प्रत्येक समझदार नागरिक का कर्तव्य है। अपने पूर्वजों के इतिहास और जीवन से अनभिज्ञ रहना संकीर्णता है। इसी बात को एक नीतिकार ने कहा है :- 'जो व्यक्ति अपने पूर्वजों के इतिहास से अनभिज्ञ है, वह कुलटा पुत्र के समान है, जो यह नहीं जानता कि उसका पिता कौन है :-

स्वजातिपूर्वजानां तु यो न जानाति सम्भवम् ।
स भवेत् पुंश्चलीपुत्रसदृशः पितृवेदकः ॥[1]

इतिहास के इसी महत्व और जैन साहित्य की समृद्धि को ध्यान में रखते हुए जैन समाज के प्रमुख विद्वानों ने इस दिशा में कुछ आधारभूत कार्य किये हैं। पं० नाथूराम प्रेमी[2], पं. जुगलकिशोर मुख्तार, पं. परमानंद शास्त्री, पं. के भुजबली शास्त्री, प्रो० पी.बी. देसाई[3], श्री बी.ए. सालेतोर आदि विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में एवं शोधपूर्ण निबंधों में जैन साहित्य के ऐतिहासिक पक्ष को उजागर किया है। वर्तमान में भी कुछ विद्वान इस कार्य में संलग्न हैं। किन्तु जैन साहित्य में इतिहास और संस्कृति की जितनी सामग्री उपलब्ध है, उसके व्यापक मूल्यांकन के लिए इस दिशा में व्यवस्थित और सामूहिक प्रयत्न किये जाने की आवश्यकता है।

जैन-साहित्य में जन-जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। जैन ग्रन्थकारों ने किसी महल में बैठकर साहित्य की रचना नहीं की है, अपितु उन्होंने अपने पैरों से व्यापक भूभाग को स्वयं नापा है, तथा अपनी आँखों से जन-जीवन को समीप से देखा है। जैनाचार्यों ने अपने युग की स्थिति के अनुसार कुछ ऐतिहासिक और अर्द्ध-ऐतिहासिक कृतियों की रचना की है। जैन ग्रन्थकारों ने ऐसे राजाओं और प्रभावी जनों को अपने ग्रंथों

में सम्मिलित किया है, जो आदर्श पुरुष थे । सिद्धराज जयसिंह, कुमारपाल, वस्तुपाल, जगडूशाह, पेथड़शाह आदि इसी प्रकार के प्रभावी जन जैन-काव्यों में उल्लिखित हुए हैं । जैन-साहित्य की इसी प्रकार की प्रामाणिकता को ध्यान में रखते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार काशीप्रसाद जायसवाल का यह मंतव्य है कि भारतीय इतिहास को सुरक्षित रखने में जैन-साहित्य सबसे अधिक प्रामाणिक स्रोत है । क्योंकि उसमें यथार्थ का चित्रण अधिक है । कुछ जैन साहित्य ऐसा है, जिसमें इतिहास की जो सूचनाएँ मिलती हैं, वे अन्य स्रोतों में प्राप्त नहीं हैं । आठवीं शताब्दी के जैन-साहित्य में इस प्रकार के कई संदर्भ हैं । उसके बाद के जैन-साहित्य में भी इसी प्रकार की महत्वपूर्ण सूचनाएं हैं । प्रद्युम्न चरित्र की प्रशस्ति से राजस्थान के परमार बल्लाल और गुहिल राजाओं के सम्बन्ध में जो सूचनाएँ मिलती हैं, वे महत्वपूर्ण हैं । जैन साहित्य से ही पता चलता है कि जैन-आचार्यों का प्रभाव भारत के विभिन्न राजाओं के ऊपर समय-समय पर बना रहा है । राजस्थान[4] और गुजरात[5] तथा दिल्ली के राजनैतिक इतिहास से यह बात प्रमाणित होती है । दक्षिण भारत के राजाओं का इतिहास तो जैन-साहित्य के अध्ययन के बिना अधूरा है ।[6]

जैन-साहित्य में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सामग्री को प्रस्तुत करने वाला साहित्य कई प्रकार का है । ऐतिहासिक - काव्य, प्रबन्ध-साहित्य, ग्रन्थों की प्रशस्तियाँ और पुष्पिकाएँ, पट्टावलियाँ, गुरुआवलियाँ, विज्ञप्तिपत्र, शिलालेख, मूर्तिलेख, तीर्थ-मालाएँ आदि इसी प्रकार का साहित्य है । डा. गुलाबचंद चौधरी ने जैन-साहित्य का वृहद् इतिहास भाग -6 में इस प्रकार के साहित्य का विस्तार से परिचय दिया है ।[7] इस साहित्य के अतिरिक्त जैन-साहित्य के काव्य और कथा ग्रंथों में भी इतिहास और संस्कृति की प्रभूत सामग्री है । इस सामग्री के उपयोग से राजस्थान, गुजरात, मालवा और उत्तर भारत के इतिहास की कई समस्यायें सुलझाई जा सकती हैं ।[8] डा. ज्योतिप्रसाद जैन, अगरचंद नाहटा, डा. दशरथ शर्मा[9], डा. गोपीनाथ शर्मा, श्री आर.सी. अग्रवाल, डा. के.सी. जैन आदि विद्वानों ने जैन-साहित्य की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सामग्री का उपयोग अपने ग्रन्थों में किया है ।

विभिन्न जैन ग्रन्थों की प्रशस्तियाँ[10] इतिहास और संस्कृति के अतिरिक्त समाज की दृष्टि से भी विशेष महत्व की हैं । जैन समाज की विभिन्न जातियों और उनके रीति-रिवाजों के अध्ययन के लिए इन प्रशस्तियों में आधारभूत सामग्री है । कुछ बातों का पता पहली बार ही इन प्रशस्तियों से चलता है । गुर्जर नरेश सिद्धराज जयसिंह की कई उपाधियों का उल्लेख इतिहास के ग्रन्थों से मिलता है । किन्तु वे उपाधियाँ कब और किस क्रम से उन्हें प्राप्त हुईं इसका पता जैन-ग्रन्थों की प्रशस्तियों से ही चलता है ।

जैन-साहित्य के ग्रन्थों की सामग्री कला की दृष्टि से भी विशेष महत्व की है ।

डा. वासुदेवशरण अग्रवाल, डा यू.पी. शाह तथा अन्य कला मर्मज्ञों ने इस विषय पर विशेष प्रकाश डाला है ।[11] साहित्य में विभिन्न जैन मंदिरों, मूर्तियों, और चित्रकला आदि का जो वर्णन प्राप्त होता है। उसके प्रमाण पुरातात्विक सामग्री में प्राप्त हो जाते हैं । इस दृष्टि से मध्यप्रदेश की जैनकला का मूल्यांकन प्रो.के.डी. वाजपेयी, श्री नीरज जैन, डा भागचन्द्र जैन एवं डा. के.सी. जैन आदि विद्वानों ने किया है । राजस्थान में श्री आर.सी. अग्रवाल, डा. सत्यप्रकाश एवं श्री विजयशंकर श्रीवास्तव आदि विद्वानों ने कला के मूल्यांकन में जैन साहित्य का उपयोग किया है । जैन साहित्य में कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें चित्रकला की पर्याप्त सामग्री है । अचित्र पाण्डुलिपियाँ इस दिशा में बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं ।

डा मोतीचंद[12] एवं डा साधू दोशी आदि विद्वानों ने जैन-साहित्य में उपलब्ध चित्रकला का अध्ययन किया है । किन्तु अभी भी पर्याप्त सामग्री का उपयोग होना बाकी है । जैन-साहित्य में संगीत-कला के संबंध में भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है । डा प्रेमलता ने इस दिशा में कुछ कार्य किया है, किन्तु यह क्षेत्र अभी अनछुआ जैसा ही है । रविषेण के पद्मचरित में ही संगीत संबंधी सैकड़ों सूचनाएं हैं ।

जैन-साहित्य भारतीय भूगोल और गणित-विद्या के लिए भी महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है । प्रो० रमाप्रसाद त्रिपाठी ने अपने ग्रन्थ 'डिवलपमेंट आफ जियोग्राफिक नॉलेज इन एन्सिएन्ट इंडिया' में जैन साहित्य के भौगोलिक विवरण की सूची दी है । श्री अगरचंद नाहटा ने भी अपने एक लेख में जैन साहित्य के भौगोलिक महत्व पर प्रकाश डाला है । जैन साहित्य के जिन ग्रन्थों का सांस्कृतिक अध्ययन विद्वानों ने किया है, उनमें भी भौगोलिक सामग्री प्रस्तुत की गई है । किन्तु जैन साहित्य में वर्णित भूगोल विषय पर व्यापक रूप से कार्य किये जाने की आवश्यकता है । जैन साहित्य में राजनीति संबंधी भी पर्याप्त सामग्री है, जिससे प्राचीन भारतीय शासन पद्धति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । सोमदेव-कृत नीतिवाक्यामृत के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों की इस विषयक सामग्री का अध्ययन किया जाना अपेक्षित है ।

जैनाचार्यों ने विभिन्न भाषाओं में और विभिन्न कालों में जैन-साहित्य लिखा है । अतः उनके ग्रन्थों में यद्यपि कुछ परंपरागत वर्णन है, किन्तु फिर भी ऐतिहासिक क्रम से भारतीय इतिहास और संस्कृति का विकास जैन साहित्य से प्राप्त किया जा सकता है । प्राकृत-साहित्य जन-जीवन का प्रतिनिधि साहित्य है । आगम-साहित्य और उसके व्याख्या साहित्य में भारतीय संस्कृति सूक्ष्म रूप से अंकित हुई है । मौर्ययुग और गुप्तयुग का इतिहास प्राकृत-साहित्य के उपयोग किये बिना अधूरा है ।

डा ए.एन. उपाध्ये, डा हीरालाल जैन[13], पं. दलसुखभाई मालवणिया, डा जगदीशचंद्र जैन[14] आदि विद्वानों ने इस साहित्य की सांस्कृतिक सामग्री को उजागर

करने में अथक परिश्रम किया है । प्राकृत के स्वतंत्र ग्रन्थों के भी कुछ सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किये गए हैं । डा. नेमिचन्द्रशास्त्री[15], डा. के.आर. चन्द्रा, डा. जे.सी. सिकदर, डा. वी.एम. कुलकर्णी, डा. वी. के. खडबड़ी आदि विद्वानों ने प्राकृत साहित्य के ग्रन्थों का अध्ययन प्रस्तुत कर प्राकृत-साहित्य की सांस्कृतिक समृद्धि को इतिहासकारों और कला मर्मज्ञों के सामने प्रकट किया है । प्राकृत का कुवलयमालाकहा नामक ग्रन्थ सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्व का है[16] । इसके विभिन्न पक्षों पर कई विद्वानों ने प्रकाश डाला है ।

पूर्वमध्ययुग और मध्ययुग के इतिहास तथा संस्कृति की जानकारी के लिए अपभ्रंश साहित्य में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है । डा. हीरालाल जैन, पं. परमानंद शास्त्री, डा. एच.सी. भायाणी, डा. देवेन्द्रकुमार जैन[17], डा. राजाराम जैन[18] आदि विद्वानों ने अपभ्रंश साहित्य के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व को अपने ग्रन्थों तथा अनेक शोध निबंधों में प्रकट किया है । भविसयत्तकहा से पता चलता है कि उस युग में भी अन्याय के विरुद्ध हड़ताल की जाने लगी थी । पउमचरिउ से ज्ञात होता है कि खाने-पीने की वस्तुओं में तब भी मिलावट होती थी । इसी ग्रन्थ से पता चलता है कि उसी समय लोक भाषा के शिक्षण के समय बारहखड़ी लोक-शैली से याद कराई जाती थी । इस प्रकार अपभ्रंश साहित्य सांस्कृतिक बदलाहट के स्वर को स्पष्ट करती है । जीवन से संघर्ष करते हुए बदलते समाज की संस्कृति का चित्रण इस साहित्य में है ।

संस्कृत में पर्याप्त जैन साहित्य लिखा गया है । डा. नेमिचन्दशास्त्री, डा. हरीन्द्र-भूषण जैन, प्रो. भोगीलाल सांडेसरा, प्रो. हंदीकि तथा पं. डा. पन्नालाल साहित्याचार्य, डा. श्यामकुमार दीक्षित[19], डा. गोकुलचंद जैन[20] आदि विद्वानों ने संस्कृत के जैन साहित्य के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्त्व को स्पष्ट किया है । उत्तर गुप्तयुग और मध्ययुग के इतिहास तथा संस्कृति के लिए संस्कृत का जैन साहित्य कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है । इस साहित्य से ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर पं. कैलाशचंदशास्त्री[21] आदि विद्वानों ने जैन इतिहास को पुनर्जागृत किया है ।

विभिन्न भाषाओं में प्राप्त इस जैन साहित्य के अतिरिक्त दक्षिण भारत की भाषाओं का जैन-साहित्य भी भारतीय इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से विशेष उपयोगी है । वहाँ के विद्वानों ने इतिहास और संस्कृति के निर्माण में जितना जैन-साहित्य का उपयोग किया है उतना उपयोग देश के अन्य भागों के जैन-साहित्य का नहीं हुआ है । इसी तरह जैन ग्रंथ भंडारों में प्राप्त सामग्री तथा जैन लेखों का इस कार्य के लिए कम ही उपयोग हुआ है । डा. कस्तूरचंद कासलीवाल[22], डा. सोमाणी, डा. विद्याधर जोहरापुरकर[23] आदि विद्वानों ने इस दिशा में जो प्रयत्न किए हैं, वे महत्त्वपूर्ण हैं । किन्तु इस कार्य की परंपरा अधिक श्रमसाध्य होने के कारण आगे नहीं बढ़ सकी है । ग्रंथ-भंडारों की

सुरक्षा, सर्वेक्षण और प्राप्त ग्रन्थों के सम्पादन एवं प्रकाशन के कार्य को प्राथमिकता देकर किया जाना अपेक्षित है ।

इस सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि जैन साहित्य का मूल्यांकन इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से किया जाना नितांत आवश्यक है, तभी यह साहित्य भारतीय साहित्य और विश्व-साहित्य की कोटि में अपना स्थान बना सकेगा । इसके लिए जैन साहित्य के शोध की दिशाओं को निश्चित आकार देना होगा और व्यक्तिगत प्रयत्नों तथा अध्ययन को टीम-वर्क के साथ जोड़ना होगा । इस संबंध में निम्न दिशाओं पर चिंतन किया जा सकता है :-

1. <u>सामग्री-संकलन</u> -

इतिहास, कला, समाज, भूगोल, शिक्षा गणित, राजनीति, विज्ञान आदि से सम्बन्धित सामग्री को जैन साहित्य से संकलित कर उनकी सन्दर्भ-सूची बनानी होगी । यह कार्य विभिन्न स्थानों पर हो सकेगा । किन्तु इस कार्य की योजना और रूपरेखा सम्मिलित रूप से तैयार करनी होगी ।

2. <u>संकलित सामग्री का मूल्यांकन</u> -

जैन साहित्य से जो सामग्री संकलित की जाय उसका विषय-विशेषज्ञों के द्वारा मूल्यांकन किया जाना चाहिए । तब स्पष्ट हो सकेगा कि जैन साहित्य के साक्ष्य कितने मौलिक और प्रामाणिक है ।

3. <u>अप्रकाशित ग्रन्थों का सम्पादन एवं प्रकाशन</u> -

इस कार्य के द्वारा सामग्री-संकलन और उसके मूल्यांकन में मदद मिल सकेगी ।

<u>संदर्भ</u>

1. जैन, ज्योतिप्रसाद , प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएं पृ 3
2. प्रेमी, नाथूराम जैन साहित्य और इतिहास
3. देसाई, पी.बी. जैनिज्म इन साउथ इण्डिया एण्ड सम जैन एपिग्राफ्स
4. जैन, के.सी. जैनिज्म इन राजस्थान
5. सान्डेसरा, बी.जी. जैन आगम साहित्य में गुजरात
6. जैन, ज्योतिप्रसाद द जैन सोर्सेज आफ द हिस्ट्री आफ एन्शियन्ट इण्डिया
7. चौधरी, गुलाबचन्द्र जैन साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग-6
8. " पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज

9. शर्मा, दशरथ — राजस्थान थ्रू द एजेज
10. शास्त्री, परमानन्द — जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह
11. घोष — जैन स्थापत्य एवं कला भाग-1, 3
12. मोतीचन्द्र — जैन मिनिएचर पेंटिंग्ज इन वेस्टर्न इण्डिया
13. जैन, हीरालाल — भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान
14. जैन, जगदीशचन्द्र — जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज
15. शास्त्री, नेमिचन्द्र — हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन
16. जैन, प्रेमसुमन — कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन
17. जैन, देवेन्द्रकुमार — अपभ्रंश भाषा एवं साहित्य
18. जैन, राजाराम — रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन
19. दीक्षित, एस.के. — 13-14 वीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्यों का अध्ययन
20. जैन, जी.सी. — यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन
21. शास्त्री, के.सी. — दक्षिणभारत में जैन धर्म
22. कासलीवाल, के.सी. — जैन ग्रन्थ भण्डाराज इन राजस्थान
23. जोहरापुरकर — भट्टारक सम्प्रदाय

भाषण : परिशिष्ट

जो सोचते हैं कि साहित्य पर भरोसा कम किया जाये और पुरातत्व पर भरोसा अधिक किया जाय, वह उस साहित्य के लिए कहते हैं जो महलों में बैठकर लिखा गया था। और जिसे कुछ राजकीय कवियों ने लिखा था। उनका साहित्य यथार्थवादी नहीं था। उन्होंने सिर्फ राजाओं को खुश करने के लिए इस कपोलकल्पित साहित्य को प्रस्तुत किया था। अतः इस साहित्य का पुरातत्व से मेल नहीं बैठता। लेकिन जो जैन साहित्य लिखा गया है। वह जन-जीवन का साहित्य है। उसमें जन-जीवन का चित्रण करने की कोशिश हर जैनाचार्य ने की है। उसने कल्पना का सहारा केवल वहीं लिया है जहाँ कुछ कवि-रूढ़ियाँ आती हैं। शास्त्रगत रूढ़ियाँ आती हैं। कुछ वर्णन आते हैं। लेकिन जहाँ उसे समाज का चित्रण करना है, जहाँ आदर्श देना है वहाँ वह कल्पित चित्रण नहीं करता। वहाँ आचार्य लोगों का सही चित्रण प्रस्तुत करता है। जिस ग्रन्थपर मैंने काम किया है उस 'कुवलयमाला कहा' में सैकड़ों उल्लेख आते है - समाज और संस्कृति के। मैं केवल कुछ ही उदाहरण रखना चाहता हूँ। उन सैकड़ों उल्लेखों का जब अध्ययन किया तो उनमें से अधिकांश पुरातत्व से प्रमाणित हुए। यहाँ तक देखा गया कि ग्रन्थकार ने जब किसी गहने का वर्णन किया, किसी वस्त्र का वर्णन किया,

जो कहीं न कहीं पहनावे में प्रचलित था । पुरातत्त्व की सामग्री में किसी मूर्ति के अंग पर कहीं न कहीं उस वस्त्र का नाम, उस वस्त्र की आकृतियाँ सब मिलते जाते हैं । ये उदाहरण इस बात को प्रमाणित करते हैं कि जैनाचार्यों के किसी भी साहित्य में जो वर्णन है वह उतना कपोल-कल्पित नहीं है, जितना कि भारत के अन्य साहित्य में प्राप्त वर्णन। इसलिए जैन साहित्य को आधार मानकर समाज का, जन-जीवन का जो चित्रण हुआ है उस आधार पर सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास लिखने का उपयोग न कर सकते हैं ।

जैन साहित्य विशाल है । अतः मैं और दूसरी भाषाओं के साहित्य पर नहीं जाना चाहता । - संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश इन तीन भाषाओं का जो साहित्य है, वह प्राचीन साहित्य है । और उस साहित्य में इतिहास और संस्कृति से सम्बन्धित बहुत अधिक सामग्री हमें प्राप्त है । उस सामग्री का उपयोग आज के समाज के लिए या आज के साहित्य के लिए करना आवश्यक है ।

उदयपुर में जो मेरे सहयोगी मित्र हैं उन सबके सहयोग से कुछ ऐसी बातें हमने प्रारम्भ की हैं कि जिस आधार पर जैन साहित्य का संस्कृति की दृष्टि से मूल्यांकन हो सके । और उस मूल्यांकन की दृष्टि से हम नई सामग्री प्रस्तुत कर सकें । वहीं पर हमने यह काम प्रारम्भ किया है कि प्राकृत और अपभ्रंश में 8 वीं शती से लेकर 14 वीं शती तक के समाज के सम्बन्ध में या इतिहास के संदर्भ में हमें जितने संदर्भ मिलते हैं उन सबका एक इन्डेक्स या संदर्भ-कोष हम तैयार कर रहे हैं । फिलहाल हम प्रकाशित साहित्य से ही सामग्री संकलित कर रहे हैं ।

आपने डा० हीरालाल जैन के ग्रन्थ देखे होंगे । उन्होंने जितने भी ग्रन्थों का संपादन किया, उनकी भूमिकाओं में बराबर यह प्रयत्न किया है कि उस साहित्य में प्राप्त इतिहास और संस्कृति की सूचनाओं को एकत्र कर दिया है । उनका मूल्यांकन भी किया है । इसी तरीके से जैन संस्कृत साहित्य का प्राकृत साहित्य का और अपभ्रंश साहित्य का सांस्कृतिक महत्त्व उन्होंने स्पष्ट किया है । डा० हीरालाल जैन ने 'भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान' नामक पुस्तक में सभी विषयों पर, धर्म पर, इतिहास पर, कला पर और जो दूसरे विषय हैं उन पर अध्ययन प्रस्तुत किया है कि किस तरह से भारतीय संस्कृति के साथ जैन साहित्य और जैन संस्कृति जुड़ी हुई है ।

बम्बई में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान डा० जगदीशचन्द्र जैन हैं । जो प्राकृत का आगम-साहित्य है और उसका व्याख्या-साहित्य है उस सम्पूर्ण व्याख्या-साहित्य और आगम-साहित्य के आधार पर उन्होंने भारतीय समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है । 'जैन आगमों में भारतीय समाज' इस नाम से उनकी यह किताब छपी है । लेकिन उसका समय पाँचवीं - छठी शताब्दी तक आकर समाप्त हो जाता है । छठी शताब्दी के बाद इस जैन समाज का क्या इतिहास रहा, जैन साहित्य में जैन समाज, जैन संस्कृति का क्या विवरण प्राप्त होता है, इसके लिए व्यवस्थित रूप से काम करने की आवश्यकता आज

भी कमी हुई है ।

लेकिन हमारे पास इतना जैन साहित्य है कि इन दो किताबों से या इस तरह की अन्य दो चार पुस्तकों से तो उसका अध्ययन पूरा नहीं होता है । इसलिए यह सोचना आवश्यक है कि कम से कम इस साहित्य को दो दृष्टियों में विभाजित करें - एक समय की दृष्टि से, एक भाषा की दृष्टि से । अलग अलग भाषाओं के साहित्य के, अलग अलग समय. अगर हम इस प्रकार के संदर्भ इकट्ठे करें और उनको इतिहासकारों, संस्कृति के जानकारों और इतिहास लिखने वालों के सामने प्रस्तुत करें तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि जैन साहित्य में इन सन्दर्भों का वे उपयोग न कर सकें । जैन साहित्य में वर्णित जो समाज है, जैन साहित्य में वर्णित जो ऐतिहासिक तथ्य हैं उनका वे उपयोग न कर सकें । हमने फिलहाल ये दो-तीन बातें शुरू की हैं और मैं यह जानता हूँ कि यदि इसमें सहयोग मिले, इसमें सहायता मिले तो यह तमाम काम जल्दी हो सकता है और जैन साहित्य की आधारभूत जो सामग्री है वह समाज के इतिहास लिखने के लिए शीघ्र प्रस्तुत हो सकती है ।

पहली बात तो यह कि सामग्री का संकलन हमारा पहला उद्देश्य हो । जैन साहित्य के किसी भी स्रोत से सामग्री का संकलन करना चाहिये । सामग्री का संकलन होने के बाद उसके जो जानकार हैं, विशेषज्ञ हैं उनके द्वारा मूल्यांकन होना चाहिए । ये दो सुझाव हो मैंने अपने लेख में रखे हैं ।

सामग्री के संकलन का जहाँ तक प्रश्न है उसमें कौन क्या कर सकता है, यह सब हमें बाँटना पड़ेगा । यह सब हमें विभाजित करना पड़ेगा कि इसमें कौन विद्वान क्या क्या उपयोग दे सकते हैं । जैसा कि मैंने आपके सामने कहा था कि हमने उदयपुर में 8 वीं शताब्दी से लेकर 14वीं शताब्दी तक प्राकृत और अपभ्रंश में जो समाज और इतिहास की सामग्री है उसको संकलित करने का प्रयास शुरू किया है, उसका काम प्रारम्भ किया है । हम यह चाहते हैं कि जितने भी प्रकाशित ग्रन्थ हैं और यथासंभव जितने भी ग्रन्थ-भण्डारों में प्राप्त ग्रन्थ हैं उनमें जो इस प्रकार की सामग्री है, वह हम संकलित करना चाहते हैं ।

यह 1-2 व्यक्तियों का काम नहीं है, लेकिन 1-2 व्यक्तियों से शुरू हो सकता है । यदि इसमें सहयोग मिले तो शोध-सहायक इस दिशा में काम कर सकते हैं । उन्हें निर्देश किया जा सकता है । वे सामने बैठकर सभी सामग्री 2-3 साल में प्रस्तुत कर सकते हैं । शोध-सहायक अगर कहीं से प्राप्त होते हैं तो उनके सहयोग से जैन साहित्य की यह सामग्री आधारभूत होकर प्रस्तुत हो सकती है ।

दूसरा काम जो हम यहाँ विभाग में चला रहे हैं और वह और भी महत्त्वपूर्ण है । राजस्थान हस्तलिखित ग्रन्थों की दृष्टि से सबसे बड़ा गढ़ है । डा० कासलीवाल यहाँ बैठे

... जिन्होंने अपना जीवन इसमें लगाया है। लेकिन उनका भी कहना यह है कि 20 साल पहले मैं जिस स्थान पर गया था और जिस स्थान पर जो ग्रन्थ देखा था आज जब उस ... पर जाता हूँ और देखता हूँ कि वह ग्रन्थ वहाँ पर नहीं है। 20 साल पहले उसकी ... बनाई थी। 20 साल पहले जिसका विवरण दिया था वह विवरण उस ग्रन्थ भंडार ... अगर आज जाते हैं तो बहुत से विवरण ऐसे हैं कि वह वहाँ उपलब्ध नहीं हैं। तो यह स्थिति 20 साल में बदल गई। कहीं पर ग्रन्थ-भण्डार अव्यवस्थित हो गया है, कहीं ग्रन्थ चोरी चले गये हैं, वहाँ से कहीं अन्यत्र रख दिये गये हैं - लेकिन वहाँ से प्राप्त नहीं है। ऐसे ग्रन्थ भण्डार सभी तो नहीं हैं, लेकिन कुछ का पता चला है। यह स्थिति 20 साल की है। यदि हम और सोते रहे तो डा0 कासलीवाल ने जैन ग्रन्थ भण्डारों के जो पाँच भाग लिखे हैं, उनमें से कहीं एक भाग की सामग्री शेष न रह जावे। जबकि होना यह चाहिये कि 5 भाग की जगह 20 भाग तैयार हो सकते हैं। हमारे पास पर्याप्त समय नहीं है - साधन नहीं हैं। फिर भी हमने उदयपुर में प्रयत्न करना शुरू कर दिया है कि कम से कम अपभ्रंश के जितने भी हस्तलिखित ग्रन्थ हैं उन ग्रन्थों का कैटलाग, उनके ग्रन्थों की सामग्री, उन ग्रन्थों का इंडेक्स तैयार हो सके तो अपभ्रंश भाषा के साहित्य की जो ... को हम बचा सकते हैं। इस कार्य के लिये विभाग में अ0भा0 जैन सिद्धान्त ... सभा, कोटा की ओर से एक लाख रुपये का अनुदान देकर अपभ्रंश-अनुसंधान योजना ... की गयी है।

यह दो काम हम विभाग में करने की सोचते हैं। एक काम तो 8 वीं से 14 वीं शताब्दी जिसको कि मध्ययुग कहते हैं - उस मध्य युग के इतिहास और संस्कृति के जो संदर्भ जैन साहित्य में हैं उन्हें एकत्र करना। दूसरा काम पाण्डुलिपियों की सुरक्षा का है। जैन ग्रन्थ भण्डारों में अपभ्रंश के, संस्कृत के, प्राकृत के ग्रन्थ अभी मौजूद हैं और सुरक्षित हैं। आज यदि हम इस विज्ञान के युग में उनकी सुरक्षा कर सकते हैं - कापी करा सकते हैं, उनका इंडेक्स कर सकते हैं तो वह हमारी संस्कृति की धरोहर बच सकती है।

जिस प्रकार हस्तलिखित ग्रन्थ इतिहास और संस्कृति के लिये उपयोगी हो सकते हैं उसी प्रकार प्रकाशित पुस्तकों के जो प्रशस्ति लेख हैं उनमें भी कई महत्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध हैं। पाण्डुलिपियों में, जिसे हम पैराग्राफ कहते हैं, हाशिया कहते हैं, उनमें भी हमें ऐसी ... ऐतिहासिक सांस्कृतिक सूचनाएँ मिल जाती हैं, जो दूसरी जगह इतिहास में उपलब्ध नहीं हैं। उन सबका उपयोग करना अभी शेष है।

जैन साहित्य, संस्कृति और कला को मध्यप्रदेश का अवदान

- डा० भागचन्द्र जैन, दमोह

सरस्वती-स्वादु-तदर्थ-वस्तु-निष्यन्द-माना महतां कवीनाम् ।
अलोक-सामान्य-अभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभा - विशेषम् ॥
- आचार्य आनन्द वर्धन

आस्वादयुक्त अर्थतत्त्व को प्रेषित करने वाली महाकवियों - महान् साहित्यकारों की वाणी अलौकिक और स्फुरणशील प्रतिभा के वैशिष्ट्य को व्यक्त करती है । इस वाणी से ही सहृदय रसास्वाद के साथ अनिर्वचनीय तत्त्व को भी प्राप्त करते हैं । मानव का जिज्ञासु मन आत्मानुभूति को प्राप्त करने की चेष्टा करता है, जो साहित्य के माध्यम से व्यक्त होती है। वस्तुतः साहित्यकार जीवन की बिखरी अनुभूतियों को एकत्र कर उन्हें शब्द और अर्थ के माध्यम से कलापूर्ण रूप देकर हृदयावर्जक बनाता है । अनुभूति को अभिव्यक्त करने के हेतु साहित्यकार के लिए न धर्म का बन्धन रहता है और न किसी वर्ग-विशेष का ही । इसीलिए सभी साहित्यकारों ने समानभाव से प्रारंभ से ही जैन कृतियों पर भी साहित्य सर्जन किया है । यह परम्परा निरन्तर अक्षुण्ण रही । फलतः साहित्य के माध्यम से नीति बोध, तत्त्व बोध, सौन्दर्य, कला आदि की अभिव्यंजना भी होती रही ।

जैन साहित्य में जीवन का लक्ष्य शाश्वत सौन्दर्य की उपलब्धि करना है । यह उपलब्धि काम - भोगों के गुणात्मक परिवर्तन द्वारा 'मोक्ष' के रूप में परिवर्तित हो जाती है । अतः जैन साहित्य में आध्यात्मिक पक्ष के साथ जीवन के विविध भोग पक्षों का उद्घाटन सरस और ललित शैली में सम्पन्न हुआ है । जैन साहित्यकार ने सौन्दर्य का चित्रण कर अखिलत्व के क्षणों को कलापूर्ण बनाने का प्रयास किया है । लौकिक और भौतिक सौन्दर्य भोग से जब चरम तृप्ति प्राप्त नहीं होती और उसकी निस्सारता का अनुभव होने लगता है, तब जैन साहित्यकार आध्यात्मिक सौन्दर्य का विश्लेषण करता है । संयम, तप और त्याग का प्रतिपादन उस सौन्दर्य की उपलब्धि में सहायक होता है, जो शाश्वत है - चिरन्तन है । जिसमें वासना या लौकिक जीवन का भोग रंचमात्र भी नहीं है ।

'वर्द्धमान चरित' महाकाव्य के रचयिता महाकवि असग के अनुसार' -

'प्रियेषु यत्प्रेम रसावहत्वं तच्चारुताया हि फलं प्रधानम्' (12.28)

अर्थात् - प्रिय वस्तुओं से जो प्रेम रस उत्पन्न होता है, वह चारुता - रमणीयता का प्रधान फल है । इस प्रकार उक्त महाकवि ने सौन्दर्य की परिभाषा प्रस्तुत करके जीवन के लिए साहित्य को अनिवार्य माना है ।

वस्तुतः सौन्दर्य एक विशेष प्रकार की मनः स्थिति है, जिसका मापन या आकलन इन्द्रिय संवेदन या कल्पना द्वारा होता है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि -

वस्तु और व्यक्ति की चित्त वृत्ति का सम्यक् योग रमण है । जिस वस्तु, व्यक्ति, कला-कृति या व्यापार के साथ चित्त रमण करता है, वह रमणीय हो जाता है, सुन्दर प्रतीत होता है । साहित्य, संस्कृति और कला - ऐसे ही आलंबन हैं जिनसे मनुष्य स्वस्थ सौन्दर्य की अनुभूति करता है ।

वस्तुतः मनुष्य व्युत्पन्नचित्त है । उसमें संवर्धनशीलता, संचरणशीलता, पारदर्शिता, रहस्य विवेक आदि गुण विशेष रूप से प्राप्त होते हैं। इन्हीं के कारण वह सदैव अभ्युदयशील है । अभ्युदय के पथ पर निरन्तर प्रगति करते रहना मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन की सर्व प्रथम प्रवृत्ति है । और फिर मनुष्य की आवश्यकताओं के क्षेत्र भी तो अनन्त हैं । इसकी आवश्यकताएँ आधिभौतिक के अतिरिक्त आध्यात्मिक, रसात्मक, बौद्धिक और सामाजिक भी हैं । मानव ने अपनी (आधिभौतिक को छोड़कर) अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आत्मा और परमात्मा का अनुभव किया है, शिल्प और कला की परख की है, विज्ञान का अनुशीलन किया है तथा समाज की सुव्यवस्था के लिए शतशः योजनाएँ क्रियान्वित की हैं । निश्चित ही इन सभी क्षेत्रों में प्रगति का पथ अनन्त है और अनन्त काल तक मनुष्य अपनी सांस्कृतिक साधना में जुटा रहेगा । इस साधना में वह अपनी बुद्धि, वाणी, सौन्दर्य भावना और रसानुभूति को निरन्तर उच्चतर स्तर पर प्रतिष्ठित करके व्यक्तिगत एवं सामाजिक सुख - सौरभ की सृष्टि करता है और करता रहेगा । मनुष्य की यही प्रवृत्ति उसकी 'संस्कृति' है ।

मानव में तीन गुण विशेष रूप से सन्निविष्ट हैं - (1) जिज्ञासा, (2) विवेक और (3) सौन्दर्य की उपासना । साहित्य, संस्कृति और कला के माध्यम से उसके इन तीनों गुणों का भलीभाँति निदर्शन होता है । जैन साहित्य, संस्कृति और कला का चरम लक्ष्य जीवन का उत्कर्ष है । इन तीनों के माध्यम से जीवन के विधान पक्ष को स्पष्ट किया गया है । जैन संस्कृति, कला और साहित्य की रचना इसी ध्येय से हुई है कि रस और भावों के माध्यम से 'जीवन कला' प्राप्त हो सकें ।

जैन साहित्य, संस्कृति और कला को मध्यप्रदेश में अभूतपूर्व समृद्धि और सम्पन्नता प्राप्त हुई है । सभी वर्गों एवं धर्मों के आचार्यों, विद्वानों, कलाकारों और अन्य व्यक्तियों ने समानभाव से इस समृद्धि और सम्पन्नता में अपना योगदान किया है । जैन साहित्य, संस्कृति और कला को मध्यप्रदेश के अवदान का यह क्रम सुदूर प्राचीन काल से अनवरत जारी रहा, किन्तु जिनके साहित्यिक उल्लेख प्राप्त होते हैं, जो रचनाएँ, कृतियाँ या कलाकृतियाँ उपलब्ध हैं, उनके आधार पर -

अ- जैन संस्कृति और कला के क्षेत्र में अवदान का प्राचीनतम उल्लेख - आव. चूर्णि, निशीथ चूर्णि और वसुदेव हिण्डी आदि प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है, जिसमें

म. प्र. की जैन साहित्यिक परम्परा के उत्स बहुत प्राचीन हैं । उनका सूत्रपात मौर्ययुग से होता है और वे उत्तरोत्तर विकसित होते हुए विभिन्न युगों में संस्कृत - प्राकृत - अपभ्रंश तथा हिन्दी प्रभृति भाषाओं के माध्यम से पल्लवित और पुष्पित दृष्टिगोचर होते हैं ।

यहाँ एक तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सम्पूर्ण जैन आगम द्वादश अंगों में निबद्ध है । इनमें से बारहवें अंग 'दृष्टिवाद' में ऐसे 14 पूर्वों का उल्लेख है, जिनमें महावीर स्वामी से पूर्व की अनेक विचार - धाराओं, मत - मतान्तरों तथा ज्ञान - विज्ञान आदि का संकलन उनके प्रमुख शिष्य गौतम द्वारा किया गया है । इन सभी चौदह पूर्वों के अन्तिम ज्ञाता श्रुत-केवली भद्रबाहु थे । मध्यप्रदेश के साहित्य और संस्कृति के लिए यह अत्यंत गौरवान्वित करने वाला पक्ष है कि - ये, अन्तिम श्रुत-केवली भद्रबाहु मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के काल (ई.पू. 322 से 298 ई.पू.) में उज्जैन में हुए । डा. राधाकुमुद मुकर्जी, विंसेंट स्मिथ प्रभृति सुप्रसिद्ध इतिहासकारों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है । आचार्य भद्रबाहु ने प्राचीनतम उपलब्ध जैन आगम ग्रन्थ 'आचारांग सूत्र' पर निर्युक्ति (भाष्य) लिखा है । निशीथ चूर्णि, सूरिय पन्नत्ति (सूर्य प्रज्ञप्ति) आदि उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं । सम्राट चन्द्रगुप्त आचार्य भद्रबाहु से बहुत प्रभावित थे । अतः उन्होंने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था । उत्तर भारत में बारह वर्ष का घोर दुर्भिक्ष पड़ने पर आचार्य भद्रबाहु जैन संघ को लेकर दक्षिण भारत में गये तथा मैसूर प्रदेश के 'श्रवण - बेल - गोल' में उन्होंने जैन केन्द्र स्थापित किया । इसी समय सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अपना राज्य - वैभव त्याग कर उनसे जैन दीक्षा प्राप्त की थी । और उन्होंने भी श्रवणबेलगोला की उस पहाड़ी पर तपस्या की, जो उनके नाम से ही 'चन्द्रगिरि' कहलाती है । इसी पहाड़ी पर इन्हीं के नाम से 'चन्द्रगुप्त वसदि' नामक कलापूर्ण प्राचीन जैन मन्दिर भी है, जो नितांत भव्य है ।

महनीय आचार्य भद्रबाहु के उपरान्त जैन साहित्यिक परम्परा के मध्यप्रदेशीय सूत्र में ज्ञात प्रमुख - प्रतिनिधि रचनाकार निम्न प्रकार हैं .-

(1)	आचार्य ऋषिपुत्र	(400 ई.)
(2)	आचार्य सिद्धसेन दिवाकर	(500 ई.)
(3)	आचार्य मानतुंग	(600 ई.)
(4)	'' जिनसेन (प्रथम)	(800 ई.)
(5)	'' उग्रादित्याचार्य	(800 ई.)
(6)	'' हरिषेण	(1000 ई.)
(7)	'' अमितगति	(1000 ई.)
(8)	'' महाकवि धनपाल	(1100 ई.)
(9)	'' शोभन मुनि	(1100 ई.)
(10)	नेमिचन्द्र मुनि	(1100 ई.)

-4-

(11)	आचार्य माणिक्यनन्दि	(1100 ई.)
(12)	आचार्य प्रभाचन्द्र	(1100 ई.)
(13)	आचार्य शुभचन्द्र	(1100 ई.)
(14)	आचार्य नयनन्दि	(1100 ई.)
(15)	वीर कवि	(1100 ई.)
(16)	वसुनन्दि (प्रथम)	(1200 ई.)
(17)	ब्रह्मदेव	(1200 ई.)
(18)	मुनि कनकामर	(1200 ई.)
(19)	पं. आशाधर	(1200 ई.)
(20)	गुणभद्र (द्वितीय)	(12वीं - 13वीं शती)
(21)	मुनि दामोदर	(1300 ई.)
(22)	भट्टारक अभिनव धर्मभूषण	(1300 ई.)
(23)	भट्टारक वर्द्धमान (प्रथम)	(1400 ई.)
(24)	महाकवि रइधू	(1500 ई.)
(25)	लक्ष्मणदेव	(1500 ई.)
(26)	पद्मनाभ कायस्थ	(1500 ई.)
(27)	भट्टारक पद्मनन्दि	(1500 ई.)
(28)	आचार्य शुभचन्द्र	(1500 ई.)
(29)	भट्टारक यशः कीर्ति	(1500 ई.)
(30)	सन्त तारण स्वामी	(1500 ई.)
(31)	भट्टारक श्रुतकीर्ति	(1600 ई.)
(32)	भट्टारक ब्रह्मसेन	(1800 ई.)
(33)	आगमणि	(1800 ई.)
(34)	पं. दौलतराम	(1900 ई.)
(35)	पं. भागचन्द्र	(20 वीं शती का प्रथम भाग) आदि

उक्त प्रतिनिधि साहित्य-साधकों के साथ इस बीसवीं शती में भी म.प्र. में सहस्त्रों साहित्यकारों ने जैन साहित्य की श्री-वृद्धि की है : इनमें से कतिपय उल्लेखनीय नाम इस प्रकार हैं :-

(1) (क) श्री गणेश प्रसाद वर्णी

(2) (ख) श्री सहजानन्द वर्णी

(3) आचार्य विद्यासागर जी

(4) (स्व.) डा. हीरालाल जैन

(5) (स्व.) पं. नाथूराम प्रेमी

(6) (स्व.) पं. परमानन्द शास्त्री

(7) पं. (डा.) पन्नालाल साहित्याचार्य

(8) डा. (पं.) दरबारीलाल कोठिया न्यायाचार्य, आदि ।

मध्य प्रदेश के जैन साहित्य, संस्कृति और कला के परिचय देने वाले अथवा अध्ययन करने वाले फुट-पुट प्रयत्न अवश्य हुए हैं, किन्तु एक तो वे बहुत सीमित और नगण्य हैं, इनमें नाम मात्र की ही जानकारी है - कुछ गिनी चुनी कृतियों के नाम व थोड़ा बहुत परिचय ही इधर-उधर दिया गया है । और दूसरे उनके वैज्ञानिक रीति से अध्ययन की ओर विद्वानों का ध्यान अभी तक प्रायः नहीं गया है ।

अतएव अपनी पी.एच.डी. उपाधि के अनुसन्धान कार्य के समय और उसके उपरान्त विगत बारह वर्षों के अपने अध्ययन-अनुशीलन के मध्य भी मैंने निरन्तर ऐसा अनुभव किया है कि - मध्यप्रदेश के जैन साहित्य, संस्कृति और कला ने संवेदनाओं और अन्तर्वृत्तियों का पूर्ण विस्तार किया है । अतएव यहाँ की कृतियाँ और निर्मितियाँ मूल्योद्भावन में अधिक सक्षम हैं । यह उद्भावन पक्ष जीवन रुचि का परिष्कारक और सत्प्रेरणाओं का स्रोत है । यहाँ के सभी जैन साहित्यकार, साधक और शिल्पी वैयक्तिक और वर्गीय परिधियों से ऊपर उठकर व्यापक क्षितिज के आलोक में सामान्य मानवता की भावभूमियों को प्रतिष्ठा करते हैं । मध्यप्रदेशीय जैन साहित्य, संस्कृति और कला में अपेक्षित सभी वैशिष्ट्य तथा औदात्त्य के बावजूद इनका सार्वजनीन रूप में अब तक सामस्त्येन अध्ययन,-मूल्यांकन नहीं हो सका है और ये उपेक्षित से हैं । जिनकी ओर अविलम्ब ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है । तभी जैन साहित्य, संस्कृति और कला भारतीय राष्ट्रीय भावना की ओर भी ऊर्जस्वित् करने और निखिल विश्व के कल्याण की दिशा में अपना विशिष्ट और महत्वपूर्ण योग देने में समर्थ हो सकेगी । समष्टि के अभ्युत्थान में व्यष्टि का प्रदाय कितना उपयोगी और अनिंद्य हो सकता है, इस तथ्य को सम्यक् रूपेण प्रमाणित किया जा सकेगा । जैन साहित्य, संस्कृति और कला - व्यक्ति एवं सम्प्रदाय तक ही सीमित नहीं है। सम्पूर्ण मानवता का निःश्रेयस् उसका लक्ष्य है और वह आस्था तथा विश्वास के चार. चरणों से इस दारु पथ को पार करती हुई अपने गन्तव्य तक पहुँचने के लिए कृतसंकल्प है ।

इसके क्रियान्वयन की दृष्टि से प्राकृत जैन विद्यापीठ वैशाली, उदयपुर विश्वविद्यालय आदि भारत के उन विभिन्न विश्वविद्यालयों को सामान्य रूप से प्रेरित करना होगा जहाँ जैन साहित्य, संस्कृति और कला का अध्ययन-अनुशीलन होता है । विशेष

रूप से मध्यप्रदेश के विश्वविद्यालयों के साहित्य, भाषा, दर्शन, इतिहास और पुरातत्व विभागों से सम्पर्कित होकर उन्हें इस दिशा में प्रोत्साहित करना होगा। अध्ययन और शोध की दिशाओं को समृद्ध करने की दृष्टि से जैन - पीठों की स्थापना होना चाहिए। ये जैन पीठ उन स्थानों पर स्थापित किये जायें जहाँ जैन पाण्डुलिपियों, मूर्तियों और पुरावशेषों की प्राप्ति की क्रियात्मक संभावनाएँ हों ताकि उनका सम्यक् शोध, परीक्षण और परिशीलन वैज्ञानिक पद्धति से किया जा सके। इस दिशा में हम लोगों ने सागर विश्वविद्यालय में 'डा. हीरालालजैन चेयर' की संस्थापना हेतु आवश्यक प्रयत्न गत मई 1982 से प्रारम्भ किये हैं। हमें विश्वास है कि इसकी स्थापना होने पर जैन साहित्य, संस्कृति, कला तथा अन्य जैन विधाओं के अध्ययन-अनुशीलन के मार्ग प्रशस्त हो उठेंगे।

इसी दृष्टि से हम लोगों ने सागर वि. वि. में प्राकृत तथा जैन विद्याएं का पाठ्यक्रम एम.ए. कक्षाओं में स्वीकृत भी किया है। अन्यत्र भी ऐसा ही होना चाहिए।

साम्प्रतिक परिवेश में, मेरी दृष्टि में निम्नलिखित विद्वान और अध्येता अपने कृतित्व और चिन्तन से उक्त विद्या को अनुप्राणित कर सकते हैं :-

सर्वश्री प्रो० प्रफुल्लकुमार जी मोदी, प्रो० कृष्णदत्त जी बाजपेयी, डा० रामाश्रय अवस्थी, लखनऊ, श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, डा. रामजी उपाध्याय, वाराणसी, डा. विद्याधर जोहरापुरकर, डा. गोकुलचन्द्र जैन, डा. नेमिचन्द्र जी जैन, इन्दौर, डा. आर.एन. मिश्रा ग्वालियर, डा. हरीन्द्रभूषण जैन, डा. विमलप्रकाश जैन, डा. वीरेन्द्रकुमार नायक, सागर, डा. भागचन्द्र जैन भास्कर, नागपुर, श्रीमती राजकुमारी राठौर, डा. श्रीमती रमा जैन, श्रीमती प्रो. आशा मलैया, डा. मारुतिनन्दन तिवारी, वाराणसी, डा. राधावल्लभ त्रिपाठी, सागर, प्रो० चन्द्रभानुधर द्विवेदी, दमोह, पं. गोपीलाल अमर, दिल्ली, डा. गुलाबचन्द्र जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, डा. रतनचन्द्र जैन, भोपाल, प्रो. जलज रतलाम, डा. शीतलचन्द्र, वाराणसी, डा. कान्तिकुमार जैन, सागर, डा. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, डा. अर्जुन मिश्र आदि के साथ अग्र पंक्ति के उल्लेखनीय मनीषी मान्यवर भट्टारक जी मूडबिद्री, डा. दरबारीलाल कोठिया, डा. पं. पन्नालालजी प्रभृति विद्वानों से हमें बड़ी अपेक्षाएँ हैं और हम परम आशा की दृष्टि से उक्त सभी की ओर देखते हैं।

जैन पुरातत्व की उपलब्धियाँ और अपेक्षाएँ

- गोपीलाल अमर, भारतीय ज्ञानपीठ

पुरातत्व से मेरा मतलब प्राचीन कला से है - कम से कम आज से 100 वर्ष पुरानी। मूर्तियाँ और अन्य कलाकृतियाँ, मंदिरों, गुफाओं आदि और प्राचीन हस्तलिपियों के अलावा, भित्तिचित्रों और लघुचित्रों यानी हस्तलिखित ग्रन्थों में जो चित्र हैं उनसे मेरा मतलब है। इस विषय में जो काम अब तक हुआ है मैं उसके लेखे-जोखे में नहीं जाना चाहता। सुबह डा कैलाशचन्द जैन को सुना था। मैं आपका ध्यान एक-दो बातों की ओर आकर्षित करूँ।

मैं आपके सामने चन्द नाम ले रहा हूँ जिनका काम या तो स्वतंत्र ग्रन्थों के रूप में या लेखों के रूप में हुआ है और जो काम का है, बड़े ही महत्व का है। श्री सी0वी0 रैआई, श्री कृन्दाक्न भट्टाचार्य, डा कस्तूरचन्द कासलीवाल, श्री बालचन्द्र जैन, जबलपुर डा हीरालाल जैन, प्रो0 कृष्णदत्त वाजपेयी, डा के.एन.शर्मा, श्रीमती सरयू दोशी, डा भागचन्द्र जैन, नीरज जैन आदि।

वर्तमान योजना इस सम्बन्ध में क्या है - वो मैं आपको ज्यादा विस्तार से बताना चाहूँगा। भा0 दि0 जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी इसके लिए बहुत काम कर रही है। इसने जैन तीर्थों के चार भाग प्रकाशित किये हैं। उनमें पुरातत्व पर भी खासा प्रकाश पड़ता है। भारतीय ज्ञानपीठ का काम आप सबके सामने कई वर्ष पहले आया - 'जैन कला और स्थापत्य' तीन जिल्दों वाले ग्रन्थ के रूप में। तकरीबन उसके साथ ही अहमदाबाद से एक ऐसी ही किताब आयी - 'पर्सपैक्टिव्ज आफ जैन आर्ट'। अगरचे, लेखक दोनों किताबों के वही हैं, थोड़ी बहुत उसमें पुनरावृत्ति भी हुई है फिर भी वह पुस्तक बहुत अच्छी मानी जाती है।

इधर टाइम्स आफ इंडिया ने, बुनियादी तौर पर भारतीय ज्ञानपीठ ने, एक प्रोजेक्ट हाथ में लिया है - 'पैनोरमा आफ जैन आर्ट' के रूप में। यह 6 जिल्दों में आयोजित एक विशाल योजना है। एक जिल्द बड़े आकार की 400 या पौने चार सौ पृष्ठों की होगी और उसमें 500 चित्र होंगे, कम से कम जिसमें 150, 200 के बीच चित्र रंगीन होंगे। ये तीनों योजनाएँ तीर्थक्षेत्र कमेटी की, पैनोरमा आफ जैन आर्ट की और 'आर्काइव्ज़ ऑफ द फोटोग्राफ्स ऑफ जैन एंटीक्विटीज़' की। यह एक इत्तिफाक है कि ये तीनों योजनाएँ एक ही व्यक्ति श्रीमान् साहूजी की देखरेख में चल रही हैं।

कुछ छोटे से - कुछ थोड़े से सुझाव हैं - सुझाव साहित्यकारों से है जो थोड़ा

इतिहास में कम हस्तक्षेप करें तो अच्छा है । एक छोटी सी मिसाल इसके लिए देता हूं । एक पुस्तक मेरे देखने में आयी है अगरचे वह छपी नहीं है । खारवेल के सम्बन्ध में है । उसमें खारवेल की जो मूर्ति, वह मगध से वापस लाया था, उसकी ऊंचाई 24 फुट की लिखी है । किस आधार पर ? इस तरह की चीजें सोचकर लिखी जानी चाहिए ।

दूसरी बात जीर्णोद्धार के सम्बन्ध में है । प्राचीन मन्दिरों के जीर्णोद्धार में बहुत अधिक सावधानी बरतने की है । रिपेयर्स के लिए एक खास तरह का लिक्युड होता है उसी से कराना चाहिए । उन्हें इस तरह से रिपेयर नहीं करना चाहिए । पुरातत्त्वज्ञों की सलाह जरूर ले लेनी चाहिए । मुझे लगता है कि अब समाप्त कर देना चाहिए ताकि कुछ अगर प्रश्न हों तो मैं जवाब दे सकूं ।

टिप्पणी : श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन द्वारा : श्री अमर ने जिस पुस्तक का उल्लेख किया है, वह खारवेल के सम्बन्ध में एक उपन्यास है जिसमें इतिहास के चौखटे में कल्पना के रंग भरे हैं । खारवेल के कृतित्व को तत्कालीन संदर्भ में उभारने के लिए लेखक ने इतिहास और संस्कृति की पृष्ठभूमि में जनमानस पर जैन धर्म के प्रभाव को अंकित किया है ।

जैन पुरातत्व कला और इतिहास

- सत्यंधरकुमार सेठी, उज्जैन

भारतवर्ष में अनेक धर्म हैं और उनकी विभिन्न संस्कृतियाँ है । प्रत्येक संस्कृति का अपना-अपना इतिहास है। हर संस्कृति का जीवन उसका साहित्य और इतिहास है । क्योंकि इतिहास तथ्यों का ही संकलन नहीं बन जाता लेकिन उससे विभिन्न परिस्थितियों में होने वाले उत्थान पतन विकास, जय और पराजय का आकलन भी होता है । इन भारतीय धर्मों की संस्कृतियों में जैन बौद्ध और वैदिक संस्कृति महत्वपूर्ण मानी जाती है और इन तीनों ही संस्कृतियों के महान् योगदान से भारतवर्ष का इतिहास गौरवपूर्ण माना जाता है ।

उपरोक्त तीनों संस्कृतियों में और धर्मों में जैन धर्म और उसकी संस्कृति भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है । जिसके महान साहित्य, स्थापत्य और मूर्ति कला ने भारतवर्ष का मस्तक ऊँचा किया है। न केवल भारतीय विद्वानों ने, बल्कि विदेशी विद्वानों ने भी यह स्वीकार किया है कि कला और स्थापत्य के विकास में सर्वोपरि स्थान जैन समाज का है जिसने मूर्ति कला को और स्थापत्य को जीवित किया और इतिहास के पन्नों में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया -

आज आप जैसे उद्भट विद्वानों श्रीमंतों और कार्यकर्ताओं के बीच यह कहते हुए मुझे दु:ख होता है कि इस विशाल देश में इतना स्थापत्य और कलापूर्ण वैभव होते हुए भी उसकी खोज की तरफ हमारे महान् प्रमाद के कारण न विदेशी विद्वानों का ध्यान गया और न भारतीय विद्वानों का और न हमारा । हमने हमारे इतिहास को उपेक्षित ही नहीं किया लेकिन यह कहकर ठुकराया है कि यह तो खंडित है इसलिए यह पूज्य न होने के कारण से ग्रहणीय भी नहीं है । इसका परिणाम हमें भोगना पड़ा । और इतिहास के पन्नों में हम सदियों तक पिछड़ गये । जैन इतिहास अंधकार में पड़ गया और जैन इतिहास के संबंध में व जैन धर्म की प्राचीनता के संबंध में विभिन्न प्रकार की भ्रांत विचारधारायें भारतीय विद्वानों की बन गई ।

कलकत्ता में सं 1734 में रायल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की गई थी । जिसका प्रमुख उद्देश्य था भारतीय धर्मों के प्राचीन इतिहासों का अनुसंधान करना और उसको प्रकाश में लाना । इस सोसायटी के महान् विद्वानों ने भारतीय धर्मों के इतिहास के अनेक अंगों पर अनुसंधान किया लेकिन हमारी संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण वे जैन साहित्य और जैन इतिहास का समुचित रूप से अनुसंधान नहीं कर सके । हाँ वैदिक साहित्य और बौद्ध साहित्य पर वे काफी अनुसंधान कर सके । इससे विश्व की महान्

-2-

अपना संस्कृति वंचित रही और भारतवर्ष का हजारों वर्षों का इतिहास भी सर्वांगीण नहीं बन सका ।

मैं जर्मनी के महा विद्वान् हर्मन याकोबी आदि कुछ विद्वानों के प्रति कृतज्ञता अवश्य प्रकट करूँगा जिनका ध्यान जैन इतिहास की तरफ गया और उन्होंने साहस के साथ जैन इतिहास और साहित्य को प्रकाश में लाने का प्रयास किया - इसके बाद भारत सरकार का इन ऐतिहासिक तथ्यों की तरफ ध्यान गया । उसने मथुरा के कंकाली टीलो की खुदाई की । जिसमें जैन इतिहास से संबंधित ईसा पूर्व की जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ, स्तूपों और आयागपट्टों की महान् उपलब्धि हुई, जिसने इतिहास के विद्वानों के विचारों में महान् परिवर्तन किया और उन्होंने स्वीकार किया कि इतिहास की वर्तमान उपलब्ध सामग्री से यह सामग्री अत्यंत महत्वपूर्ण है । और आज हम स्वीकार करते हैं कि जैनधर्म भारतीय धर्मों में अति प्राचीन धर्म है । वह किसी भी धर्म की शाखा नहीं है । इसका इतिहास मौलिक है । और वह स्वतंत्र है । जैनों के चैत्य और स्तूप बौद्ध चैत्यों और स्तूपों से बिल्कुल भिन्न है और वे इनसे प्राचीन हैं । इसके बाद हमारा इतिहास और आगे बढ़ा जिसका संबंध है मोहनजोदड़ो और सिंधु नदी की उपत्यकाओं की खुदाई से प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री से लेकिन यह सब कुछ देन हमारी नहीं । भारत सरकार व इतिहास के विद्वानों की है । हम तो आज भी मौन हैं । और भारतवर्ष के कोने-कोने में बिखरी इस अमूल्य संपदा को बटोरने का हमारा कोई प्रयास नहीं है । आज भारतवर्ष में हमारे हजारों मन्दिर और लाखों प्रतिमायें हैं । लेकिन इनसे हमने अपना कोई इतिहास नहीं संजोया । हमने इनको एकत्रित किया । इनकी पूजायें की लेकिन इनको जीवित रखने का कोई प्रयास नहीं किया । पत्थर का एक टुकड़ा भी हमारे इतिहास में महान् परिवर्तन कर डालता है । अतः इस महान अवसर पर आत्मनिरीक्षण करें । और निर्णय लें इन प्राचीन कलापूर्ण वैभव का संरक्षण करने का जो जमीन पर पड़ा-पड़ा अपमानित होकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से हमारी तरफ देख रहा है ।

मैं मध्यप्रदेश का रहने वाला हूँ । इस प्रदेश का इतिहास गौरवपूर्ण रहा है और आज भी है । इस प्रदेश के कण-कण में जैन संस्कृति इतनी बिखरी पड़ी है जिसके संबंध में कहने के लिये मेरे पास शब्द नहीं है । मध्यप्रदेश में चौथी शताब्दी से लेकर 15वीं शताब्दी के अवशेष कितने ही स्थानों पर असुरक्षित अवस्था में ऐसे बिखरे पड़े हैं जिनको लोगों ने पाखानों और मकानों की दिवारों तक में लगा डाले हैं । आप जाइये सैलाना के पास मंथावल पचोर, भंवरासा बदनावर-गौदड महोदा तालौद - जामनेर सुन्दरसी, पालीगाँव, इन्दावार, ईशागढ़ आदि स्थानों पर जहाँ आपके स्थापत्य

की आज भी दुर्दशा है । इस स्थिति को मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा और उनके विशाल मस्तकों और पादपीठों को देखकर मैं रो पड़ा । और मैंने निर्णय लिया उज्जैन में इनका संग्रह करने का । आज उज्जैन में एक समृद्ध संग्रहालय है जिसमें करीब 551 प्राचीन कलापूर्ण मूर्तियों के अवशेष और कलाकृतियाँ हैं जिनको देखकर बड़े-बड़े इतिहास के विद्वानों ने आश्चर्य प्रकट किया है और अपनी अमूल्य सम्मतियाँ प्रदान की हैं । लेकिन यह संग्रहालय परिपूर्ण नहीं है । मैं चाहता हूँ समाज इसकी तरफ ध्यान दे । केन्द्रीय सरकार ने भी इस संग्रहालय को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है - मध्यप्रदेश में जैनों का गुप्तकाल, कुषाणकाल और परमारकाल एक स्वर्णिम काल रहा है । इस काल में ही यह वैभव बढ़ा है और विकास को प्राप्त हुआ है। इस प्रदेश में भद्रबाहु, चन्द्रगुप्त, सम्प्रति, सिद्धसेन दिवाकर, जिनसेन, धनंजय सुकमाल और श्रीपाल जैसे महान् संतों ने जन्म लिया है, उनके पैरों से यह सिंचित पुण्यभूमि है । बदनावर यह प्राचीन वर्द्धमानपुर है जिसमें शांतिनाथ चैत्यालय में बैठकर जिनसेन ने हरिवंशपुराण की रचना की है । उस शांतिनाथ चैत्यालय की प्रतिमा आज मेरे संग्रहालय में मौजूद है । जिनसेन का सही स्थान यही है । मैंने आप सबका महत्त्वपूर्ण समय लिया है इसके लिए क्षमा । मैं यह भी बतला देता हूँ कि उज्जैन न केवल ऐतिहासिक स्थान है बल्कि निर्वाण भूमि भी है । यहाँ से अभयघोष मुनिराज जैसे संतों ने निर्वाण प्राप्त किया है । जिस पर मैं अलग पत्रों में प्रकाश डाल रहा हूँ ।

भाषण : परिशिष्ट

मैं एक निवेदन करना चाहता हूँ क्योंकि मैंने हमेशा सच्चा काम किया है । और मैं चाहता हूँ कि समाज में कुछ काम हो । जैन साहित्य की क्या स्थिति है, इतिहास की क्या स्थिति है और पुरातत्व के सम्बन्ध में कितना काम हो रहा है, रिसर्च हो रही है, यह आपलोगों को अच्छी तरह से मालूम है । मैं तो इतना बतलादेना चाहता हूँ कि मध्यप्रदेश में और उज्जैन के आसपास 40 मील के क्षेत्र में हमारे भग्नावशेष, पुरातत्व और मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं जिन्हें देखकर हमारी आँखों में आँसू आ जाते हैं । उज्जैन के पास एक कदार है और उसमें आप जिस पत्थर को भी उठावें जैन मूर्ति मिलती है और 1500 मूर्तियाँ होंगी । गंगावल की स्थिति क्या है ? लोगों ने उन मूर्तियों को उठाकर पाखाने में लगा लिया है और किन्हीं पेशाबघर के अन्दर लगा लिया और किन्हीं ने मकानों के अन्दर पत्थर की तरह लगा लिया है । इसी तरह एक अन्य स्थल है जिसके अन्दर करीब तीन हजार मूर्तियाँ हैं । अगर वहाँ जाकर देखें तो आँखों में आँसू आ जायेंगे कि हमारे पुरातत्व की क्या स्थिति है, हमारी धरोहर की क्या स्थिति है ।

हमारे आचार्य विराजमान हैं, साधु-सन्त, विद्वान और मनीषी हैं उनसे निवेदन करता हूँ कि वे सब अपनी शक्ति दिगम्बर जैन समाज का इतिहास संजोने में लगायें। हम लोगों ने आज तक इस तरफ ध्यान नहीं दिया। पुरानी खंडित मूर्तियों को पत्थर कह - कर अपमानित किया, ठुकराया है। अगर मूर्तियाँ खंडित हो गईं तो उन्हें हमने पानी में बहाया, नदियों में बहाया। उसका परिणाम जैन समाज को देखना पड़ा। भारतीय इतिहास की दृष्टि के अन्दर हम दूषित हो गये। नास्तिक की तरह भावनाएँ जैनधर्म के सम्बन्ध में मिली हैं। स्व0 साहू शान्तिप्रसादजी ने इस युग के अन्दर मूर्तियों के संरक्षण के सम्बन्ध में काफी ज्यादा ध्यान दिया। साहू साहब का बहुत-बहुत धन्यवाद। मेरा यहाँ आने का इरादा नहीं था लेकिन देवकुमारसिंह कासलीवाल ने कहा था आपको जाना है। आपका संग्रहालय भी है। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई ने हुक्म दिया है और निर्णय दिया है कि उत्तर-दक्षिण या मध्यप्रदेश के अन्दर सब मिलकर एक पुरातत्व संग्रहालय कायम करें। इसमें केवल मूर्तियों का संरक्षण है।

मैं यह चाहता हूँ कि उज्जैन के आसपास के 40 मील के एरिया में इतना पुरातत्व है कि मूर्तियाँ हमारी तरफ देख रही हैं कि कम से कम आकर तो देखो कि किस तरह से अपमानित हो रही हैं। इसलिए साहूजी साहब से निवेदन करना चाहता हूँ, जयचन्दजी लोहाड़े से निवेदन करना चाहता हूँ और सतना के नीरजजी से निवेदन है कि जैनकला, पुरातत्व और इतिहास का संरक्षण किया जाय। मैं हर तरह से जैन इतिहास, और मूर्तियों के संरक्षण के लिए तैयार हूँ।

महाराष्ट्र का जैन इतिहास और पुरातत्व

- डा भागचन्द्र भास्कर, नागपुर

जैन संस्कृति उत्तर भारत में प्रारंभ हुई और दक्षिण भारत में उसका सर्वांगीण विकास हुआ । इसलिए समग्र जैन संस्कृति के इतिहास और पुरातत्व की दृष्टि से दक्षिण भारत का योगदान अविस्मरणीय है । महाराष्ट्र दक्षिण भारत का प्रवेश द्वार है । जैन वाङ्मय और संस्कृति के विविध आन्दोलनों का प्रवेश दक्षिण भारत में इसी द्वार से हुआ है । संस्कृति के विकास की लकीरें भी इस क्षेत्र में स्पष्ट दिखाई देती हैं ।

दक्षिण भारत में जैनधर्म के चरण कब पहुंचे यह निश्चित बताना संभव नहीं है । पर जैन परम्परा यह तो प्रमाणित करती ही है कि विद्याधर दक्षिण के निवासी थे और वे भी ऋषभदेव के अनुयायी थे । तीर्थंकर अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ महावीर आदि महापुरुषों ने संभवतः दक्षिण की यात्रा की थी । मर्यादा पुरुषोत्तम राम, हनुमान, बाली, रावण आदि पौराणिक महामानव जैनधर्म के पालने वाले थे ।

आचार्य भद्रबाहु अपने दस हजार शिष्यों के साथ दक्षिण में गये और कटवप्र नामक पर्वत पर तपस्या की । इसी को आज 'श्रवण बेलगोल' कहा जाता है । इतने अधिक शिष्यों के साथ भद्रबाहु की दक्षिणयात्रा करने का स्पष्ट अर्थ यह है कि उस समय महाराष्ट्र से लेकर समूचे दक्षिण में जैनधर्म बहुत लोकप्रिय रहा होगा । चन्द्रगुप्त ने यहीं दीक्षा ली और सम्प्रति ने उज्जैन से दक्षिण तक जैनधर्म का प्रचार किया । खारवेल ने भोजक और राष्ट्रकूटों को पराजित किया और दक्षिण में जैनधर्म का प्रसार किया । लोहाचार्य कुन्दकुन्द, शिवार्य, विमलसूरि, पुष्पदन्त, भूतबली, कुमार कार्तिकेय आदि प्रसिद्ध जैनाचार्य दक्षिण के ही थे । मूलसंघ, काष्ठसंघ, द्राविडसंघ, यापनीयसंघ आदि जैन संघ भी दक्षिण की ही देन हैं । भट्टारक प्रथा भी दक्षिण की ही उपज है जिसका महाराष्ट्र से बहुत सम्बन्ध रहा है । आंध्र-सातवाहन, क्षत्रप, नाग, चोल, पाण्ड्य, पल्लव, कदम्ब, राष्ट्रकूट, चालुक्य, गंग आदि राजवंशों ने जैनधर्म को अच्छा प्रश्रय दिया ।

दक्षिण भारत के संदर्भ में जैन इतिहास और साहित्य तथा संस्कृति के ये उल्लेख महाराष्ट्र में जैनधर्म के प्रचार-प्रसार की बात स्वतः कह उठते हैं । प्रथम शती में वेण्णातट (विदर्भ-चन्द्रपुर) पर अर्हद्बली का पंच महामुनि सम्मेलन, सातवाहनकाल में जैन केन्द्र प्रतिष्ठान (पैठण), कालकाचार्य का शालिवाहन से संपर्क आदि ऐतिहासिक घटनाएँ भी महाराष्ट्र को जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र सिद्ध कर देती हैं ।

विमलसूरि के 'पउमचरिउ' में रामगिरि (रामटेक, नागपुर) में जैन मंदिरों के बनाये जाने का उल्लेख मिलता है। हरिवंशपुराण भी इस कथन की पुष्टि करता है। यहाँ पूर्व वाकाटक कालीन जैन मंदिरों के होने की भी संभावना है। केलकर (वर्धा) से प्राप्त प्राचीन ऋषभदेव की मूर्ति, पवनार (वर्धा) में उपलब्ध जैन प्रस्तर प्रतिमायें, पद्मपुर (गोंदिया) से प्राप्त पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकरों की प्रतिमायें, देवटेक (चांदा) से प्राप्त मौर्यकालीन जैन अभिलेख, सातगाँव तथा मेहकर (बुलढाना) से प्राप्त जैन प्रतिमायें व अभिलेख, शिरपुर (अकोला) से प्राप्त अभिलेख युक्त पार्श्वनाथ की दिगम्बर मूर्ति, राजनापुर, खिनखिनी (अकोला), अचलपुर (अमरावती), मुक्तागिरि, रामटेक, बाजारगाँव (नागपुर), कामठी (नागपुर), भंदक आदि स्थानों से प्राप्त जैन मूर्तियाँ तथा अभिलेख विदर्भ महाराष्ट्र में जैनधर्म के प्रचार-प्रसार के ज्वलन्त उदाहरण हैं। परिशिष्टपर्व, कुवलयमाला आदि ग्रन्थों की साहित्यिक उल्लेख भी महाराष्ट्र में जैन संस्कृति की समुन्नत अवस्था को समाहित किये हुए हैं।

महाराष्ट्र के इन स्थानों में गुप्तोत्तरकालीन प्रतिमा कला के अच्छे उदाहरण मिलते हैं। मध्यकाल में यहाँ स्थापत्यकला का काफी विकास हुआ है। राष्ट्रकूटकाल में एलोरा जैन कला का प्रमुख केन्द्र बना। यहाँ की शैलोत्कीर्ण जैन गुफा मंदिरों की कलात्मकता दर्शनीय है। उनमें इन्द्रसभा और जगन्नाथ सभा विशेष उल्लेखनीय है। इन्द्रसभा में अनेक मंदिर हैं। इसमें मानस्तंभ, शासन देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, गर्भगृह, महामण्डप तथा चित्रांकित स्तंभ हैं। जगन्नाथ स्तम्भ उतनी व्यवस्थित नहीं दिखाई देती है। पर यहाँ भी गर्भगृह, मण्डप, मूर्तियाँ आदि अलंकृत शैली में निर्मित हैं। गुफाओं की वास्तुकला उन्हें 8वीं से 13वीं शती की बताती है।

तेरापुर (धाराशिव) की गुफा भी उल्लेखनीय है। कनकामर ने अपने करकण्डुचरिउ (11वीं शती) में इस गुफा का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है जिससे पता चलता है कि यह गुफा उस समय विशाल आकार की थी। करकण्डु ने स्वयं यहाँ कुछ गुफाओं का निर्माण कराया था और पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी।

मनमाड रेलवे जंक्शन से लगभग 15 किलोमीटर दूर अंकाई नामक स्टेशन के पास अंकाई-टंकाई नामक गुफा समूह है जो तीन हजार फीट ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। इसमें सात गुफायें हैं जिनमें बरामदे, मण्डप एवं गर्भगृह हैं। पार्श्वों में सिंह, द्वारपाल, विद्याधर, गजलक्ष्मी आदि की अनुकृतियाँ हैं। इनका समय लगभग ग्यारहवीं शताब्दी माना जा सकता है। नासिक के आसपास भी जैनकला के उत्कृष्ट नमूने दृष्टव्य हैं। पूना के समीप भामचंद्र स्थान पर एक जैन गुफा है, जो शिवमंदिर के रूप में परिवर्तित कर दी गई है। यहाँ नासिक जिले में चैरदल या चेरोदला में गोंडा द्वारा निर्मित

जैन मंदिर भी उल्लेखनीय है जहाँ के सन् 1123-24 के शिलालेख में माघनन्दि सैद्धान्तिक का मण्डलाचार्य के रूप में उल्लेख आया है। कोल्हापुर का रूपनारायण मंदिर भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

महाराष्ट्र में रामटेक, अंजनगिरि, मांगीतुंगी, कुंभोज, गजपंथा, शिरपुर, कुंथल-गिरि, भादक आदि तीर्थक्षेत्र भी उल्लेखनीय हैं जो कला की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। वाजारगांव के भित्तिचित्रों का भी उल्लेख किये बिना नहीं रहा जा सकता है। कुंभोज, कोल्हापुर और कारंजा आदि स्थानों के ग्रन्थ भण्डार भी कम महत्वपूर्ण नहीं जिन्होंने अनेक शोधकों को अपनी ओर आकर्षित किया है।

इस प्रकार महाराष्ट्र जैन पुरातत्व और इतिहास तथा संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अपना शीर्षस्थ स्थान बनाए हुए है। यहाँ की बिखरी जैन कला संपदा पुरातत्वज्ञों को आज भी आमन्त्रित करती है। अनेक ऐतिहासिक जैन स्थल सरकार के उत्खनन की प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं। समय निश्चित ही इन सभी के माध्यम से महाराष्ट्र की जैनकला और संस्कृति को प्रकाश में लायेगा।

इस संदर्भ में महाराष्ट्र में जैन संस्कृति के क्षेत्र में वर्तमान में शोध और संभावनाओं का आकलन करना भी अप्रासंगिक नहीं होगा। यहाँ विश्वविद्यालयीय स्तर पर प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभागों के साथ ही प्राकृत विभाग चल रहे हैं। प्राकृत और जैनदर्शन का अध्यापन स्वतन्त्र विभाग के रूप में नागपुर और कोल्हापुर में ही है। पूना और बम्बई में तो वह नाममात्र के लिए है। यहाँ के ये विभाग छात्रों के अभाव में समाप्ति की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। अतएव समाज का परम कर्तव्य है कि वह अच्छी छात्रवृत्तियाँ देकर छात्रों को इस ओर प्रेरित करें तथा विभागों को बनाये रखने में अपना अमूल्य सहयोग दे। एक बार बन्द होने के बाद उन्हें पुनः प्रारंभ करना सरल नहीं होगा।

जैन धर्म का मर्म

- मुनि श्री भरतसागर जी महाराज

परम पूज्य आचार्य महाराज को नमस्कार करता हूँ ।

जो विद्वत् संगोष्ठी आयोजित की गई है इसे किस प्रकार मूर्त रूप दिया जा सकता है इसके लिए हम दो शब्द कहना चाहते हैं । जैनधर्म कभी भी संकुचित विचारों का शिकार नहीं बना । हमेशा जैनधर्म ने उदार दृष्टि रखी है । जिसके कारण हमारा यह जैनधर्म सुचारु रूप से चल रहा है । जैनधर्म की परिभाषा करते हुए आचार्य कहते हैं - स्याद्वाद विद्यते यत्र, पक्षपाती न विद्यते, अहिंसाया प्रधानत्वं जैनधर्म स उच्यते ।

जैनधर्म किसे कहते हैं - स्याद्वाद विद्यते यत्र अर्थात् जिसमें स्याद्वाद हो, पक्षपात का नाम न हो, सापेक्ष दृष्टि रहती हो, एक दूसरे को अपनाने की दृष्टि हो, किसी के प्रति उपेक्षा न रहे । इसी कारण सुचारु रूप से जैनधर्म चल रहा है ।

अहिंसाया प्रधानत्वं - अहिंसा जिसमें प्रधान हो, जैनधर्मः स उच्यते - जिसमें ये तीन बातें हों, उसे जैनधर्म कहते हैं । जिसमें ये तीन बातें नहीं है वह जैनधर्म नहीं हो सकता ।

अब देखिये जो विद्वत् गोष्ठी यहाँ हुई उसे मूर्तरूप कैसे दिया जा सकता है । यदि हम इसे दूसरे की चीज समझते हैं दूसरे की बात समझते हैं तो इसे कभी मूर्त रूप नहीं दे सकते । यदि हम इसे अपना समझते हैं और अपना समझकर करते हैं तो आगे जाकर इसे मूर्त रूप दे सकते हैं । यही हमारा वास्तविक कर्तव्य है । हम अपना समझकर करें जिससे कुछ न कुछ निर्णय विशेष रूप से हो सके । कारण क्या है कि, आज तक हमारा जितना साहित्य प्रकाशित हुआ है उसमें द्वादशांग पर क्या काम हुआ ऐसा कहीं नहीं मिला - जो गोष्ठी से प्राप्त होवे । हमारा जो द्वादशांग अलग-अलग सूत्रों में है अगर वो एक सूत्र में हो गया तो हमारी जो सारी उलझनें हैं वे सब सुलझ सकती हैं । जैनधर्म हमारी दृष्टि में - एक विशाल दृष्टि युक्त है । अहिंसा जिस धर्म का प्राण है - स्याद्वाद जिसकी शैली है, अपरिग्रहवाद जिसका मुकुट है, अनेकान्तवाद जिसका हृदय है, समता जिसका आभूषण है ऐसा जैनधर्म प्राणीमात्र को कल्याणकारी है । ऐसे जैनधर्म की प्रमुखता - अरहंत जिसके प्रवक्ता है, गणधर जिसके गूंथने वाले है, आचार्य जिसके प्रचार करने वाले हैं और संत जिसका विस्तार करने वाले है, ऐसा है अनेकान्तात्मक धर्म । जब तक ये सन्त रहेंगे तब तक जीवित रहेगा ।

आचार्यों ने कहा है -

सर्व मंगल मांगल्यं सर्व कल्याणकारकम्,

प्रधानं सर्व धर्माणां जैनं जयतु शासनम् ।।

यह जैनधर्म प्राणीमात्र के लिए हितकारी है, जो भी इसको अपनायेगा। जिलोकसार में आचार्य ने बतलाया है कि जिस प्रकार तुलसी का पत्ता किसी जाति, प्रान्त या देश का नहीं है, जो उस तुलसी के पत्ते का सेवन करेगा वह उन सबको लाभ करेगा । उसी प्रकार जैनधर्म किसी प्रान्त, जाति, समाज से बंधित नहीं है ; इसकी शरण में जो आयेगा वह उसी के लिए कल्याणकारी है । अतः हमें जैनधर्म को संकुचित दृष्टि में लाकर नहीं रखना चाहिए । जैनधर्म है, जैनधर्म को संकुचित दृष्टि में, एक कोने में रखना चाहें तो यह कभी भी रह सकता नहीं । क्योंकि इसके प्रवक्ता अरहंत भगवान हैं और इस युग के प्रवक्ता अरहंत भगवान् आदिनाथ हैं जिन्होंने सबसे पहले छह कर्म बतलाये । इसलिए यह गोष्ठी आदिनाथ भगवान्, भरत भगवान और बाहुबली भगवान्, जिन्होंने विद्या, संस्कृति, वस्त्र, शस्त्र क्रियायें प्रारंभ कीं, ऐसे त्रिमूर्ति प्रभु के चरणों में आकर इसने संगोष्ठी रखी । और इस विशाल दृष्टि का कारण है । आचार्य विमलसागरजी का हृदय विशाल हृदय है, जो सबको अपनाने की क्षमता रखते हैं । आपने हमेशा स्व-पर कल्याण की दृष्टि रखी है ।

अयं निजो परोवेत्ति गणना लघु चेतसां ।

उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

यह मेरा है, यह तेरा है ऐसी जिनकी गिनती है उनका हृदय संकुचित है । उदार हृदय व्यक्तियों ने इस जैनधर्म को अच्छी तरह से पहचाना है । ऐसे व्यक्तियों की हमेशा दृष्टि विशाल रहती है । मैं एक उदाहरण देता हूं । समय नहीं है । जिस प्रकार हम इस कार्य को कर रहे हैं । यहाँ धर्मस्थल के धर्माधिकारी वीरेन्द्र हेगड़े आये हुए हैं । यदि इस युग में "धर्मयुग" देखना हो तो धर्मस्थल जाकर देखिये कि किस प्रकार वहां सामयिक दृष्टि से देखा जाता है । उन्होंने अपने जीवन में कभी उपेक्षा दृष्टि नहीं रखी जिसके कारण समस्त धर्मों का समागम वहां होता है तथा वहां किसी प्रकार का पक्षपात नहीं रहता । वहां के धर्माधिकारी होते हुए भी वहां पर बाहुबली भगवान् को स्थापित कर के अपने वास्तविक आत्मधर्म को स्थापित किया है । इसी प्रकार यदि हम इस कार्य को इसी प्रकार आगे बढ़ायेंगे तो इस मूर्तरूप देने में समर्थ हो सकेंगे । यह काम आचार्य महाराज का है, साहु श्रेयांसप्रसाद का है, शान्तिप्रसाद का है ऐसा - - - - - - - - - ?

समझकर छोड़ेंगे तो यह आगे बढ़ने वाला नहीं है इसलिए हमारा अंतिम आशीर्वाद है कि अपनी चीज समझकर इसे पूर्ण रूप दें ।

बोलो महावीर भगवान् की जय ।

JAINISM IN KARNATAKA

- JNANAYOGI CHARUKEERTHI Panditacharyavarya SWAMIJI - MOODBIDRI

History of Karnataka is intimately connected with the his _ and development of Jainism in this part of the country. Jainism is a way of life which has permeated the life-pulse of the people of Karnataka for over two thousand years.

The Jaina poet Nrpatunga, in the 9th century A.D., described the expanse of Karnataka as the country extending from the river Godavari to Kaveri, and the land with people skilled in the art of making speeches and well versed in poetry.

The impact of Jainism as religion and philosophy may be considered from two aspects. (i) Political influence and royal patronage and (ii) Its influence on the life and philosophy of the people of Karnataka.

Exactly when Jainism came to the south, specially to Karnataka, is difficult to say. There is a tradition in Jainism which says that the land was ruled by Jivandhara in the 6th century B.C. who was himself a Jaina and who met Mahavira when he came down to the south. Mahavira gave Diksa to him, and the King became an ascetic.

(i) Apart from this tradition, it is fairly certain that Jainism entered Karnataka well before the Christian era. Jainism came down to the south with Bhadrabahu Svamin, last of the Six Srutakevalins. He reached, by stages, a Country filled with happy people. He was accompanied by Candragupta, the Maurya. Bhadrabahu Svamin practised sallekhana on the mount Candragiri in 297 B.C. This was the beginning of the influence of Jainism in the south. Samparati, the grandson of Ashoka, was himself a Jaina in his earlier days. He sent missionaries to the South. For nearly 12 hundred years, from the 2nd century A.D., to 13th

century A.D., Jainism played an important part in the social and political life of the people. It influenced the lives of the princes and the people alike. The earliest political influence of Jaina Dharma is evidenced by the establishment of a Jaina Kingdom in the south. Sometime in the 3rd century A.D., two princes of the Ganga family cameto the city of Perur in the south. Acarya Simhanandi initiated one of them in the Syadvada doctrine and Kongunivarma I established the Ganga dynasty with the blessings of the Acarya. There were many Jainas in Karnataka at the time. The Gangas continued their patronage to the Jaina religion. The Ganga monarchs, except in a few cases, gave royal patronage to Jainism for centuries after Kongunivarma I. Avinita (500-540 A.D.) and Durvinita (550-600 A.D.) were devout Jainas. Pujyapada the celbrated grammarian, was their spiritual teacher. King Sivamara II built the Basadi on the smaller hill at Sravanabelagola.

Jainism also gained the royal benevolence of the Kadmabas and the Rastrakutas. Kadambas were essentially Brahminical in religion; yet some of them fostered the cause of the Jaina religion in Karnataka. King Kakutsthavarman gave to srutakirti the field called Badovarakshetra which belonged to the holy Arhats. Mrgesavarman, his grandson, granted certain specified fields, for the purpose of cleaning the Jainalayas for worship, offering flowers and also for repairs. Jainism continued to prosper also under King Ravivarma, who built a Jaina temple at Palasika (modern Halasi) in theBelgaum District. King Harivaman continued the tradition of his father and made generous donations and gifts to the worship of Jinendra and for the maintenance of the devotees.

The Calukyas of Badami gave patronage to the Jains by giving gifts of land to Jaina Temples. Ravikirti the famous Jaina writer, received high honour from Pulakesi II.

The Calukya rulers, Vinayaditya, Vijayaditya and Vikramaditya, gave liberal donations to the Jaina temples. The sculptures and paintaings used in Ellora and Ajanta were copied in the caves at Badami for depicting the Jaina and Hindu deities. The Carvings of images of Jaina Tirthankaras and of Visnu are found side by side in Badami. The religious ideas and practices of earlier period continued to be practised during the Rastrakuta period. Jainism received royal patronage in the reign of Nrpatunga, who was himself a Jaina. It did not suffer influence during the Rastrakuta period although there was, at a later stage, revival of Hindu influence. This was because the people were used to Jaina practices and Jainism was popular among them, and also because some Rastrakuta general were Jains. Bankese and his son Lokaditya were Viceroys at Banavasi and they patronised Jainism.

The influence of eminent poets like Pampa and philosophers like Samantabhadra and Akalanka was immense. People did not feel any difference between Hinduism, Jainism and Buddhism. Any one could follow a religion and faith of his choice. During the Rastrakuta period there was abundant Jaina philosophical literature.

During Hoysala period Jainism was an influential force. In fact the Hoysalas owed much to the foresight and wisdom of the Jaina Acaryas. The period between the 11th and 14th centuries was favourable for the propagation and glorification of the Jaina faith. Most of Hoysala kings were Jains and they patronised the Jaina temples and institutions. Jainism was a living faith for many classes of people, from the peasants to the princes. The founder of Hoysala kingdom had the blessings of the Jaina Acarya Vardhamana muni. Acarya Santideva at the time of King Vinayaditya II, was not only a Rajaguru but also Rastraguru. Other Kings like Ballal I continued to patronise Jainism. The celebrated King Visnuvardhana is said to have changed his faith under the influence of Ramanujacarya. Yet he continued to be a benevolent patron

of Jainism. Queen Santaladevi was a devout Jaina and she made liberal donations to the construction of Jaina temples. Instances are not wanting among the royal families in Karnataka wherein the King professed one faith and the Queen the other. There is ample evidence to show that there was perfect tolerance between the different faiths in the country.

The same tradition of tolerance continued under the rulers of Vijayanagara. During the period of Vira Bukkaraya I (1368 A. D.) dispute arose between Jainas and Vaisnavas regarding some injustice done to the Jainas. Bukkaraya took the hands of the Jainas and placing them in the hands of the Vaisnavas said, "As long as the Sun and Moon last, the Vaisnavas will continue to protect Jaina Darsana. The Vaisnavas and Jainas are one body; they must not be viewed as different. Bukkaraya II also made liberal grants to Jaina temples.

(2) We may now consider the impact of Jaina philosophy on the life of the people of Karnataka. The Jaina Weltanschaunng presents synthesis of Samyagdarsana (right intution). Samyag-jnana (right knowledge) and samyag-Caritra (right conduct). Jainism presents the rationalistic atheism and a high spiritual idealism. It also mentions the importance of personal moral responsibility, Jacobi says that the concept of Jiva is a hylozoistic theory which pervades the whole philosophical system and code of morals. The rationale underlying the Jaina metaphysics and ethics is their doctrine of the Universality of Ahimsa. Due to the practice of Ahimsa, it was possible for the Jainas to influence society to a great extent.

The rationalistic atheism of the Jainas denied the existence of a creater God. He is not necessary, because the self and the universe are uncreated and therefore eternal. We are not to seek God in the world outside, nor is God to be found in the

-5-

dark lonely corner of a temple with doors all shut'. He is there within us. 'He is there with the tiller tilling the hard ground and the pathmaker breaking stones'. Each individual soul is to be considered as God, as he is essentially divine in nature. However, the Jainas worship Tirthankaras not because they are gods, not because they are ideals for us, but because they are human and yet divine.

But, Jaina concept of divinity and their practice of worship were also influenced by other ideas and practices prevailing in society. This influence is evident in the Jaina practice of worshiping the deities like Padmavati and Jvalamalini. This was due to the psychological and sociological necessity. Similarly the current practices and cults prevailing in Hindu society have been assimilated in the Jaina form of worship. For instance Akalanka is said to have invoked the Goddess Kusmandini to work a miracle against the Buddhist goddess Tara, by her interference won a victory over his rivals. Elacarya allayed the devil by means of the Jvalamalini-stotra. Jainas invoke the goddess Padmavati for the increase of wealth, later on, we are told, "that Yaksi began to be worshipped as the goddess Vasantika. Every Jaina family in Karnataka has a copy of ammanavara caritra which is devoutly read every day. Similarly Jainas in the south have notions about demons and ghosts very much similar to the ideas of these prevailing in other Hindu society. The Jainas in South Canara had the practice of worshipping the Bhutas. They used to set apart room for them in their houses. Thus the sociological influence of the practices of mantra and tantra are also to be found among the Jainas.

(3) 1) Jaina art in medieval times appears to have been having a period of relative prosperity under the Later Calukya, Vijayanagara, Hoysala and Yadava dynastics. But the later kings, especially from the fifteenth century, had been extending their patronage largely to Saiva and Vaisnava faiths, and, at best, had

allowed the Jainas to survive. In fact, we have had a critical period of clashes between Jainas and Vaisnavas (of Melkote) in an important centre like Sravanabelgola, resulting in what has now come down to be called the Sasana executed by Harihara II patching up the quarrels. Interestingly, this record opens with the royal invocation, extolling the great Vaisnava leader and Philosopher, Sri-Ramanuja or Yati-Raja and actually quotes a verse from Vedanta-Desika's Dhati-pancaka.

The regions other than Tamil Nadu mainly expressed this early medieval art-development in the form of carvings on the walls and niches of the shrine, subshrines and in the sanctum. But in Tamil Nadu an additional diversification in the form of the bronze-image tradition was available and gave rise to a wealth of minor images and ritual metallic outfit in the temples of the Jainas, much of which however, was following a basis folk-art slant, perhaps under the influence of the west-Indian Jaina mural and miniature tradition, expressed in the rigid and ethnic facial moulds, stylization of the curls of the hair and protrusion and elongation of the eye-balls, e.g. bronzes from Vembunram (Plate 216). The Andhra Area was, however, devoid of the metallic images In the Hoysala regime and region, just prior to the foundation of the Vijayanagara empire in 1336, the Jainas had a field-day, thanks largely, to the pre-existing and sustained Ganga support to Jainism earlier, and we find perhaps the largest concentration of Jaina art in the Districts of Hassan, Mandya and Mysore. Sravanabelagola in this period was indeed only a subsidiary centre jostling with the state-patronized Brahmanism. The Jaina art of the Hoysala times was subdued but lively and contrasts with the somewhat still though richly picked-out ornamentation of the corresponding Brahmanical iconographic art of the same period.

The Jaina art, further, specialized at this stage in the

surface-shine and polish of the figures as in the case of pillars, also coeval, and in large-sized images of Tirthankaras in the sanctum. This eschewing of delicate carvings in figures-sculpture would seemingly underscore the deliberate attunement to the philosophic symbolism of the emancipated Tirthankara by the figural execution. In fact, except for certain medium and small-sized sculptures of the religion, there is a systematization of the Tirthankara figures in all regions, particularly in south India, resulting in a studied uniformity of treatment everywhere, characterized by stark simplicity, a spirit of unconcern, as it were, for the admittedly sophisticated contemporary social and cultural environment, represented by a commanding immobility of a stance amidst the pulsating life-cycle around. It is important to note that, generally speaking, in both style and material, Jaina art as similar to the Brahmanical traditional skill and convention However, it did opt for a cunctional simplicity in both architecture and sculpture, although it tended sometimes to compensate this by overcrowded surface-friezes on the pillars and by cloyingly repetitive assemblages of Jainas, minor divinities Yakṣas, Yakṣis, etc., on the walls, in stone and impaint, converting these themes into ritualistic fetishes. Jaina art, indeed seemed to avoid in this period, exclusively or even deliberately, any aesthetic finesse and sensitively. But it would be fair also to add that an element of basic art-rhythm and poise was ever present in the multiplicity of the standardized seated and standing images of the Tirthankaras.

2. Examples of Jaina architecture fall into four types. One of them, represented by the group of temples at Hampi, is characterized by the stepped pyramidal superstructures. No doubt this type of sikhara is also employed in the building of Brahmanical temples in this region, but many a Jain temple has this

as an invariable feature . Another type is represented by some large stone temples at Bhatkal in North Kanara District and Mudbidri (Mudabidure) in South Kanara District. 'The most notable features of these temples are their plain sloping roofs and the peculiar arrangement of stone screens which close in the sides. There is a great likeness between these buildings and similar ones, built in wood for the most part, found in Nepal. It is not likely, however, that there is any other connection between them than that the same conditions brought about the same type of structure. But these roofs may be seen repeated in every thatched cottage in Bhatkal, even to the double storey. This method of roof-construction is, therefore, no more than a copy in stone of thatched roofs of the country, rendered necessary by the exigency of the climate and made possible by the ease with which the great laterite slabs could be quarried on the spot. The third type, which is considered an interesting one, is represented by tombs of Jaina priests in the neighbourhood of Mudbidri. 'The style of these monuments isthat of a pagoda-like pyramind rising up into several diminishing stories, each storey defined by a projecting cornice, the whole being crowned by a finial. The fourth type is represented by temples with more than one functional storey above the garbhagrha like the Santisvara basti at Venur, South Kanara District, and the votive miniature representation of Jaina temple of an earlier period from Vemulavada. Another types goes by the name of caumukha-basti (caturmukha-basti), the best example of which is the one at Karkala. It is seen that a great majority of Jaina temples face north, and only rarely are they built facing other directions. This north-facing character remains one of the references in Tamil literary works of early date of the Uadakkiruttal (i.e., sitting, facing the north,) a form of penance adopted by saintly persons and even members of royal family in order to obtain final release from the worldly ties.

-9-

4. Resume of 1) our achievements in the field of Jainological studies, and

2) What is yet to be done.

1. Our achievements:

A good deal of work has been done in the researches in the various aspects of Jaina studies, like I: Historical survey of the impact of Jainism on the life and thought of the people of Karnataka in respect of

a. Political influence,

b. Sociological impact,

c. Religious influence,

d. And the Jaina way of life.

2. The Jainas have made a significant contribution to Kannada literature. In fact the Kannada literature has been enriched by the eminent writers in Kannada right from the middle ages to the present day. Great poets like Pampa, Ponna and Ranna and Ratnakara have been the becon lights for enrichments of Kannada literature.

3. The work of survey of the ancient monuments and inscriptions has been taken up by the Universities and some work has been done in this respect.

4. The Jaina institutions are trying to encourage secular and religious education among the students of the community. Several institutions have been giving scholarships.

5. At Moodbidri, Smt. Rama Rani Jaina Research Institute is doing good work in the researches in the early Jaina literature and philosophy. The Institute takes pride in the fact that it has more than 4000 palm-leaf manuscripts and 55 copper Plate manuscription, some ofthem more than a thousand years old. They cover the vast range of thought from Jaina philosophy and religion to the Jaina art, archi

4. Resume of 1) our achievements in the field of Jainological studies, and

2) What is yet to be done.

1. Our achievements:

A good deal of work has been done in the researches on the various aspects of Jaina studies, like I: Historical survey of the impact of Jainism on the life and thought of the people of Karnataka in respect of

a. Political influence,

b. Sociological impact,

c. Religious influence,

d. And the Jaina way of life.

2. The Jainas have made a significant contribution to Kannada literature. In fact the Kannada literature has been enriched by the eminent writers in Kannada right from the middle ages to the present day. Great poets like Pampa, Honna and Ranna and Ratnakara have been the becon lights for enrichments of Kannada literature.

3. The work of survey of the ancient monuments and inscriptions has been taken up by the Universities and some work has been done in this respect.

4. The Jaina institutions are trying to encourage secular and religious education among the students of the community. Several institutions have been giving scholarships.

5. At Moodbidri, Smt. Rama Rani Jaina Research Institute is doing good work in the researches in the early Jaina literature and philosophy. The Institute takes pride in the fact that it has more than 4000 palm-leaf manuscripts and 55 copper Plate manuscription, some ofthem more than a thousand years old. They cover the vast range of thought from Jaina philosophy and religion to the Jaina art, archi

tecture, medicine and astrology.

B. Our needs for developments:

1. More vigorous work has to be done in the researches in the field of Jaina art, architecture, medicine and astrology.
2. We need to renovate the ancient temples in Karnataka. There are numerous temples to be renovated.
3. We should encourage the study of early Kannada literature and encourage research in the direction of promoting the study of Jaina literature.
4. We should increase the facilities for the scholarships and financial help for the Jaina bright students. We have several students studying in the science and technology. They are very bright. The encouragement has to come from the generous public in this direction. We have ample talent in our community.

भाषण

- डा० सरयू दोशी, संपादक "मार्ग", बम्बई ।

जैन कला एवं पुरातत्व के संदर्भ में चलने वाली गोष्ठी में भाग लेते हुए, जैन कला एवं पुरातत्व की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की विदुषी महिला डा० सरयू दोशी ने अपने अंग्रेजी भाषण में अपने अनुभव के आधार पर बताया : "अभी तक जैन कला की जो समृद्धि देश-विदेश के विद्वानों के सामने उजागर हुई है और उसने जो प्रभाव उत्पन्न किया है, उससे कहीं अधिक पुरातात्विक वैभव देश के अनेक क्षेत्रों में बिखरा पड़ा है, या जानकारी में नहीं आया है । जब तक हम योजना-बद्ध रूप से काम नहीं करेंगे, और सावधान नहीं रहेंगे तब तक हम बहुत बड़ी हानि सहते जायेंगे । मैंने देश के अनेक क्षेत्रों में भ्रमण किया है । जहाँ कहीं पता लगा कि शास्त्र भंडार में दुर्लभ सचित्र ग्रन्थ हैं, मैं वहाँ पहुँची । मैं अपने साथ फ़ोटोग्राफ़र भी ले गई, स्वयं भी फोटो लेती हूँ । बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा । शास्त्र भंडारों की संपदा को देखने की अनुमति प्राप्त करने में । उनकी फ़ोटो या ट्रान्सपेरेंसी बनाने की आज्ञा पाना तो और भी कठिन काम प्रमाणित हुआ । मैंने अपना प्रयत्न जारी रखा है । सूचनाएँ, चित्र, प्रतिलिपि आदि का संग्रह जितना भी संभव हुआ, किया, कर रही हूँ । बरसों बाद जब पुनः उसी स्थान पर अधूरा काम पूरा करने के लिए पहुँची तो पाया कि संग्रह में से मूल्यवान सामग्री लुप्त है, या छिन्न-भिन्न हो गई है । कहीं-कहीं शास्त्रों में से बीच-बीच में से सचित्र पन्ने उड़ा लिये गये हैं । आप सभी जानते हैं कि भारतवर्ष में विदेशी तस्करों ने अपने स्रोत यहाँ कायम कर लिये हैं । उनके पास धन की कमी नहीं है । हम सोच भी नहीं सकते कि एक-एक सुन्दर कलाकृति को प्राप्त करने के लिए वह कितनी राशि खर्च करते हैं, कितना लोभ-लालच दिखाते हैं । हमारी मूर्तियाँ सुरक्षित नहीं हैं, शास्त्र भंडार सुरक्षित नहीं हैं ; सचित्र कलाकृतियाँ सुरक्षित नहीं हैं । जैन-कला की अद्भुत मूर्तियाँ काँसे और धातु में हैं । अभी तक बहुत सी सामग्री प्रकाश में नहीं आई है । यह तो संतोष की बात है कि जैन-कला के ग्रंथों का संपादन-प्रकाशन शुरू हुआ है, किन्तु अभी यह शतांश भी नहीं है ।

आप यह भी जानते हैं कि आज प्रस्तुति और प्रकाशन के अन्तर्राष्ट्रीय मानदंड बहुत ऊँचे हो गये हैं । हम जो भी प्रकाशन करें उसकी पहुँच का लक्ष्य अच्छी तरह से सोच समझ कर करें । अन्तर्राष्ट्रीय पाठकों तक यदि पहुँचाना चाहते हैं तो आधुनिकतम टैक्नोलोजी का उपयोग हमें करना होगा और ऊँचे

स्तर के प्रकाशन करने होंगे ।

जैन कला के क्षेत्र में काम करने वाले शोध-छात्रों के लिए हमें उचित ढंग का कार्यक्रम बनाना चाहिए और उनके लिए साधन जुटाने चाहिए ।

मैं आभारी हूं कि मुझे अपने विचार प्रस्तुत करने का यह अवसर मिला । मैंने अपनी बात बहुत संक्षेप में कही, क्योंकि मैं देख रही हूं कि समय का नियंत्रण सावधानी से हो रहा है ।

द्वितीय सत्र

मंगलवार, 7 सितम्बर, 1982 (3.00 बजे से 5.45 तक)

विषय : जैन धर्म और दर्शन

अध्यक्ष : डा. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य

सह अध्यक्ष : डा. कमलचन्द सोगाणी

मंगलाचरण : सिद्धान्तसूरि पं. नाथूलालजी शास्त्री

विषय-प्रवर्तन : श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, निदेशक, भारतीय ज्ञानपीठ

भाषण एवं आलेख

1. डा. देवेन्द्र कुमार शास्त्री : जैन तत्वज्ञान की विशेषताएँ
2. श्रीमती कमल बेद : जैन धर्म में सामाजिक सन्तुलन की संभावनाएँ
3. सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री : जैन धर्म और दर्शन: मौलिक दृष्टि
4. डा. हरीन्द्र भूषण जैन : जैन धर्म और दर्शन- उपलब्धियाँ तथा शोध सम्भावनाएँ (मालव देन)
5. डा. हुकमचन्द भारिल्ल : जिनागम का नय प्रकरण
6. श्री प्रवीणचन्द्र जैन : जैन धर्म और दर्शन: विज्ञान के संदर्भ में
7. डा. कमलचन्द सोगाणी : जैन धर्म-दर्शन के अध्ययन में विकास की दिशाएँ
8. डा. दरबारी लाल कोठिया : आचार्य कुन्दकुन्द के नियमसार की 53वीं गाथा और उसकी संस्कृत व्याख्या: एक अर्थ पर अनुचिन्तन
9. क्षु. श्री सन्मतिसागरजी महाराज : जैन धर्म और दर्शन - उपलब्धियाँ और सम्भावनाएँ
10. डा. गुलाबचन्द्र जैन : मानव मूल्य और जैन दृष्टि
11. डा. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य : धर्म और पुण्य का विश्लेषण

जैन तत्त्वज्ञान की विशेषताएँ

- डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, नीमच

प्रतिदिन हम अनेक वस्तुओं को देखते हैं । सुबह से शाम तक विभिन्न पदार्थों के सम्पर्क में आते रहते हैं । उनकी चमक-दमक, रूप-रंग, बनावट आदि की ओर भी हमारा ध्यान जाता है । किन्तु हम उनके सम्बन्ध में जो भी जानते हैं वह या तो विरोधाभासमूलक होता है अथवा विपर्यय, मिथ्या होता है । बर्ट्रेन्ड रसेल के शब्दों में मेरा विश्वास है कि सूर्य धरती से 93 लाख मील की दूरी पर है । वह गर्म भूमण्डल (ग्लोब) है जो इस पृथ्वी से कई गुना बड़ा है । सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता रहता है । वह प्रत्येक सुबह उदित होता है और भविष्य में अनिश्चित काल तक उदय होता रहेगा ।[1] यद्यपि सूर्योदय के समय जो भी देखेगा, उसे सूरज का लाल गोला ही दिखलायी पड़ेगा, किन्तु वास्तव में सूर्य क्या है ? इससे हम अनजान हैं । हमारा तुरन्त का अनुभव गलत भी हो सकता है । हम जिन पदार्थों को देखते-जानते हैं वे सभी हमारे अनुभव-बोध में जैसे प्रतीत होते हैं, वैसे ही हम उनका ज्ञान करते हैं । हम जिस कुर्सी पर बैठे हुए हैं उसका रूप-रंग देख कर, हल्की-भारी, चिकनी-खुरदरी छू कर और प्रत्यय-बोध की धारणा में जैसे पहले आ चुकी है उसी के अनुसार जानते हैं । वास्तव में कुर्सी क्या है ? इसे हम क्या जानते हैं ? क्या वास्तविक कुर्सी का अस्तित्व है ? यदि है तो वह भौतिक पदार्थ ही है । हमारी संवेदनशील प्रज्ञा में कुर्सी का समाहित रूप उद्‌बुद्ध होता है । पदार्थ का बाहरी अस्तित्व तो हमारी दृष्टि में आता है, किन्तु वास्तव में पदार्थ अनुभूतिगम्य होता है । प्रतीत होने वाला पदार्थ प्रत्येक समय में परिवर्तित होता रहता है । जो बदल रहा है, प्रत्येक क्षेत्र में जो नए सौन्दर्य को धारण कर रहा है और क्षण भर के पश्चात् जो रहने वाला नहीं है, वह पदार्थ नहीं है । क्योंकि पदार्थ ध्रुव है, नित्य है, त्रैकालिक है । हमारे अनुभव में आने वाले पदार्थों में से कोई भी बिल्कुल नया नहीं है । उसे हम कभी-न-कभी देख चुके हैं, जान चुके हैं और अनुभव का विषय बना चुके हैं । फिर भी, उसकी वास्तविकता से अपरिचित रहे हैं । अधिकतर दार्शनिक यही मानते हैं कि हमारे अनुभव में जो वस्तुविषयक प्रत्यय चिन्तन-अनुभवन में आ रहा है, वही वास्तविक है ।

जिनशासन की वास्तविकता यही है कि जब तक सकल-निरावरण-अखण्डएक-प्रत्यक्षप्रतिभासमय अविनश्वरशुद्धपारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य - वह ही मैं हूँ - ऐसा वस्तु का यथार्थ स्वीकार स्व-संवेदनज्ञान नहीं होता, तब तक पूर्ण आनन्द के नाथ का न तो परमात्म-दर्शन होता है और न जिनशासन की पूर्ण स्वीकृति होती है । जिनशासन की स्वीकृति के बिना वह जैन ज्ञानी कैसे हो सकता है ? अतः आचार्य कुन्दकुन्द

जैन धर्म में सामाजिक सन्तुलन की संभावनाएँ

- श्रीमती कमल बैद

समाज की कल्पना :

हम रोज ही सुनते हैं, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । साधारण बोलचाल की भाषा में 'समाज' शब्द से व्यक्तियों के समूह का बोध होता है । समाज-शास्त्र की दृष्टि से यह उचित नहीं है । व्यक्ति अपने हितों और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक समितियों और संस्थाओं को जन्म देते हैं । ये मनुष्यों के व्यवहारों को एक निश्चित ढांचे में ढालती है । उनके आपसी संबंधों को निश्चित और नियंत्रित करती है । अतः हम कहेंगे व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों की व्यवस्था, उनके व्यवहारों के प्रतिमानों का एक निश्चित ढांचा ही समाज है । एच० डब्ल्यू० ओडम ने समाज को मानव व्यवहार एवं उसी के परिणाम स्वरूप उत्पन्न संबंधों की समस्याओं और सामंजस्यों के रूप में देखा है ।

सरलता से जटिलता .

आदिम युग में समाज के निर्माण का उद्देश्य व्यक्तियों के हितों को ध्यान में रख कर किया गया था । चूंकि समूह छोटे होते थे, इसलिये व्यक्तियों के संबंधों और व्यवहारों में गहरायी थी । किसी प्रकार का छल कपट या दुराग्रह नहीं था, आवश्यकतायें सीमित थी, इसलिये समाज में चारों ओर शान्ति व्याप्त थी, । ज्यों-ज्यों समाज के आकार में वृद्धि होती गयी, जटिलता बढ़ती गयी, सरलता समाप्त हो गयी ।

आज का मानव इसी सरलता के लिये बैचेन है । इसका यह अर्थ नहीं कि हम आदिम युग में लौट जायें? लौट भी नहीं सकते । प्रश्न है फिर हम क्या करें? आज समाज का जो रूप है, व्यक्ति का जो रूप है वह निश्चय ही भविष्य में खतरनाक साबित होगा । मानवीय गुण नीति, धर्म, चरित्र सभी वेस्तनाबूद बूद होने की संभावना है । तो क्या जैन धर्म उसके आदर्श, उसके सिद्धान्त इस दूषित मानवता को बचा सकते हैं ? अवश्य जैन दर्शन की ऊँचाइयों को हम छूने का प्रयास करें तो व्यक्ति और समाज दोनों में एक सुन्दर संतुलन बन सकता है ।

जैन धर्म की विशेषता :

जैन धर्म आत्म धर्म है । जहाँ अन्य धर्मों ने जीवात्मा को मोक्ष प्राप्ति के लिये पराश्रित बताया, वहाँ जैन धर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रत्येक जीवात्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है, इस महान् तथ्य को वह उद्घाटित करता है । अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य रूप आत्मा अनेक विकारों और कर्मों से घिरा होने के कारण

उसके स्वाभाविक गुण प्रकट नहीं हो पाते । इस अर्थ में जैन दर्शन पुरुषार्थ मूलक है ।

जैन धर्म के दो अंगों - आचार और विचार में विचार का मूल है स्याद्वाद या अनेकान्त, अर्थात् आचार का मूल है अहिंसा । जैन आचार्यों ने 'वत्थु सहावो धम्मो' कहकर चारित्र या आचार को भी धर्म कहा - मूलतः जैन धर्म आचार प्रधान है । इसमें तत्वज्ञान का उपयोग भी आचार शुद्धि के लिये ही है' या 'चारित्तं खलु धम्मो' । ऐसा क्यों ? वैसे तो स्वभाव रूप धर्म तो जड़-चेतन सभी पदार्थों में पाया जाता है, क्योंकि बिना स्वभाव कोई वस्तु नहीं होती है किन्तु आचार रूप धर्म केवल चेतन आत्मा में ही पाया जाता है । धर्म के इन दोनों अंगों का परस्पर घनिष्ट संबंध है ।

जैन धर्म की वैज्ञानिकता :

जैन धर्म अति प्राचीन होने के बाद भी एक वैज्ञानिक परम्परा उसके साथ है । दसवीं शताब्दी में ही जैनाचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने परमाणु की रचना निम्न शब्दों में प्रकट की थी - 'वही जिसका आदि है, वही जिसका मध्य है, वही जिसका अन्त है, इन्द्रियों से जिसका ग्रहण नहीं होता तथा जिसके अन्य विभाग नहीं हो सकते, वही परमाणु है ।' हम देखते हैं कि आधुनिक युग के वैज्ञानिक न्यूटन और आइंस्टाइन भी दूसरे शब्दों में इसी के पोषक हैं ।

सर्व धर्म समभाव .

धर्म का उद्भव मनुष्य के मन और हृदय से होता है, जबकि उसका विकास उसके आचरण में, चरित्र में निहित है । आधुनिक मानव-समाज में धर्म का ह्रास और नैतिक पतन के कारण व्यक्तिगत स्वार्थ, दुराग्रह, अहंकार, तीव्र महत्वाकांक्षा आदि हैं । इनके कारण से पारस्परिक ईर्ष्या, वैमनस्य और अनेक प्रकार के तनावों ने उसका व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन तहस-नहस कर दिया है । जो मनुष्य एक दूसरे के दु.ख-सुख के साथी होते थे, सामूहिक रूप से प्रत्येक समस्या का सामना करते थे, उनमें आज परस्पर प्रेम और विश्वास समाप्त हो गया है । प्रत्येक दूसरे को शंका की दृष्टि से देखता है, पग-पग पर धोखा खाने का भय बना रहता है । ऐसी असंतुलित मनः स्थिति में जैनियों का 'सर्व धर्म सम भाव' डूबते को तिनके का सहारा बन सकता है । विभिन्न जैन संप्रदायों की खाई इससे पाटी जा सकती है । ऊँच-नीच, गरीब-अमीर और जातिगत घेराबन्दी भी इस समत्व में समा सकती है । आधुनिक युग की माँग है कि जो धर्म कभी संकुचित दायरे में था ही नहीं, जो मानव ही नहीं प्राणी मात्र के कल्याण की आवाज उठाता है, उसे विश्वशान्ति विश्व मैत्री की स्थापना के लिये पुनः विश्वधर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया जाय । जहाँ कल्याण और समता है वहाँ विषमता का क्या काम ? हमारी दृष्टि अपने आसपास से हटकर दूर क्षितिज तक होनी चाहिए ।

-3-

अनेकान्त :

आधुनिक मानव-जीवन विज्ञान की भौतिक चकाचौंध से प्रभावित है । प्रत्येक कदम पर युद्ध की संभावना है । आर्थिक विषमता, भ्रष्टाचार, अनैतिकता और स्वार्थी वृत्ति ने समाज में विघटन पैदा कर दिया है । कोई क्षेत्र व्यवस्थित नहीं । अमानवीय अपराधों की संख्या बढ़ती जा रही है । ऐसी स्थिति में जैन दर्शन का अनेकान्त और अहिंसा की सहायक हो सकती है । इसमें आग्रह या दुराग्रह का कोई स्थान नहीं । यदि मैं अपनी बात की सत्यता के साथ आपकी बात की सत्यता भी स्वीकारती हूं तो कोई मतभेद नहीं रह जाता । हमें ज्ञात है ; अनेकान्त और समन्वयवादी सिद्धान्त के द्वारा ही महावीर ने तत्कालीन फूट एवं मत-मतान्तरों की उग्रता को सहिष्णुता के शीतल जल से शान्त किया था ।

अहिंसा :

जैन धर्म का विकास मात्र तत्वज्ञान की भूमि पर न होकर आचार की भूमि पर हुआ है । जीवन शोधन की व्यक्तिगत मुक्ति प्रक्रिया और समाज तथा विश्व में शांति स्थापना के लिये 'जैन अहिंसा' एक मूल मन्त्र है । सर्वप्राणि मात्र संबंधी दया और समता भाव को महावीर ने अहिंसा कहा । 'जह ममण पियं दुखं जाणिहि एवैम सव्व जीभणं' । जैसे मुझे दुख प्रिय नहीं है वैसे ही समस्त प्राणियों को भी वह अच्छा नहीं लगता । यह करुणापूर्ण वाणी अहिंसक मस्तिष्क से नहीं, हृदय से निकलती है । जहाँ वैदिक परम्परा वैराग्य आदि से ज्ञान को पुष्ट करती है और विचार शुद्धि को मोक्ष मान लेती है, श्रमण परम्परा कहती है- उस ज्ञान का कोई मूल्य नहीं जो जीवन में न उतरे, जिसकी सुवास से जीवन सुवासित न हो ।

जैन परम्परा में तत्वार्थ सूत्र का आदि सूत्र है - 'सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः' इसमें मोक्ष का साक्षात कारण चारित्र है और सम्यक्दर्शन तथा ज्ञान उसके परिपोषक । इसी प्रकार 'जियो और जीने दो' अहिंसा का महत्व पूर्ण सूत्र है । जीने की दो शैलियाँ - एक खुद के लिये, और एक दूसरे के लिये । संसार में जीना सभी चाहते हैं, मरना कोई नहीं । यदि मेरा जीवन दूसरे के जीने में कोई बाधा उत्पन्न करे, उनकी आस्था को ठेस पहुँचाये तो वही हिंसा होगी । महावीर ने मन के अन्दर बैठी इस चोर भावना को पकड़ने की सलाह दी ।

सत्य :

सत्य जीवन का मूलभूत तत्व है । अहिंसा में ही सत्य जीवित है । धर्म का दूसरा नाम ही सत्य है । सत्य जीवन है, और जीवन सत्य है । सत्य अत्यन्त सरल

है, खुली किताब के समान । दुराव या वक्रता का उसमें कोई स्थान नहीं । मनुष्य मे मन, वचन और कर्म में अर्थात् आचार, विचार और उच्चारण में वह समन्वित होना चाहिये । आज मानव जीवन बड़ा गड़बड़ है । वह कहता कुछ है, करता कुछ है । न विचार स्वच्छ-सबल है, न आचार । झूठ, फरेब, चालाकी ने जब उसका दामन थाम लिया है तो उद्धार कैसे हो ? सत्य धर्म का आश्रय बहुत आवश्यक है ।

अपरिग्रह :

शान्त, स्वस्थ, सन्तुलित और निराकुल जीवन के लिये जैन दर्शन का अपरिग्रहवाद हमारा ध्येय होना चाहिये । सांसारिक सुख-साधनों के प्रति अतिशय आसक्ति या यह मेरा है इस प्रकार का संकल्प परिग्रह है । घर-बार छोड़ देने या दिगम्बर हो जाने से जीवन नहीं चलता । इसके लिये कठोर तप आवश्यक है, किन्तु असीमित साधनों को जुटाना भी मूर्खता है । स्वार्थ भी एक प्रकार का परिग्रह ही है संग्रहवृत्ति और स्वार्थ ने संघर्ष और शोषण को जन्म दिया है । परिग्रह के पीछे जो ममकार छिपा हुआ है, वही घातक है ।

वैसे तो विश्व का प्रत्येक मज़हब इच्छाओं से मुक्ति पाने का उपदेश देता है, किन्तु जैन दर्शन की वीतरागता और भी निराली है । हम जैन जो इसके पोषक कहलाते हैं, हमने अपने मन्दिर, देवालय, धार्मिक स्थानों पर परिग्रह की दुकानें बिछा दी हैं । भगवान के नाम पर झूठे आडम्बर और अपनी प्रतिष्ठा के लिये अनेक संघर्ष देखे जाते हैं ।

अध्यात्म को छोड़ यदि हम सामाजिक धरातल पर इस विषय में विचार करें तो हम जैन अपरिग्रह के अनुयायी घोर परिग्रह में लिप्त दिखते हैं । आज समाज में व्याप्त दहेज प्रथा ने गृहस्थ का जीवन दूभर कर दिया है । सामाजिक ढांचा भी अप्रभावित कैसे रह सकता है । जिस द्रव्य को हम रोज 'पर पदार्थ' त्यागने लायक सुनते हैं, पढ़ते हैं, उसी के पीछे मृगतृष्णा की नाईं दौड़ लगा रहे हैं । क्या जैन समाज ने कुछ ऐसे उदाहरण पेश किये हैं जो इस परंपरा को तोड़ने में सहायक हों । यदि हमपे ऊपर से कोई अंकुश है या प्रतिबंध है तो हम बन्द पेटी में दहेज की रकम निगल लेते हैं । वहीं हमारा अपरिग्रही विचार धराशायी हो जाता है । सोने के कंगन के लालची बाघ के समान कीचड़ का दलदल हमारे लिये भी तैयार है ।

ब्रह्मचर्य :

इन्द्रियों के आधीन न होना ब्रह्मचर्य है । ब्रह्म अर्थात् निज शुद्धात्मा में रमना, चरना ब्रह्मचर्य है । परद्रव्यों से रहित शुद्ध-बुद्ध ज्ञानानन्द स्वभावी निजात्मा को ही निज मानकर उसमें रम जाना, जम जाना, लीन हो जाना ही वास्तविक ब्रह्मचर्य है । इसका अर्थ यह हुआ कि मात्र मैथुन की क्रिया का त्याग ही ब्रह्मचर्य नहीं है, वरन्

पाँचों इन्द्रियों के विषय ब्रह्मचर्य के विरोधी हैं । तो आधुनिक सामाजिक सन्दर्भ में मोटे रूप में देखें तो इन्द्रियों का दमन या नियंत्रण ही ब्रह्मचर्य है । सारे संसार के भौतिक सुख और ऐश्वर्य इन्द्रिय जनित तो हैं ही । इन ही को पाने की लालसा में वह मन की शांति नष्ट करता जा रहा है । जब वह अशान्त है, सम्पूर्ण समाज अशान्त होगा ही ।

दशधर्म :

सदा हमने दशलक्षण महापर्व की यात्रा की है । इसके पूर्व भी जीवन में कई बार हम इस बिन्दु से गुजर चुके हैं । आत्म स्वरूप की प्रतीति पूर्वक चारित्र की दस प्रकार से आराधना करना ही दशलक्षण धर्म है । ये दश धर्म नहीं, धर्म के दश लक्षण हैं । ये मनुष्य के चारित्रिक गुण की निर्मल पर्यायें हैं; तथापि प्रत्येक के साथ लगा हुआ उत्तम शब्द सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की अनिवार्य सत्ता को सूचित करता है । ये चारित्र गुण की निर्मल दशाएँ सम्यग्दृष्टि ज्ञानी आत्मा को ही प्रकट होती हैं ।

क्षमा :

क्षमा आत्मा का स्वभाव है । क्रोध व्यक्ति की स्वाभाविक कमजोरी है, जबकि क्रोध का अभाव ही क्षमा है । क्षमा नाम क्रोध की अनुपस्थिति का ही है । क्रोध के समान आत्मा का शत्रु कोई दूसरा नहीं । आत्मा की यह एक ऐसी विकृति है कि उसके कारण उसका विवेक बुद्धि, ज्ञान सभी नष्ट हो जाते हैं । इसकी उत्पत्ति का मूल कारण अपने अच्छे बुरे और सुख दुख का कर्ता पर पदार्थ को मानना । हम अपने रोज के जीवन में यही तो करते हैं, हमारी दृष्टि औरों के अवगुणों पर होती है, यदि वह 'स्व' पर टिकने लगे तो क्रोध अपने पर होगा । जैसा कि कबीर ने कहा है -

> बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।
> जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय ।

स्वयं को देखने-परखने से परिवार, व्यक्ति और समाज और देश सभी प्रभावित होंगे, तब आपस में प्रेम, करुणा, सरलता, आदि गुणों के स्रोत स्वतः ही खुलने लगेंगे ।

यदि हम ध्यान से देखें तो क्षमा सभी चारित्रिक गुणों की जन्मदात्री है । क्योंकि एक क्रोधजयी और क्षमा धारण करने वाले व्यक्ति में सभी गुण समग्रता से देखे जा सकते हैं । एक क्षमावान व्यक्ति के भाव और परिणाम सरल होंगे, उसमें मन, वचन और कर्म की मृदुता होगी, वह छल-कपट से दूर, साहसी और अहिंसक भी होगा । संयम की भावुक, सत्यव्रत के दर्शन भी उसके चरित्र में सहज ही दिखाई देने लगेंगे । इसके बाद कठोर तप-त्याग की साधना से जब आत्मा के शत्रु खदेड़ दिये जायेंगे तभी तो वह समता

भाव धारण कर क्षमा की उच्च शक्ति अर्जित कर सकेगा । अब उसकी आँखें आत्म पदार्थ की चिरशान्ति का अनुभव करने लगेगी और उसे लगेगा, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' 'सारे प्राणी मुझ जैसे ही हैं' यह समत्व भाव ही उत्तम क्षमा होगी ।

इस प्रकार अकेला क्षमा गुण वीरों का आभूषण है, वह इतना वजनदार और ठोस है कि सही अर्थों में उसे धारण किया जाय तो हमारी क्षमावाणी में दशों धर्म समा सकते हैं ।

अन्त में मैं यह कहूं कि जैन दर्शन विश्व की एक अमूल्य निधि है । इस अनमोल पारसमणि को पाकर भी हम भटक रहे हैं । इनका उपयोग हमारी तिजोरी या कपाट की शोभा बढ़ाने के लिये नहीं, अपितु सुन्दर, सुव्यवस्थित जीवन जीने के लिये होना चाहिये । जब हम इन का सिर्फ वाचन करने के बजाय पाचन भी करेंगे, जीवन में उतारेंगे तभी समाज में सन्तुलन की संभावना हो सकेगी ।

पूज्य आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज,

आदरणीय साहू साहब,

अध्यक्ष महोदय, भाईयो और बहिनों ।

सबसे प्रथम जैनधर्म और दर्शन के विषय में दृष्टिकोण स्पष्ट होना चाहिए । दृष्टिकोण ये कि जैनधर्म संसार मार्ग नहीं है, मोक्षमार्ग है । संसार के प्रेमियों के लिए जैनधर्म नहीं है, संसार से छूटने वालों के लिए जैनधर्म है । यहां सब बातें दूसरों से भिन्न हैं । भिन्न इस रूप में हैं । अपने से प्रश्न कीजिए हम किसके उपासक हैं ? वीतरागता के उपासक हैं । मैं जैनधर्म की सबसे पहली देन यही मानता हूं कि जैनधर्म ने मनुष्यों को देवी देवताओं के चक्कर से छुड़ाकर उसका लक्ष्य अपनी ओर किया, यह सबसे बड़ी विशेषता है । ज्ञानी मनुष्यों को बताया, देव तुमसे बड़े नहीं हैं । देव हमारी पर्याय के लिए तरसते हैं कि मनुष्य पर्याय धारण करें तो मोक्ष जायें । और हम मनुष्य होकर भी देव पर्याय के लिए तरसते हैं । सबसे पहला उलटापना तो यही है । वैदिक युग में देवों का प्राधान्य था । सबसे पहले इन्द्र-इन्द्र को सारे यज्ञ-याज्ञिक क्रियाकाण्ड का अधिकार प्राप्त था। जैनों ने क्या किया ? उस इन्द्र को भगवान् का द्वारपाल बनाकर खड़ा कर दिया । कोई कहे कि भगवान् तो सबसे बड़े हैं, इन्द्र उनका द्वारपाल है किन्तु जैनाचार्य कहते हैं

'इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते
तस्यैवेयं भवलय करीं । श्लाघ्यतामातनीति ।।

भगवन्, इन्द्र आपका द्वारपाल है इसलिये आप बड़े हैं । ऐसा नहीं है यह तो इन्द्र का सौभाग्य है आपकी सेवा करके/उसे मोक्ष पद प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हुआ है । यह इन्द्र का सौभाग्य है । उससे आपका बड़प्पन नहीं है । यह समझने के लिए जैनधर्म है । जो सब तरफ से मनुष्य की दृष्टि हटाकर एक ही ओर दृष्टि ले जाता है । सबसे बड़ी चीज यह है ।

अब दूसरी चीज समझिये अहिंसा । जैनधर्म कहता है बाहर में हिंसा होती ही नहीं । हिंसा बाहर से हुई ही नहीं । हिंसा की उपज (छाती पर हाथ रखकर) यहां से होती है । यदि अन्तरंग में हिंसा का भाव है और बाहर में हिंसा नहीं होती तब भी हिंसा है और बाहर में हिंसा हो भी गई किन्तु अन्तरंग में हिंसा का भाव नहीं है तो भी हिंसा नहीं है । इसलिए जैनों पर लोगों की यह आपत्ति रही है ।

जले जन्तुः थले जन्तुर्जन्तु पर्वत-मस्तके

जन्तुमालाकुले लोके कथ भिक्षुरहिंसकः ।

जन्तु सब जगह है - कोई साधु अहिंसक हो कैसे सकता है । अकलंक देव जवाब देते हैं -

सूक्ष्मान परिपोड्यन्ते प्राणिनः स्थूल-मूर्तयः
का हिंसा
ये शक्यास्ते विवर्ज्यन्ते/संयतात्मनः ।।

अर्थ - सूक्ष्म जीवों को तो पीड़ित किया नहीं जाता । रहे स्थूल प्राणी । जिनकी रक्षा शक्य है उनकी रक्षा की जाती है । संयमी पुरुष को हिंसा का पाप नहीं लगता ।

जैनधर्म की अहिंसा तथा जैन धर्म की तमाम अहिंसा पर के ऊपर निर्भर नहीं है, वास्तव में वह अपने ऊपर निर्भर है, जिसकी दृष्टि पर के ऊपर निर्भर है उसने जैनधर्म को समझा नहीं है और जिसने जैनधर्म को समझा आत्मनिर्भर बनाया वह जैनधर्म को ठीक तरह से समझता है । जैनधर्म का तमाम आचार विचार अहिंसा पर अवलम्बित है । आचार अंतर की चीज है - वह अहिंसा कहलाती है । वाद है । दर्शन शास्त्र के अन्दर जो स्याद्वाद या अनेकान्तवाद कहलाता है वह प्रकारान्तर से अहिंसा है । इस दृष्टि से जैनधर्म का विचार भी और जैनधर्म का आचार भी दोनों ही अहिंसा पर अवलंबित है । जो जितने अंश में मनसा, वाचा, कर्मणा अहिंसक है वह उतने अंश में जैन है । एक यह जैन की परिभाषा है । हम भगवान को पूजते हैं । यह विचित्र बात है । भगवान् तो वीतरागी है । निन्दा से नाराज नहीं होते, स्तुति से प्रसन्न नहीं होते । फिर ऐसे भगवान् को पूजे क्यों ? अरे, ऐसा भगवान् जो निंदा से नाराज नहीं होता और पूजने से प्रसन्न नहीं होता । वह तो मिट्टी का माधो हो गया । ऐसे भगवान् को क्या करें - आचार्य समन्तभद्र कहते हैं -

तथापि तव पुण्यगुणस्मृतिर्नः
पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ।

भगवन्, आपका स्तवन करने से हमारे मन की कालिमा हमारे मन का पाप शांत होता है इसलिए हम आपको स्तवन करते हैं ।

इस प्रकार से भगवान् जिनके हम उपासक हैं वीतराग देव हैं । जैनों ने ईश्वर को भी अंगूठा दिखला दिया और वेदों को भी अंगूठा दिखला दिया । सबसे बड़ी प्रामाणिकता की चीज ईश्वर और वेद रहे हैं । जैनों ने दोनों को ही अस्वीकार कर दिया । तब प्रश्न पैदा हुआ-आपका वचन प्रामाणिक कैसे ? ईश्वर निर्दोष है, वेद अपौरुषेय है । इनमें कोई दोष नहीं आ सकता । तीसरी शताब्दी में शबर स्वामी हुए और उन्होंने शबरभाष्य बनाया और लिखा -

चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टम्
इत्येवं जातीयकं अर्थमवगमयितुं अलम् ।

हमारे जो वेद हैं वह सूक्ष्म, व्यवहित, विप्रकृष्ट या जितने सूक्ष्म पदार्थ हैं उनको जना सकता है । उसी काल में समन्तभद्र का उदय होता है और समन्तभद्र आप्त-मीमांसा की रचना करते हुए कहते हैं -

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षा कस्यचिद् यथा,
अनुमेय त्वतोऽन्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ।

ये जितने सूक्ष्म पदार्थ हैं - अन्तरित पदार्थ हैं, दूरवर्ती पदार्थ हैं इनका कोई प्रत्यक्ष द्रष्टा है । इस प्रकार सर्वज्ञ की स्थिति मानें । पुरुष का ईश्वर ने और वेदने जो स्थान ले रखा था वह स्थान पुरुष को दिया । पुरुष को सर्वज्ञ बनाया और तब सर्वज्ञता की स्थापना की । तब पैदा हुए छठी शताब्दी में कुमारिल । उन्होंने सर्वज्ञता का खंडन किया । सार्वज्ञ्यं पुरुषस्य किम् ? ——

पुरुष तो सर्वज्ञ कैसे हो सकता है । खूब खंडन किया और अन्त में फिर पिलपिले हो गये तो कहते हैं, भाई,

धर्मज्ञत्वनिषेधस्तु केवलोऽत्रोपयुज्यते ।
सर्वमन्यद् विजानंस्तु पुरुषः केन वार्यते ।

आपका सर्वज्ञ दुनियाभर को जानें हमें कोई आपत्ति नहीं । किन्तु धर्म में तो वेद का ही अधिकार है । धर्मज्ञ पुरुष हो नहीं सकता ।

अकलंक देव और विद्यानन्द हुए - इन दोनों ने कुमारिल की आपत्तियों का निराकरण किया । सर्वज्ञसिद्धि को लेकर दो सरणि हुए - एक कुन्दकुन्द की सरणि और दूसरी समन्तभद्र की सरणि ।

कुन्दकुन्द को आप धर्म का प्रतिनिधि मान सकते हैं और समन्तभद्र को जैनदर्शन का प्रतिनिधि मान सकते हैं । ये दोनों खास आचार्य हैं । धर्म के विषय में कुन्दकुन्द और दर्शनशास्त्र के विषय में समन्तभद्र । कुन्दकुन्द प्रवचनसार में अपने ढंग से सर्वज्ञता की सिद्धि करते हैं । एक बात बतला दूं कि कैसे सर्वज्ञ बनता है - सर्वज्ञ कैसे बनता है । आप स्वयं देखें कि मैं मैं हूं क्या इतने से ही मैं मैं हो गया । नहीं, मैं ये नहीं हूं, मैं वो नहीं हूं । संसार के जितने अनन्त पदार्थ हैं, उन रूप मैं नहीं हैं तो मैं मैं हूं । मेरे अस्तित्व के लिए मेरा अस्तित्व और अनन्त पदार्थों का नास्तित्व मेरे अन्दर है तब मैं मैं हूं । मैं अपने को जानना चाहता हूं तो मुझे अपने को जानने के लिए अपने अस्तित्व के साथ अनन्त पदार्थों का जो नास्तित्व है वो भी जानना पड़ेगा, तब मैं अपने को पूर्ण रूप से जान सकूंगा । अतः जो एक को जानता

है वो सबको जानता है और जो सबको जानता है वो एक को जानता है । यह जैनदर्शन की थ्योरी है । अतः एक को जानने के लिए सबको जानना पड़ेगा । और सबको जानने के लिए एक को जानना यह है कुन्दकुन्द की थ्योरी सर्वज्ञता की । समन्तभद्र का तो तर्कशास्त्र है । इतने शब्दों के साथ मैं आपको दृष्टि देना चाहता हूँ कि जैनधर्म और दर्शन की जो दृष्टि है उसे समझियो पर-निर्भरता इसमें लेश नहीं है । भगवान् महावीर ने अपने साधु को नंगा कर दिया । दुनिया भर के सामने पर-निरपेक्ष । उसे आवास की आवश्यकता नहीं है, उसे वस्त्र की आवश्यकता नहीं है । उसे नाई या धोबी किसी की आवश्यकता नहीं है । आवश्यकता रही केवल भोजन की । जब यह रह गया - इसका कोई इलाज नहीं है । इसलिए उन्होंने इसका इलाज बता दिया कि किस तरह से होना चाहिये । बिना सम्यक्चारित्र के मोक्ष नहीं, बिना सम्यक्दर्शन के चारित्र नहीं ।

कीजे शक्ति प्रमाण शक्ति बिना श्रद्धा धरै
द्यानत श्रद्धावान् अजर अमर पद भोगवै ।।

तो वो श्रावक श्रावक है जो मुनि बनने की भावना रखता है । आज वो भले ही मुनि न बन सकता हो मगर मन के अन्दर भावना हो कि मैं मुनि बनूं । वह श्रावक धर्म का पालन करने वाला श्रावक है और जिसकी ये इच्छा नहीं है, वह श्रावक कहलाने योग्य नहीं है । मैं संसार में रमूं वह तो संसार में रमण करता है धर्म धारण करने पर भी । इसलिए पहले ही कह दिया। साइन बोर्ड लगा दिया - त्याग धर्म का । रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है -

सम्यक्दर्शनशुद्धः संसार-शरीरभोग-निर्विण्णः
पञ्चगुरुचरणशरणो दर्शनिक स्तत्वपथगृह्य. ।।

सबसे पहले दृष्टि की आवश्यकता है - शोधक को दृष्टि मिलनी चाहिए । जब शोध करने वाले को ये दृष्टि हो, दृष्टि सम्पन्नता हो तो काम चल सकता है और यदि स्याद्वाद को शायदवाद कहने वाला कोई रिसर्च स्कालर मिल गया तब तो बड़ा गड़बड़ हो जायेगा । स्याद्वाद क्या है - जैनियों का शायदवाद है, ऐसा न हो । ये जो चीज है, इसमें जो है कितने झगड़े ले लीजिये । निमित्त और उपादान का झगड़ा । उपादान आपा है और निमित्त पर है । यदि उपादान ही ठीक न हो तो निमित्त करेगा क्या ? द्रव्यलिङ्गी मुनि है मगर नवमें ग्रैवेयक से आगे जाने की शक्ति नहीं है । यहीं जो तत्त्वज्ञान का जन्म है, भाई साहब, वह तो खुद है । खुद को खुद ही मैं जान, तू खुद खुदा है । अपने से, अपने को अपने में जानो और अपने में अपने को प्राप्त करो । अपने को जानने के लिए पर का सहारा लेना पड़ता है और जब जान

लेता है तो पर छूट जाता है । आज जो है दृष्टिसम्पन्नता की जरूरत है । जैसे रिसर्च वगैरा है वह सब युनिवर्सिटी के लिए करते हैं । वे लोग जिनके अन्दर काम करते हैं वे जैनधर्म का अ, आ, इ, ई वगैरा भी नहीं जानते । हम तो आश्चर्य की बात करते हैं । जब लड़के आते हैं तो उनको ले लेते हैं और विषय बताने वाला उनको कुछ नहीं रह जाता । सवाल ये है कि जब तक पढ़ने वाले अपने विषय को ध्यानपूर्वक नहीं पढ़ेंगे तब तक वह विषय आ नहीं सकता । तो जैनधर्म की जो चीज है, जैन सिद्धांत की है, इसकी मौलिक बातें दृष्टि में आना चाहिये ।

हम हिन्दू धर्म के बीच में रहते हैं । उनकी बहुसंख्या है और हमारी अल्प संख्या है और उनके साथ हमारा रहना-सहना, खाना-पीना, जिन्दगी बीत गई । उनके ईश्वरवाद ने हमारे भगवान् में ईश्वरवाद ला दिया । हम अपने भगवान् को भी ईश्वर का दूसरा अवतार मानने लगे । उनके देवी देवता हमारे भी देवी देवता बनकर बैठ गये । जहाँ जिनेन्द्रदेव - वीतरागी भगवान् का सहारा हो वहाँ देव कर क्या सकता है । भगवान् तो कुछ करता नहीं है । शासन देवताओं को मानो तो, देंगे । क्या स्थिति है जैनधर्म के अन्दर शासन देवताओं की । जैनधर्म के अन्दर देव, आदि वस्तु का स्वरूप ऐसा बताया - कोई शरण की आवश्यकता ही नहीं है । उसका स्वरूप तो ऐसा है कि कोई त्रिकाल में कभी नष्ट नहीं हो सकता । मैंने कहा कि शरण की आवश्यकता ही नहीं है । शरण तो एकमात्र जिनेन्द्रदेव की है । वे तुझे संसार बंधन से छुड़ा देंगे और डूबना हो तो संसार में बहुत देवी देवता भरे पड़े हैं । संसार में डूबने के लिए बहुत हैं किन्तु तारणहारा एक है । आप संसार में डूबना चाहते हैं या उतरना चाहते हैं ऐसा प्रश्न कीजिये । डूबना चाहते हैं तो बहुत से देवी देवता हैं और उतरना चाहते हैं तो एक ही देवता है । यह श्रद्धा रखकर जैनधर्म को समझिये - कीजिये । तब हम सच्चे जैनी बन सकेंगे। अभी तो हम नाम के जैनी हैं ।

जैनधर्म और दर्शन : उपलब्धियाँ तथा मालव क्षेत्र में उनके शोध की सम्भावनाएँ

- डा0 हरीन्द्रभूषण जैन, उज्जैन

जैनधर्म और दर्शन की उपलब्धियों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं - सिद्धान्त, साहित्य तथा आधुनिक शोध संबंधी ।

1. सैद्धान्तिक उपलब्धियाँ

जैनधर्म और दर्शन की सैद्धान्तिक उपलब्धियाँ अनेक हैं, फिर भी अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त, ये तीन सिद्धान्त उनमें सर्वातिशायी हैं । अपरिग्रह अथवा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि अहिंसा के क्रियात्मक (Practical) रूप हैं, और अनेकान्त उसका सैद्धान्तिक (Theoretical) रूप है । इस प्रकार जैनधर्म अहिंसा पर आधारित है और जैन दर्शन अनेकान्त पर ।

यद्यपि प्रत्येक धर्म अहिंसा को महत्त्व प्रदान करते हैं; किन्तु जैनधर्म में उसे जैसा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है तथा उसका जैसा सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन है वैसा अन्यत्र नहीं । मानव ही नहीं जीवमात्र के कल्याण की जो भी प्रशस्ततम रूपरेखा संभाव्य है, वह सब अहिंसा में समाविष्ट है । वस्तुतः अहिंसा, मानवकल्याण एवं विश्वशान्ति का अमृत-कलश है ।

आज, विश्व में चिरन्तन शान्ति एवं कल्याण के लिए वर्गभेद रहित समाज (Class-less Society) की प्रबलरूप से चर्चा है । अपरिग्रह, ऐसे समाज के निर्माण में अपूर्व योगदान कर सकता है । अनेकान्त की विचारधारा, विश्व के समस्त राष्ट्रों को एक दूसरे के निकट लाकर उनमें विश्वबन्धुत्व, परस्पर सद्भाव एवं स्नेह की भावना उत्पन्न कर विश्वशान्ति का आधार बन सकती है ।

किन्तु जैनधर्म की इन महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का जितना प्रचार-प्रसार विश्व-शान्ति के लिए आवश्यक है, उतना, हम अभी तक नहीं कर सके ।

2. साहित्यिक उपलब्धियाँ

षट्खण्डागम और कसायपाहुड : प्रथम उपलब्धि

जैन धर्म और दर्शन की साहित्यिक उपलब्धियाँ अगणित हैं । हमारा दुर्भाग्य है कि अंग और पूर्व, जिन्हें इन्द्रभूति गौतम गणधर ने तीर्थंकर महावीर की धर्म-देशना के आधार पर निबद्ध किया था, यथार्थ रूप में हमें उपलब्ध न हो सके । फिर भी यह कम संतोष की बात नहीं है कि उनका कुछ थोड़ा सा भाग 'षट्खण्डागम' तथा

'कसायपाहुड' के रूप में यथार्थतः हमें प्राप्त हो सका। यद्यपि ये ग्रन्थराज दक्षिण में कर्नाटक प्रान्त के मूडबिद्री नामक स्थान की जिन-वसति में कन्नड़ लिपि में ताड़पत्रों पर रक्षित थे किन्तु कन्नडलिपि का नागरीलिप्यन्तरीकरण तथा उनका हिन्दी अनुवाद भगीरथ प्रयत्नों के पश्चात् आज से लगभग तैंतालीस वर्ष पूर्व संभव हो सका।

'षट्खण्डागम' का धवला टीका एवं हिन्दी अनुवाद के साथ देवनागरीलिपि में 16 जिल्दों में प्रकाशन, डा0 हीरालाल जैन के प्रधान संपादकत्व में 'श्रीमन्त सेठ सिताबराय लक्ष्मीचन्द्र जैन साहित्य शीर्षक सिद्धान्त ग्रन्थमाला, अमरावती-विदिशा' द्वारा 1939 में हुआ। तत्पश्चात् 1944 में 'कसायपाहुड' का जयधवला टीका एवं हिन्दी अनुवाद 9 जिल्दों में प्रकाशन, पं0 कैलाशचन्द्र शास्त्री तथा पं0 फूलचन्द्र शास्त्री के संपादकत्व में, दिगम्बर जैन संघ, चौरासी, मथुरा द्वारा हुआ। इन दोनों आगम-ग्रन्थों के प्रकाशन को, मैं, जैनधर्म-दर्शन को आधुनिक युग की सबसे प्रथम महत्तीय उपलब्धि मानता हूँ।

इस प्रसंग में मैं एक बात की ओर आप लोगों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ कि ये दोनों महाग्रन्थ तीर्थंकर महावीर की देशना से निबद्ध बारहवें अंग 'दृष्टिवाद' के ही यथार्थ-मौलिक अंश हैं। डा0 हीरालाल जैन ने 'षट्खण्डागम की प्रस्तावना (प्रथम जिल्द पृ0 78, संशोधित संस्करण) में अनेक युक्तियों के साथ इस बात का समर्थन किया है। जैन विद्या के प्रसिद्ध मनीषी डा ए.एन. उपाध्ये ने भी 'अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्य विद्या सम्मेलन' - (International Oriental Conference) के 26वें देहली अधिवेशन में अपने शोध-पत्र 'The Problem of the Pūrvas : Their Relics Traced' में विस्तार के साथ इसी बात का समर्थन किया है।

प्रसिद्ध जर्मन जैन विद्या मनीषी, यशःशेष, डा. लुडविग अलसडोर्फ (Dr. Ludwig Alsdorf) इस बात से सहमत नहीं है कि 'षट्खण्डागम' और 'कसायपाहुड' विलुप्त 'दृष्टिवाद' अंग के अंश हैं। उन्होंने यह बात 'German Scholars on India' - (चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1973) नामक ग्रन्थ में प्रकाशित अपने निबन्ध 'What were the contents of Drstivada' (पृ0 2) में कही है।

'आचाराङ्ग' का जर्मन भाषा में प्रकाशन : द्वितीय उपलब्धि

'प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, लन्दन' ने 1882 में प्रसिद्ध जर्मन प्राच्य विद्या मनीषी डा0 हर्मन याकोबी (Dr. Harman Jacobi) - द्वारा सम्पादित एवं जर्मन भाषा में अनूदित 'आचाराङ्ग-सूत्र' का रोमन लिपि में प्रकाशन किया। पश्चात् डा0 याकोबी के शिष्य वाल्टर शूब्रिंग ने आचाराङ्ग के डा0 याकोबी

के जर्मन अनुवाद का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया जो लाइपुत्सिग (LIPZIG - जर्मनी) से 1910 में 'The Secred Books of the East Series' - की 22वीं जिल्द में प्रकाशित हुआ ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन से समस्त विश्व में जैन धर्म और दर्शन का अभूतपूर्व प्रचार हुआ । साथ ही इस ग्रन्थ ने विदेशों में जैन धर्म के अध्ययन, अध्यापन एवं शोध की नींव डाली । डा० याकोवी ने इस ग्रन्थ की विस्तृत भूमिका में जैन धर्म की स्वतंत्र सत्ता सिद्ध करते हुए तीर्थंकर नेमिनाथ एवं महावीर को ऐतिहासिक महापुरुष सिद्ध किया । इससे देश-विदेश में जैन धर्म के विषय में फैली हुई अनेक भ्रान्तियों का भी निराकरण हुआ । इस ग्रन्थ को मैं जैनधर्म-दर्शन की द्वितीय उपलब्धि के रूप में ग्रहण करता हूँ ।

'अभिधान राजेन्द्र कोश' 'तथा पाइय सद्द महण्णवो' : तृतीय उपलब्धि

'अभिधान राजेन्द्र कोश' श्री मद् विजय राजेन्द्र सूरि की रचना है । 1913 से 1934 तक, सात जिल्दों में 9,200 पृष्ठों में इसका प्रकाशन, श्री अभिधान राजेन्द्र प्रचार सभा, रतलाम से हुआ । इसमें 60,000 शब्दोंकी विस्तृत विवेचना है । 97 ग्रन्थों का संदर्भ लेकर इसकी रचना की गई । प्रसिद्ध भाषाशास्त्री जार्ज ए. ग्रियर्सन, पौरपीय महान् चिन्तक प्रो० सिल्वन लेवी, जैन विद्या के जर्मन मनीषी वाल्टर शुब्रिंग, विख्यात दार्शनिक डा० सर्वपल्लि राधाकृष्णन, सुप्रसिद्ध जैन संशोधक डा॰ हीरालाल जैन आदि ने 'अभिधान राजेन्द्र' के विशद सात भाग देखकर भारतीय ज्ञान गाम्भीर्य के विभोदधि - श्री राजेन्द्र सूरि की इस चमत्कार पूर्ण अद्वितीय सृजन क्षमता के प्रति सहज ही नतमस्तक हो गया है ।''

इसी प्रकार सेठ हरगोविन्द दास द्वारा संपादित एवं 'प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी' द्वारा प्रकाशित (पाइयसद्द-महण्णवो' - प्राकृत शब्दकोश भी अद्वितीय एवं महत्त्वपूर्ण है । इन दोनों कोश ग्रन्थों ने जैन धर्म-दर्शन के अध्ययन एवं शोध को वल प्रदान किया । इसे मैं जैन साहित्य की तृतीय उपलब्धि के रूप में स्वीकार करता हूँ ।

भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना : चतुर्थ उपलब्धि

समादरणीय, यशः शेष, साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा 1944 में 'भारतीय ज्ञानपीठ' की स्थापना और उसके अन्तर्गत श्रीमती रमारानी जैन द्वारा, माता मूर्तिदेवी की पावन स्मृति में 'ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला' की स्थापना को मैं जैन साहित्यके क्षेत्र में अतिशय महत्त्वपूर्ण मानता हूँ । इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत अभी तक लगभग एक सौ, प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड तमिल आदि भाषाओं के आगमिक, दार्शनिक

पौराणिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और अभी भी हो रहा है ।

ज्ञानपीठ के आद्य व्यवस्थापक के रूप में डा० महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य की नियुक्ति और उनके द्वारा सम्पादित, न्यायकुमुदचन्द्र (दो भाग) न्याय विनिश्चय विवरण (दो भाग), अकलंक ग्रन्थत्रय, प्रमेयकमलमार्तण्ड, तत्वार्थवार्तिक (दो भाग) तत्वार्थवृत्ति एवं सिद्धिविनिश्चय टीका (दो भाग) का ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशन, जैन साहित्य के क्षेत्र में ऐतिहासिक घटना के रूप में स्मरण किए जायेंगे ।

डा० महेन्द्र कुमार जैन ने 'सिद्धिविनिश्चयटीका' (भाग 1-2) के सम्पादन अपनी विलक्षण एवं विचक्षण प्रतिभा का परिचय दिया । जैन न्याय के प्रतिष्ठापक आचार्य भट्ट अकलंकदेव की पूर्णतः लुप्त 'सिद्धिविनिश्चय' नामक कृति का, कच्छ से प्राप्त अनन्त-वीर्य कृत संस्कृत टीका की एक मात्र पाण्डुलिपि के आधार पर, मूल ग्रन्थ का पूरा उद्धार, संशोधन एवं सम्पादन कर उन्होंने 'सिद्धिविनिश्चय' को जीवन दान दिया ।

भारतीय ज्ञानपीठ के कुछ अधोलिखित प्रकाशन महत्वपूर्ण हैं :-

1. महाबन्ध (प्राकृत-हिन्दी), 2. षड्दर्शन समुच्चय (हरिभद्रसूरि) 3. जैन न्या (हिन्दी पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री) 4 पंचास्तिकाय-सार (संपादक - डा. ए.एन. उपाध्ये), 5. सागार एवं अनगार धर्मामृत (हिन्दी टीका - पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री) 6. महापुराण (भाग-3 अपभ्रंश - हिन्दी, सम्पादक - डा. देवेन्द्रकुमार जैन) 7-9. पद्मपुराण, हरिवंशपुराण तथा उत्तरपुराण (संस्कृत-हिन्दी - सम्पादक - डा० पन्नालाल साहित्याचार्य 10. जैन कला और स्थापत्य, Jaina Art and Architecture 11. रिलीजन एंड कल्चर आफ दी जैनस् - डा० ज्योति प्रसाद जैन (Religion and Culture of the Jains) 12. कोस्मोलाजी ओल्ड एंड न्यू - प्रो० जी.आर. जैन (Cosmology Old and New) 13. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ - डा० देवेन्द्र कुमार शास्त्री 14 अन्तर्द्वन्द्वों के पार - श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन तथा कन्नड़ भाषा का 'वर्धमान पुराणम्' (आधुनिक कन्नड़ अनुवाद - प्रो० टी.एस. शामराव ।

अन्य उपलब्धियाँ

जैन धर्म और दर्शन की कुछ प्रधान साहित्यिक उपलब्धियाँ निम्न प्रकार हैं :

1. डा. विन्टरनित्स का ' History of Indian Literature ' के तृतीय खण्ड का जैन धर्म संबंधी (250 पृष्ठ का) विभाग ।
2. श्री बाबू छोटेलाल जैन का 'जैन बिब्लियोग्राफी' का प्रथम खण्ड
3. श्री नाथूराम प्रेमी का 'जैन साहित्य और इतिहास' (1942)
4. डा० महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य का 'जैन दर्शन' (1955)

5. डा0 जगदीशचन्द्र जैन का 'प्राकृत साहित्य का इतिहास' (1961)
6. जैन शिलालेख संग्रह (5 भाग - श्री विजयमूर्ति जैन)
7. जैन दर्शन - मनन और मीमांसा , मुनिनथमल (1962)
8. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा नेमिचन्द्र शास्त्री, 1966
9. जैन धर्म, पं कैलाशचन्द्र शास्त्री
10. Mahavira and His Times ., डा कैलाशचन्द्र जैन
11. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (4 भाग) डा नेमिचन्द्र शास्त्री 1974
12. जैन साहित्य का इतिहास, पं कैलाश चन्द्र शास्त्री (दो भाग) 1976
13. जैन लक्षणावली (तीन भाग) पं बालचन्द्र सि0 शास्त्री ' 1979
14. अंग सुत्ताणि (3 भाग) आचार्य तुलसी एवं मुनि नथमल, वि सं 2031(1974)
15. जैन न्याय का विकास, मुनि नथमल, 1976
16. महावीर जैन विद्यालय, बंबई द्वारा ' जैन आगम- ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित अंग - उपांग सूत्र
17. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश (3 भाग) , श्री जैनेन्द्र वर्णी
18. समणसुत्तं, श्री जैनेन्द्र वर्णी द्वारा सम्पादित
19. जैन दर्शन और प्रमाण शास्त्र परिशीलन - डा दरबारी लाल कोठिया, 1980
20. मेरी जीवन गाथा, श्री गणेश प्रसाद वर्णी

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रकाशन संस्थाओं के जैनधर्म एवं दर्शन संबंधी प्रकाशन भी महत्वपूर्ण हैं -

1. आगमोदय समिति, सूरत व बंबई
2. आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन
3. अखिल भारत-वर्षीय दि0 जैन विद्वत्परिषद, उज्जैन
4. आदर्श साहित्य संघ, चुरू (राजस्थान)
5. गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी
6. चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी
7. जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर
8. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर
9. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर
10. जैन सिद्धान्त भवन, आरा
11. जैन विश्वभारती, लाडनूं

12. दि॰ जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़
13. देवचन्द्र लाल भाई पुस्तकोद्धारफण्ड, बम्बई व सूरत
14. दिग॰ जैन संघ, चौरासी, मथुरा
15. निर्णय सागर प्रेस, बंबई
16. तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी
17. प्राकृत टैक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी
18. माणिकचन्द्र दिग॰ जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
19. मूर्ति देवी ग्रन्थमाला (भारतीय ज्ञानपीठ के अन्तर्गत)
20. मोतीलाल बनारसीदास, देहली, वाराणसी, पटना
21. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, भावनगर
22. रायचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बंबई
23. रायल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन
24. लालभाई दलपतभाई, भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद
25. वीर सेवा मन्दिर, देहली
26. वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी
27. वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर
28. सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा
29. सिंघी जैन ग्रन्थमाला (भारतीय विद्या भवन, बंबई)
30. हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई
31. आगम अनुयोग प्रकाशन, सांडेराव (राजस्थान)
32. अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर
33. सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर
34. कुन्दकुन्द भारती प्रकाशन, देहली
35. प्रेम जिनागम प्रकाशन समिति, घाटकोपर, बंबई
36. जैन साहित्य विकास मण्डल, बंबई
37. केशर कस्तूर स्वाध्याय समिति, आगरा
38. जैन साहित्य शोध संस्थान, महावीर भवन, जयपुर
39. पं॰ टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, बापूनगर, जयपुर
40. श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी
41. श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)
42. श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

43. जयध्वज प्रकाशन समिति, मद्रास
44. सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ
45. अखिल भारतवर्षीय दि० जैन शास्त्री परिषद्, बड़ौत
46. आचार्य विनय सागर ज्ञान भंडार, जयपुर
47. अखिल विश्व जैन मिशन, एटा
48. त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर
49. आचार्य आत्माराम जैन प्रकाशन समिति, लुधियाना
50. श्वेताम्बर जैन कान्फ्रेंस, बंबई

3. शोधात्मक उपलब्धियाँ

इसे हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं - जैन धर्म-दर्शन का अध्ययन - अध्यापन एवं शोध विदेश में तथा भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं शोध संस्थानों में ।

विदेश में जैन विद्या की शोध

भारत के बाहर जर्मनी, जापान, रूस, अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रांस, बेल्जियम, फिनलैण्ड आदि देशों में प्राकृत और जैन विद्या का अध्ययन और शोध हो रहा है ।

Wissen Schaftliche Buch gesell Schaft (Darmstadt) द्वारा प्रकाशित 'Introduction to Indian Studies' नामक ग्रन्थ में Dr. Gustov Roth ने Dr. Heinz Bechert के साथ 'Contribution on Jainism and Jain Literature' नामक एक निबन्ध लिखा है जो जर्मनी में जैन विद्या के अध्यापन एवं शोध की वर्तमान स्थिति पर अच्छा प्रकाश डालता है ।

फैडरल रिपब्लिक आफ जर्मनी के Goettingen University के 'भारतीय एवं बौद्ध विद्या विभाग' में प्राकृत एवं जैन धर्म का नियमित अध्यापन होता है जिसे प्राकृत एवं जैनधर्म के विशिष्ट विद्वान Dr. Gustov Roth करते हैं ।

जर्मनी के अन्य जैन विद्या विशेषज्ञ हैं - 1. 'Bonn University' के प्राच्य विद्या विभाग' के आचार्य Prof. Dr. Claus Fischer, 2. बर्लिन में गत 15 वर्षों से जर्मन पुस्तकालयों में विद्यमान जैन पाण्डुलिपियों पर शोध करने वाले डा० चन्द्रभाल त्रिपाठी, 3. पश्चिम जर्मनी (बर्लिन) के Freiburg Universi[illegible] के प्राच्य विद्या विभाग के आचार्य Dr. Vlrich- Schneider, तथा 4. प्रसिद्ध 'जैन विद्या मनीषी' स्व० डा० Alsdorf के शिष्य

Dr. Claus Bruhn - (बर्लिन यूनिवर्सिटी)

जापान में जैनदर्शन के अध्ययन का प्रचार करने का श्रेय Dr. E. Nakamura जी है । वे Risso University में सम्मानित आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित हैं । उन्हें जर्मनी के प्रसिद्ध जैन विद्या मनीषी, डा याकोबी के शिष्य होने का गौरव प्राप्त है ।

जापान में जैन विद्या के अन्य विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं :-

1. जर्मनी के जैन विद्या मनीषी डा शूब्रिंग के शिष्य Dr. S. Matsunami (Risso University) 2. Dr. H. Nakamura 3. Shri Nagasaki (सहायक आचार्य, Otani University) - ये नालंदा में डा सत्कारी मुखर्जी के शिष्य रहे हैं और इन्होंने आचार्य हेमचन्द्र की 'प्रमाण मीमांसा' का जापानी भाषा में अनुवाद किया है, 4. Dr. S. Okuda (सहा० आचार्य - Shtennoji Women's College) ये डा एल आल्सडोर्फ के शिष्य हैं और इन्होंने जर्मन भाषा में ' Eine Digambara - Dogmatik ' - नामक ग्रन्थ लिखा है, जिसे ' Franz Steiner Verlego ' ने प्रकाशित किया है । 5. डा नथमल टाटिया, के शिष्य Shri Taiken Hanaki , - इन्होंने 'अनुयोग द्वार' का अंग्रेजी अनुवाद किया है, जो वैशाली जैन इंस्टीट्यूट से प्रकाशित है । 6. डा ए.एन उपाध्ये की शिष्या Miss S. Ohira 7. Tokai University के सहायक आचार्य Shri Tsuchihashi 8. हिरोशिमा विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के अध्यक्ष Prof. Dr. Atsusi Uno ये पं दलसुख मालवणिया के शिष्य हैं, इन्होंने 'स्याद्वाद मंजरी' का जापानी भाषा में सटिप्पण अनुवाद किया है ।

रूस में प्राकृत तथा जैनधर्म पर शोध कार्य हो रहा है । विशुद्ध भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से प्राकृत पर शोध करने वालों में उल्लेखनीय नाम है - Mme Margaret Vorobyeva Desyatovskaya (Leningrad Branch of Institute of Oriental Studies), Mme Tatiana Katenina, Ph.D. (Leningrad University, Department of Indian Philologies).

रूस में जैनधर्म पर शोध कार्य करने वाले अन्य विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं:- 1. रूसी भाषा में उपलब्ध जैन धर्म की एक मात्र पुस्तिका की लेखिका Mme Natalie Guseva, Ph.D. (Institute of Ethnography, Moscow), 2. Mr. Andrey Terentyev. (Institute of History of Religions,

ये जैनधर्म के इतिहास तथा तत्त्वार्थ सूत्र पर शोध कार्य कर चुके हैं । 3. Institute of Oriental Studies, Moscow में भारतीय विद्या के आचार्य Prof. Dr. Igor-D. Serebriankov, इन्होंने आचार्य हरिभद्र के धूर्ताख्यान का रूसी भाषा में अनुवाद किया है और नौ जिल्दों में प्रकाशित 'Short Literary Encyclopaedia' में 'Jain Literature ' पर निबन्ध लिखा है ।

अमेरिका में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के 'साउथ एशियन स्टडीज' विभाग के आचार्य प्रो० पद्मनाभ एस० जैनी जैनधर्म के विशेषज्ञ एवं शोधकर्ता हैं ।

कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, इंगलैण्ड, के प्राच्य विद्या विभाग के आचार्य Dr. K. R. Norman पालि तथा प्राकृत भाषाओं के विद्वान हैं ।

पेरिस विश्वविद्यालय, फ्रान्स के 'जैन एवं बौद्ध दर्शन विभाग' की शोध निदेशिका Dr. (Smt.) Colette Caillat - प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं तथा जैनदर्शन की विदुषी हैं । वे अनेक वर्षों से जैन दर्शन पर शोध कार्य कर रही हैं ।

बेल्जियम के State University of Gheut के भारतीय विद्या विभाग के आचार्य Prof. Dr. J.A.C. Deleu जैनदर्शन के अद्वितीय विद्वान हैं । ये डा० शूब्रिंग के शिष्य हैं । इनके जैन धर्म संबंधी अनेक शोध कार्य प्रकाशित हैं ।

फिनलैण्ड निवासी Dr. Unto Tahtinen, University of Toronto में रीडर के पद पर कार्य कर रहे हैं । इन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग से पी-एच.डी. प्राप्त की थी । इन्होंने 'Ahimsa - Non Violence in India Tradition' नामक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है । जो Rider and Co. London से 1976 में प्रकाशित हुआ था । इस ग्रन्थ में इन्होंने जैन ग्रन्थों से उद्धरण लेकर भारतीय परम्परा में अहिंसा की प्रतिष्ठा को सिद्ध किया है ।

भारत में जैन धर्म दर्शन का अध्यापन और शोध

भारतवर्ष के अनेक विश्वविद्यालयों के दर्शन, संस्कृत, पाली-प्राकृत, प्राचीन भारतीय इतिहास - संस्कृति एवं पुरातत्व विभागों में सामान्यतः जैनदर्शन, प्राकृत जैन वाङ्मय एवं जैन कला संस्कृति तथा पुरातत्व का अध्यापन एवं शोध नियमित क्रम से होता है । यदि अध्यापक जैन दर्शन एवं पुरातत्व के विशेषज्ञ हैं तो जैन शोध की संभावनाएँ अधिक रहती हैं ।

भारतीय ज्ञानपीठ ने 1968 में 'अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन'

के 24 वें वाराणसी अधिवेशन पर आयोजित एक जैन विद्या संगोष्ठी के प्रसंग में देश विदेश में होने वाले जैन शोध का एक अच्छा सर्वे किया था जो ज्ञानपीठ पत्रिका के अक्टूबर 1968 के वर्ष 7 अंक 3 में प्रकाशित है । इसमें, विश्वविद्यालयों में जैन वाङ्मय का अध्यापन, भारतीय विश्वविद्यालयों में सम्पन्न जैन साहित्य और संस्कृति विषयक शोधकार्य (शोधकर्ता का नाम, पता, विषय तथा उपाधि के विवरण सहित) विश्वविद्यालयों में शोध कार्य के लिए रजिस्टर शोधकर्ताओं के विषय, नाम उपाधि आदि तथा विदेश में जैन विद्या पर शोध करने वाले लगभग 34 विद्वानों के नाम, पते तथा उनके शोध विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है ।

इस सर्वे से जो बात ध्वनित होती है वह यह है कि आगरा, इन्दौर, इलाहाबाद, उदयपुर, कुरुक्षेत्र, जबलपुर, दिल्ली, धारवाड़, मगध तथा राजस्थान के विश्वविद्यालयों में एवं वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी एवं विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में जैन विद्या पर पर्याप्त शोध कार्य हुआ है और हो रहा है । पी-एच.डी. एवं डी.लिट्. के लिए संपन्न ऐसे अनेक शोधकार्यों का प्रकाशन भी हो चुका है जिनमें डा. के.के. हन्दिकी का 'यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर', डा. जगदीशचन्द्र जैन का 'लाइफ इन ऐंशेंट इण्डिया एज डेपिक्टेड इन दी जैन कैनन्स' डा. नेमिचन्द्र शास्त्री का 'संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान' डा. कैलाशचन्द्र जैन का 'जैनिज्म इन राजस्थान' तथा डा. दरबारी लाल कोठिया का 'जैन तर्क शास्त्र में अनुमान विचार' महत्त्वपूर्ण है ।

विश्वविद्यालयों में जैन विद्या विभागों की स्थापना तथा शोध

सबसे पहले बिहार सरकार ने श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन के सहयोग से प्राकृत तथा जैनधर्म के उच्च अध्ययन के लिए 'प्राकृत जैन शास्त्र और अहिंसा शोधपीठ' की स्थापना, वैशाली में करके, उसके आद्य निदेशक के पद पर स्वनामधन्य डा. हीरालाल जैन को प्रतिष्ठित किया था । तदनन्तर डा. गुलाबचन्द्र चौधरी एवं डा. नथमल टाटिया के निदेशक काल में संस्थान ने अच्छी प्रगति की । किन्तु कुछ वर्षों से योग्य निदेशक के अभाव में संस्थान की प्रगति अवरुद्ध प्रतीत होती है ।

तत्पश्चात् डा. ए.एन. उपाध्ये के प्रयत्न से उन्हीं के प्रथम निदेशकत्व में मैसूर विश्वविद्यालय में जैन विद्या विभाग की स्थापना हुई । इसके बाद 1977 में पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, 1978 में उदयपुर विश्वविद्यालय तथा 1978 में ही पूना विश्वविद्यालय में जैन विद्या विभागों की स्थापना हुई । राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में जैन अध्ययन केन्द्र स्थापित है किन्तु स्वतंत्र एवं योग्य निदेशक के अभाव में वहाँ की प्रगति भी अवरुद्ध है ।

इनके अतिरिक्त श्री लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर,

अहमदाबाद', श्री पार्श्वनाथ जैन शोध संस्थान वाराणसी, श्री गणेशवर्णी जैन शोध संस्थान वाराणसी, विश्वविद्यालयों के शोध कार्य में पूरा पूरा सहयोग प्रदान करते हैं। श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली में जैन दर्शन के अध्ययन और शोध की पूर्ण व्यवस्था है। 1977 में दिग० जैन कालेज बड़ौत ने 'उपाध्याय विद्यानन्द जैन शोधपीठ' की स्थापना की थी।

दक्षिण भारत में शोध कार्य

प्रसन्नता की बात है कि 21 मई, 1978 को जैन संस्कृति के प्राचीन केन्द्र मूडबिद्री (कर्नाटक) में साहू परिवार के आर्थिक सहयोग से 'श्रीमती रमारानी जैन रिसर्च इंस्टीट्यूट' तथा 'साहू शान्तिप्रसाद जैन भवन' का उद्घाटन हुआ।

मूडबिद्री के जैनमठ के भट्टारक, पण्डिताचार्य श्री चारुकीर्ति, एम.ए., पी.एच. डी., जैन दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। जैन धर्म-दर्शन के शोध कार्य में उन्हें उत्साह और रुचि है। उक्त संस्थान उन्हीं की पुण्य प्रेरणा से प्रसूत है।

हम आशा करते हैं कि श्री भट्टारक चारुकीर्ति महाराज के संरक्षण में मूडबिद्री जैन साहित्य प्रणयन और संरक्षण के प्राचीन गौरव को प्राप्त करते हुए, जैनशोध का एक ऐसा ज्वलन्त केन्द्र बनेगा जिससे न केवल दक्षिण या उत्तर भारत अपितु समस्त विश्व आलोकित हो उठेगा।

मालव क्षेत्र में जैन शोध की संभावनाएं

जैन संस्कृति की दृष्टि से मालव क्षेत्र, अत्यन्त प्राचीन एवं समृद्ध है। विशेषतः उज्जयिनी एवं धार नगरियाँ तथा उनके आसपास का क्षेत्र, जैनतीर्थ, जैन पुरातत्व तथा जैन संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य की दृष्टि से वैभवशाली रहे हैं और अभी भी हैं।

प्राकृत भाषा के विकास की दृष्टि से धारनगरी का बड़ा महत्व है। 11 वीं शती के महाराज भोज के शिलालेखों में महाराष्ट्री प्राकृत की प्रचुरता है। प्राकृत और संस्कृत जैन साहित्य का निर्माण भी धारनगरी में विपुल मात्रा में हुआ है। पं० आशाधर एवं अनेक जैनाचार्य इस मालवभूमि की देन हैं।

उज्जयिनी अति प्राचीन काल से शिक्षा एवं संस्कृति का केन्द्र रही है। मात्र इसी दृष्टि को लक्ष्य में रखकर यहाँ विक्रम विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी थी।

जैन शोध की प्रवृत्तियाँ

मालव क्षेत्र के दो प्रमुख स्थानों- उज्जयिनी एवं इन्दौर में जैनधर्म, दर्शन

एवं संस्कृति के शोध के प्रयत्न चालू हैं । दोनों स्थानों के विश्वविद्यालयों में जैन विद्या के मर्मज्ञ एवं जैन विद्या में पीएच.डी., डी.लिट् प्राप्त अनेक विद्वान कार्यरत हैं, जिनके माध्यम से जैन धर्म, दर्शन, पुरातत्व, प्राकृत एवं अपभ्रंश के क्षेत्र में पर्याप्त शोधकार्य हुआ है और संप्रति हो रहा है ।

इस क्षेत्र में जैन विद्या पर स्वयं कार्य करने वाले तथा अपने छात्रों से एम.ए., पी.एच.डी., डी. लिट्. आदि उपाधियों के लिए जैन शोध कराने वाले कुछ विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं :-

1. डा. देवेन्द्र कुमार जैन, इन्दौर (इनके सेवा निवृत्त होने से संप्रति जैन शोध के लिए इनका विशेष लाभ लिया जा सकता है । 2. डा. कैलाशचन्द्र जैन, उज्जैन 3. डा. देवेन्द्र कुमार शास्त्री, नीमच 4 डा. नेमीचन्द्र जैन, इन्दौर 5 डा. राममूर्ति त्रिपाठी उज्जैन 6. डा. वि0 श्री वाकणकर, उज्जैन 7. डा. बी. डी. राघवाडे, उज्जैन 8. डा. हरीन्द्र भूषण जैन, उज्जैन 9. डा. सुरेन्द्र आर्य, उज्जैन 10 10 डा. तेजसिंह गौड़, उज्जैन 11. डा. भगवतीलाल राज पुरोहित, उज्जैन तथा 12. डा. जमनालाल जैन, इन्दौर ।

इनके अतिरिक्त यहाँ कुछ प्राचीन परम्परा के पण्डित भी हैं जिनसे जैन शोध में सहायता प्राप्त होती रहती है । उनके नाम हैं 1. श्री पं. नाथूलाल शास्त्री, इन्दौर 2. श्री पं. सत्यन्धर कुमार सेठी, उज्जैन तथा 3. श्री पं. दयाचन्द्र शास्त्री, उज्जैन । श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर के सचिव श्री बाबूलाल जी पाटोदी भी जैन शोध के संवर्धन के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, तथा विद्वानों को हर प्रकार की सहायता करते हैं ।

जैन शोध की संभावनाएं

मालव क्षेत्र में, विशेष रूप से उज्जयिनी में जैन धर्म और दर्शन के शोध की प्रबल संभावनाएं हैं । कुछ वर्ष पूर्व मध्यप्रदेश शासन ने बहुत छानबीन करने के पश्चात् मध्यप्रदेश में मात्र उज्जयिनी के विक्रम विश्वविद्यालय को जैन विद्या विभाग की स्थापना के लिए चुना था और इसके निमित्त बजट में कुछ राशि का प्रावधान भी किया था । किन्तु दुर्भाग्य से अभी तक यह कार्य संपन्न न हो सका ।

विक्रम विश्वविद्यालय के दर्शन, प्राचीन भारतीय इतिहास-संस्कृति एवं पुरातत्व तथा पालि-प्राकृत एवं संस्कृत विभागों में जैन विद्या पर शोध कार्य हो रहे हैं । इस कार्य में सहयोग देने वाले जो शोध प्रतिष्ठान यहां हैं । वे इस प्रकार हैं :-

1. **श्री सिंधिया प्राच्य शोध प्रतिष्ठान, उज्जैन**

1931 में स्थापित यह शोध प्रतिष्ठान, विक्रमविश्वविद्यालय के अन्तर्गत

कार्य कर रहा है । इसमें दस हजार से लगभग मुद्रित ग्रन्थ तथा सोलह हजार के लगभग दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ हैं । इनमें अनेक जैन पाण्डुलिपियाँ भी हैं । इस प्रतिष्ठान की भूतपूर्व क्यूरेटर, जैन, जर्मन विदुषी कुमारी शार्लोटि क्राउजे ने अनेक जैन पाण्डुलिपियों पर शोध कार्य किया था । उन्होंने कुछ जैन पाण्डुलिपियों का प्रकाशन भी किया था । वर्तमान में डा. रमेशचन्द्र पुरोहित इसके अभिरक्षक हैं ।

2. श्री ऐलक पन्नालाल दिग० जैन सरस्वती भवन, फ्रीगंज, उज्जैन

इस सरस्वती भवन में मुद्रित ग्रन्थों की संख्या 3494, पाण्डुलिपियों की संख्या 1152 एवं ताडपत्रीय ग्रन्थों की संख्या 111 है । इसके व्यवस्थापक पं. दयाचन्द्र शास्त्री, जैन पारम्परिक विद्वान है जो भवन में आने वाले प्रत्येक शोधार्थी को उसके कार्य में सहायता करते हैं । पं. सत्यन्धर कुमार सेठी इसके संचालक हैं ।

3. श्री चन्द्रसागर सूरि जैन ज्ञान मन्दिर, खारा कुंआ, उज्जैन

श्री ऋषभदेव छगनीराम ट्रस्ट द्वारा संचालित इस जैन ज्ञान मन्दिर में मुद्रित ग्रन्थों की संख्या तेरह हजार तथा पाण्डुलिपियों की संख्या 250 है । इसके सचिव श्री कुन्दन लाल मारू जैन शोध हेतु प्रत्येक प्रकार की सहायता प्रदान करते हैं ।

4 श्री दिग० जैन पुरातत्व संग्रहालय, जयसिंहपुरा, उज्जैन

1943 में स्थापित इस संग्रहालय के मंत्री हैं पं. सत्यंधर कुमार सेठी, जिन्होंने बड़े परिश्रम से इन्दौर एवं उज्जैन तथा इनके आसपास बिखरी हुई जैन मूर्तियों का संग्रह कर इन्हें व्यवस्थित संग्रहालय का रूप दिया । वर्तमान में इस संग्रहालय में 460 मूर्तियों का संग्रह है, जो जैन कला एवं संस्कृति की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

कुछ विचारणीय प्रश्न और सुझाव

मैंने अखिलभारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन (1978) के 29 वें, पूना - अधिवेशन के 'प्राकृत एवं जैन विद्या विभाग' के अपने अध्यक्षीय भाषण के अंत में कुछ विचारणीय प्रश्न एवं सुझाव रखे थे वे आज भी - उतने ही महत्वपूर्ण हैं अतः उन्हें आप लोगों के समक्ष रखने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूं ।

जापानी विद्वान् प्रो० मत्सुशी उनो ने हमें लिखा था "For the Study of Jainism, we do not have sufficient materials. I shall be very grateful, if any Jain Institution - publisher might donate some of necessary books."

प्रो० क्लाउस ब्रुन, बर्लिन, ने हमारे पत्र के उत्तर में लिखा था कि विदेश में

किए गए शोध कार्यों की जानकारी किसी एक ही केन्द्र में एकत्रित की जानी चाहिए जहाँ से लोग उस जानकारी को प्राप्त कर सकें । शोध कार्यों में व्यस्त जनों की यह संभव नहीं है कि वे प्रत्येक व्यक्ति अथवा संस्था की जिज्ञासा शान्त कर सकें ।

डा० शान्तिलाल शाह, पूना ने लिखा था कि "It is a very strange situation that a writer should print his book of research and he should also sell and collect his spendings and institution like your conferences should only take note of and appreciate the work.'

वस्तुतः, प्राकृत एवं जैन विद्या के प्रति देश-विदेश में लोगों की रुचि बढ़ रही है किन्तु साधनों के अभाव में वे कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं । हम, मास्को के प्रो० ईगोर डॉ० सेरेब्रियाकोव के इस विचार से पूर्ण सहमत हैं - It is extremely desirable to prepare and publish ENCYCLOPAEDIA OF JANISM, approximately on the same line as Encyclopaedia of Islam or Encyclopaedia of Buddhism,"

इसी प्रकार डा० के०आर० नारमन, केम्ब्रिज, का यह विचार भी अत्यन्त ध्यान देने योग्य है - "There can be no doubt that the greatest needs in the field of Prakrit studies are a full and comprehensive dictionary and an edequate grammar."

केन्द्रीय प्राकृत विद्यापीठ की स्थापना - प्राकृत भाषा के राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व को स्वीकार करते हुए एक 'केन्द्रीय प्राकृत विद्यापीठ' की स्थापना होना अत्यावश्यक है । भारत शासन से मेरा साग्रह निवेदन है कि वह आगामी योजना में

'केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ' के सदृश एक 'केन्द्रीय प्राकृत विद्यापीठ' की स्थापना की घोषणा करे । इसके कार्यान्वयन के लिए, अहमदाबाद, जयपुर, पूना, मैसूर, उज्जैन, वाराणसी, दिल्ली आदि स्थानों में से किन्हीं पाँच स्थानों पर प्राकृत विद्यापीठ के अध्ययन केन्द्र स्थापित किए जा सकते हैं ।

केन्द्रीय जैन शोध संस्थान की स्थापना

भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना के आदर्श पर एक 'केन्द्रीय जैन शोध संस्थान' (Central Jain Research Institute) की स्थापना की जाय जिसके निम्नलिखित कार्य हों :-

1. उक्त संस्थान के अन्तर्गत 'अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के समान एक 'अखिल भारतीय जैन विद्या सम्मेलन' की स्थापना ।

2. सम्पूर्ण भारतवर्ष एवं विदेश के विश्वविद्यालयों तथा शोध संस्थानों में होने वाले जैन शोध कार्य का संकलन, आकलन तथा तालमेल रखना एवं उसकी जानकारी इच्छुक व्यक्तियों और संस्थाओं को देकर एक दूसरे के ज्ञान से एकदूसरे को लाभान्वित करना ।

3. विदेशों के जैन अध्ययन केन्द्रों तथा शोध संस्थानों को संबंधित साहित्य पहुँचाने में सहायता करना ।

4. विदेशों में शोध के क्षेत्र में अपनाए जाने वाले तकनीक की ट्रेनिंग के लिए कुछ विद्वानों को भारत से विदेश भेजना तथा उनके माध्यम से भारतवर्ष में उस तकनीक का प्रचार करना ।

5. विदेशों से लौटने वाले प्राकृत एवं जैन विद्या के विद्वानों को ससम्मान सेवा का अवसर उपलब्ध कराना ।

6. एक केन्द्रीय जैन शोध पत्रिका का प्रकाशन

7. एक केन्द्रीय जैन ग्रन्थागार की स्थापना

8. जैन विद्या पर शोध कार्य के लिए कुछ शिष्यवृत्तियों की स्थापना जिनके माध्यम से व्यवस्थित जैन शोध कराया जा सके ।

9. सभी जैन शोध संस्थानों के ग्रन्थागारों की सूचियों की एकत्रीकरण ।

इनके अतिरिक्त प्राकृत तथा जैन विद्या की प्रगति के लिए जिन कार्यों का किया जाना अत्यावश्यक है उनमें कुछ इस प्रकार हैं -

1. प्रकाशन के अभाव में शोध कार्य का कोई उपयोग नहीं हो पाता, अतः उनके प्रकाशन की व्यवस्था किया जाना आवश्यक है । इस कार्य के लिए भारतीय ज्ञानपीठ, एल.डी. इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद आदि कोई ठोस योजना बना सकते हैं ।

2. नवीन शोधों से ऐसा प्रतीत होता है कि जैनालाजी के क्षेत्र में गणित एवं भौतिकविज्ञान के शोध के लिए पर्याप्त संभावनाएं हैं । इन दोनों विज्ञानों के विशेष अनुसंधान के लिए 'जैन विज्ञान केन्द्र' की स्थापना की जाय । यद्यपि यह कार्य अत्यन्त व्ययसाध्य है फिर भी इस योजना के लिए उच्च शिक्षा अनुदान आयोग, केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासनों से सहयोग प्राप्त हो सकता है ।

3. समस्त जैनागम साहित्य के आलोचनात्मक संस्करण तैयार किए जायें । इसके लि जैन विश्वभारती, लाडनूं, महावीर जैन विद्यालय, बंबई तथा एल.डी. इंस्टीट्यूट जैसी संस्थायें मिलकर एक सम्मिलित योजना बना सकती हैं और कार्य को पृथक् पृथक् बाँटकर

संपन्न कर सकती है ।

4 इसी प्रकार प्राकृत और जैनविद्या की अवशिष्ट पाण्डुलिपियों के प्रकाशन की भी योजना व्यवस्थित रीति से किया जाना आवश्यक है ।

भाषण : परिशिष्ट

मुनि जनों को वंदन और समस्त विद्वज्जनों को अभिवंदन ।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

इस वैदिक मंगलाचरण में इन्द्र के साथ तथा विश्वदेवा के साथ जिस अरिष्टनेमि को बैठाया गया है, डा० राधाकृष्णन कहते हैं कि, वह अरिष्टनेमि जैनों के बाईसवें तीर्थंकर हैं । वेद में और वैदिक साहित्य में हजारों मन्त्र ऐसे हैं जिनमें जैनत्व के संकेत निहित हैं । हमारा यही प्रोजेक्ट है :-

वैदिक स्रोतों से जैनधर्म का इतिहास और दर्शन । इसलिए यह मंगलाचरण मैंने आपके समक्ष प्रस्तुत किया ।

साहित्यिक उपलब्धियाँ

जैनधर्म और दर्शन की साहित्यिक उपलब्धियों में सबसे प्रथम उपलब्धि है, 1939 में 'षट्खण्डागम' का धवला टीका एवं हिन्दी अनुवाद के साथ देवनागरीलिपि में 16 जिल्दों में प्रकाशन ।

दूसरी साहित्यिक उपलब्धि है, आचारांग का जर्मन भाषा में प्रकाशन । जर्मन भाषा के अनुवादक डा० याकोबी ने इस ग्रन्थ की भूमिका में जैनधर्म की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करते हुए तीर्थंकर नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर को ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध किया है । इससे देश-विदेश में फैली हुई अनेक भ्रांतियों का निराकरण हुआ । तीसरी उपलब्धि है अभिधान राजेन्द्र कोश का प्रकाशन । चौथी उपलब्धि मैं मानता हूँ 'भारतीय ज्ञानपीठ' की स्थापना तथा उसके आद्य व्यवस्थापक के रूप में डा० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य की नियुक्ति । उन्होंने मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के अन्तर्गत ग्रन्थों का प्रकाशन कर महत्त्वपूर्ण काम किया । डा० महेन्द्रकुमार जी ने सिद्धिविनिश्चय की टीका के संपादन में अपनी विलक्षण और विलक्षणप्रतिभा का परिचय दिया है । उन्होंने जैन न्याय के

प्रतिष्ठापक आचार्य भट्ट अकलंक देव की पूर्णतया लुप्त 'सिद्धिविनिश्चय नामक कृति का, उसकी कृति से प्राप्त अनन्तवीर्य की संस्कृत टीका की एकमात्र पाण्डुलिपि के आधार पर उद्धार किया, और उसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ से हुआ यह ज्ञानपीठ की बहुत बड़ी उपलब्धि है। भारतीय ज्ञानपीठ की और भी बहुत सी उपलब्धियाँ हैं, 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश' का प्रकाशन भी एक बड़ी उपलब्धि है। साहित्यिक अन्य उपलब्धियों के मैं केवल नाम लिये देता हूँ : विंटरनित्स का 'हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर' के तृतीय खंड का जैनधर्म संबंधी 250 पृष्ठ का विभाग श्री बाबू छोटेलाल जैन की 'जैन बिब्लोग्राफी' का प्रथम खण्ड, श्री नाथूरामप्रेमी का 'जैन साहित्य और इतिहास' पं० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य का 'जैन दर्शन', पं० कैलाशचन्द्रजी का 'जैन न्याय', डा० जगदीशचन्द्र जैन का 'प्राकृत साहित्य का इतिहास' - ये कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ हैं।

शोधात्मक उपलब्धियाँ

इसे हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं - जैन धर्म एवं दर्शन पर शोध विदेश में तथा भारतीय विश्वविद्यालयों में। लगभग 60-70 विदेशी विद्वानों से पत्र व्यवहार करने के बाद (इनके बहुत से पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं) मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ वह यह है कि भारत के बाद जर्मनी, जापान, रूस, अमेरिका, फ्रांस, इंगलैंड फिनलेण्ड आदि अनेक देशों में जैन विषय पर अध्ययन और शोध हो रहा है।

जापान के जैन विद्यामनीषी हैं डा. ई. नाकामुरा, डा. एच. नाकामुरा तथा नागासाकी। नागासाकी ने प्रमाण मीमांसा का जापानी भाषा में अनुवाद किया है। रूस में प्राकृत तथा जैनधर्म के विद्वान हैं - मैडम मार्गरेट वोरोबिएवा डेसियातोव्सकाया तथा मैडम टेटियाना कोटेनिना। अमेरिका की कैलिफोर्निया युनिवर्सिटी में प्रो० पद्मनाभ जैनी, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी इंगलैण्ड में डा० के०आर० नार्मन, पेरिस विश्वविद्यालय फ्रांस में कोलटे कैलेट, बेल्जियम में प्रो० डेलु, फिनलेण्ड में डा० उन्तो टेहटिनन जैनधर्म के विद्वान और शोधकर्ता हैं।

भारत में जैनधर्म दर्शन का अध्ययन और शोध के विषय में भारतीय ज्ञानपीठ ने 1968 में अ०भा० प्राच्य विद्या के 24 वें सम्मेलन के अवसर पर जो पत्रिका निकाली थी उसमें इस सम्बन्ध में विवरण दिया हुआ है कि भारत में जैन विद्या पर कहाँ-कहाँ क्या-क्या कार्य हो रहा है। उसके बाद आगे क्या कार्य बढ़ा, इसे भी मैं छोड़ता हूँ। दक्षिण में शोध कार्य की बात बहुत महत्वपूर्ण है।

21 मई 1973 को जैन संस्कृति के प्राचीन केन्द्र मूडबिद्री में साहू परिवार के आर्थिक सहयोग से 'श्रीमती रमा रानी जैन रिसर्च इंस्टीट्यूट' और 'साहू शान्तिप्रसाद

जिनागम का नय प्रकरण

- डा. हुकमचंद भारिल्ल, जयपुर

वस्तु स्वरूप के अधिगम एवं प्रकाशन में नयों का प्रयोग जैनदर्शन की अपनी मौलिक विशेषता है। अन्य दर्शनों में नय नाम की कोई चीज ही नहीं है, सर्वत्र प्रमाण की चर्चा है। जबकि जैन दर्शन में तत्वार्थों के अधिगम के उपायों की चर्चा में प्रमाण और नय दोनों का समान रूप से उल्लेख है।

जिनागम का मर्म समझने के लिए नयों के स्वरूप, प्रयोगपद्धति एवं प्रतिपादन शैली की जानकारी आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है, क्योंकि समस्त जिनागम नयों की भाषा में ही निबद्ध है। नयों को समझे बिना जिनागम का मर्म समझ पाना तो बहुत दूर, उसमें प्रवेश ही संभव नहीं है।

नयों के प्रयोगात्मक रूप तो जिनागम में पद-पद पर मिलते हैं, किन्तु स्वतंत्र रूप से नयों के स्वरूप एवं प्रयोगों को सोदाहरण प्रस्तुत करने वाले जो कतिपय ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनमें देवसेन का 'श्रुतभवन दीपक नयचक्र' एवं 'आलाप पद्धति' तथा माइल्ल धवल का 'द्रव्य स्वभाव प्रकाशक नयचक्र' प्रमुख हैं।

उक्त नयचक्रों का आधारभूत इन सबसे बहुत प्राचीन नयचक्र नामक ग्रन्थराज अवश्य रहा होगा, जो कि अभी अनुपलब्ध है। इस प्रकार के उल्लेख इन ग्रन्थों में पाये जाते हैं, जिनसे सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। इसी प्रकार की चर्चा नयों की प्रसंगोपात्त चर्चा करने वाले श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थों की पाई जाती है, जिनसे उक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

उक्त ग्रन्थ की खोज होनीचाहिए। उसकी उपलब्धि नयप्रकरण के क्षेत्र में अद्भुत एवं क्रान्तिकारी होगी।

उपलब्ध नयचक्र सम्पूर्णतः नयविवेचन में ही समर्पित नहीं है। उनमें अन्य प्रकरण भी हैं; उनमें नय भी एक प्रकरण है, पर नय प्रकरण को प्रधानता अवश्य प्राप्त है। माइल्लधवल के नयचक्र में इसे बहुत अच्छी तरह देखा जा सकता है।

ऐसे भी अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें प्रसंगोपात्त रूप से नयों की चर्चा की गई है। इस प्रकार के ग्रन्थों में आचार्य उमास्वामी का तत्वार्थ सूत्र और उस पर लिखी गई टीकाओं के अतिरिक्त पंचाध्यायी एवं अनगारधर्मामृत आदि मुख्य हैं। तत्वार्थसूत्र की टीकाओं में आचार्य पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि अकलंक का तत्वार्थराजवार्तिक एवं आचार्य विद्यानंदि तत्वार्थश्लोकवार्तिक प्रमुख हैं।

प्रवचनसार के परिशिष्ट में आचार्य अमृतचन्द्र ने जिन 47 नयों की चर्चा की है, वे अन्यत्र प्राप्त नहीं होते हैं। पंडितप्रवर टोडरमल जी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवें

अधिकार में निश्चय व्यवहार नयों के स्वरूप पर प्रकाश डाला है ।

न्याय ग्रन्थों में भी यथास्थान थोड़ी बहुत चर्चा नयों के संदर्भ में प्राप्त होती है ।

तुलनात्मक अध्ययन करने की परंपरा तो पुराने जमाने में थी ही नहीं । वह तो आधुनिक युग की देन है ।

आज के सन्दर्भ में विचार करें तो इस युग में नयों की चर्चा को जन-जन का विषय बना देने का श्रेय पू0 श्री कानजी स्वामी को है । पर वे प्रवचनकार हैं, लेखक नहीं ।

नय प्रकरण को लेकर वर्तमान में जो भी लेखन हुआ है, उसमें जैनेन्द्रवर्णी का नयदर्पण प्रमुख है । यह अपने में बहुत कुछ समेटे हुए होने पर भी यह उनके प्रवचनों का संकलन है, जिसमें उन्होंने बीच-बीच में कुछ छूटे उदधरण जोड़ दिये हैं । इस प्रकार यह न तो विशुद्ध प्रवचन ही रह पाये और न ही यह प्रकाशन सुगठित ग्रन्थ ही बन पाया है । फिर भी इसमें बहुत कुछ उपलब्ध है । वर्णी जी विस्तृत अध्येता और गहरे विचारक हैं ।

दूसरा प्रयास पंडित कैलाशचन्द्र जी द्वारा संपादित भारतीय ज्ञानपी० द्वारा प्रकाशित माइल्लधवल के द्रव्य स्वभाव प्रकाशन नयचक्र पंडित कैलाशचंद जी द्वारा लिखित विशेषार्थ को कहा जा सकता है । स्व0 डा0 सुखनन्दन जी ने पी-एच.डी. के लिए इस प्रकरण को चुना था । उन्हें इस विषय पर पी-एच.डी. भी प्राप्त हो गई, पर अप्रकाशित होने से उक्त प्रति अभी तक देखने को प्राप्त नहीं हो सकी है । अतः उसके बारे में अभी कुछ कहना संभव नहीं है । सुना है वह भारतीय ज्ञानपीठ के पास है । यदि वह है तो ज्ञानपीठ के अधिकारियों से अनुरोध है कि कम से कम उसे देखने के लिए उपलब्ध करायें ।

विगत दो-तीन वर्षों से मैं स्वयं इस विषय पर गहराई से अध्ययन कर रहा हूँ, जिसे सम्प्रति 'जिनवरस्य नयचक्रम्' पूर्वार्द्ध के रूप में प्रस्तुत भी कर चुका हूँ, उत्तरार्द्ध का लेखन कार्य चालू है ।

अध्ययनकाल में मुझे ऐसा बहुत कुछ उपलब्ध हुआ है जिसका प्रस्तुतिकरण जैनधर्म और जैनदर्शन के लिए महत्वपूर्ण है, आवश्यक है ।

'जैनदर्शन 'भी' का नाम है, उसमें 'ही' है ही नहीं।'' - आज का यह नारा नयप्रकरण पर सबसे बड़ा कुठाराघात है, एवं नयप्रकरण संबंधी अज्ञान की सबसे बड़ी उपलब्धि है । 'ही' नयप्रकरण की जान है । 'ही' के बिना नयप्रयोग संभव ही नहीं है । 'भी' का प्रयोग नयों के विषय में नहीं, प्रमाण के विषय में होता है । नयों का विषय प्रतिपादन तो 'ही' से ही होता है । 'ही' की अस्वीकृति जैनदर्शन के नयप्रकरण की ही अस्वीकृति है ।

इसी प्रकार द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत द्रव्य का भाव 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं' वाला द्रव्य न होकर विशिष्ट अर्थ में होता है, क्योंकि द्रव्य का पर्यायांश तो पर्यायार्थिक नय का विषय बनता है । गुणपर्याय वाला द्रव्य तो प्रमाण का विषय है । द्रव्यार्थिक नय का विषय प्रमाण के विषय से भिन्न होना चाहिए । अन्यथा दोनों में एकत्व का प्रसंग उपस्थित होगा ।

- ये दो तो उदाहरण मात्र हैं । इसी प्रकार और अनेक बातें हैं, जिनके सन्दर्भ में सही दिशा में गहरा अध्ययन अपेक्षित है । वर्तमान में विवाद का मुद्दा होने के कारण ही नहीं, अपितु जिनवाणी की अनूठी, अद्भुत विद्या होने के कारण इसका सही दिशा में गहरा अध्ययन अपेक्षित है । जैनेतर दर्शनों में अनुपलब्ध यह प्रकरण जैनदर्शन की सम्मानपूर्ण स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने के लिए अकेला ही पर्याप्त है । अतः इसका गहरा अध्ययन एवं सहज बोधगम्य प्रस्तुतिकरण अत्यन्त उपयोगी, अत्यावश्यक एवं त्वरित करणीय है ।

मैं इस क्षेत्र में विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन की अपेक्षा रखता हूँ, जिसमें इस अध्ययन में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों, शंकाओं, प्रश्नों के समुचित उत्तर एवं समाधान अपेक्षित है । मैं इस क्षेत्र में तीन प्रकार से काम किए जाने की आवश्यकता अनुभव करता हूँ ।

(1) गहरा और विस्तृत अध्ययन, जिसमें सभी उपलब्ध ग्रन्थों के प्रमाणिक उद्धरणों के साथ सर्वांगीण, विस्तृत एवं तर्कसंगत, सोदाहरण अध्ययन प्रस्तुत हो ; तथा जो आगामी अध्येताओं को मार्गदर्शन कर सके, उसे एक ही स्थान पर जिनागम में प्राप्त सभी सामग्री एक व्यवस्थित क्रम में प्राप्त हो सके ।

(2) उद्धरणों के बोझ से रहित, लौकिक उदाहरणों से विषय को स्पष्ट करता हुआ सरल भाषा में सरल विवेचन ।

(3) मध्यममार्गीय विवेचन, जिसमें आवश्यक उद्धरण एवं स्पष्टीकरण तो हों पर अनावश्यक विस्तार एवं उद्धरणों की भरमार न हो ।

मैंने अपने अध्ययन में इस तीसरे प्रकार को ही चुना है । अपने इस कार्य में निष्पक्षभाव से सभी विद्वानों से, जहाँ मुझे जरा भी आशा की किरण दिखाई देती थी, वहाँ से मार्गदर्शन और सहयोग चाहा है । आशीर्वाद तो प्रायः सभी का मुझे मिला है, उसने मुझे कार्य करने को प्रोत्साहित भी किया है, तथापि डा० नेमीचन्द जी ने एक महत्वपूर्ण सुझाव भी दिया है, जिसमें उन्होंने द्वितीय शैली अपनाने का आग्रह किया है, क्योंकि उद्धरण अध्ययन की गति में अवरोधक का कार्य करते हैं । इस बात पर मैंने गंभीरता से विचार किया है । मेरे एक प्रतिभाशाली छात्र राकेश शास्त्री, जो जैन दर्शनाचार्य

अन्तिम वर्ष के छात्र हैं, को तो यह बात इतनी पसन्द आई कि उन्होंने इस कृति का एक ऐसा संस्करण निकालने का संकल्प भी किया है । वे इसके योग्य हैं, उन्होंने इस विषय पर गहरा अध्ययन किया है ।

मैंने भी इस प्रकार के प्रयोग किए हैं । 'धर्म के दशलक्षण' एवं 'मैं कौन हूं' मेरी ऐसी ही कृतियाँ हैं । जिनमें इस शैली को अपनाया गया है । तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ में प्रथमखन्ड इस शैली में और दूसरा खण्ड तीसरी शैली में निबद्ध है । पर 'क्रमबद्धपर्याय' और 'नयप्रकरण' जैसे विवादस्थ विषयों पर लिखने में मुझे आगम के आधार देना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य प्रतीत हुये । हो एक बार इस रूप में प्रकाशित हो जाने के बाद, उसके लघु संस्करणों में नेमीचन्दजी के सुझाव पर अमल करने में मुझे कोई हानि दिखाई नहीं देती, अपितु जनसामान्य के लिए उपयोगी होने से लाभ ही नजर आता है ।

डा. हरीन्द्रभूषण जी एवं डा० पारसमल जी अग्रवाल ने ग्रन्थ के अन्त में अनुक्रमणिका देने का महत्वपूर्ण सुझाव दिया, जिसे कार्य परिणत कर दिया गया है । डा० पारसमलजी ने तो अनुक्रमणिका बनाकर ही भेज दी ।

प्रथम प्रकार के विस्तृत अध्ययन के लिए दिग्गज विद्वानों की एक समिति गठित की जानी चाहिए । जिसमें जैनेन्द्र वर्णी, पं. कैलाशचन्दजी, पं० फूलचन्दजी, पं. दरबारीलाल जी कोठिया जैसे मूर्धन्य विद्वानों के साथ-साथ इस विषय में रुचि एवं अध्ययन रखने वाले विश्वविद्यालयीय विद्वानों को भी रखा जाना चाहिए । लक्ष्मीचंदजी के संयोजन में भारतीय ज्ञानपीठ इस कार्य को अच्छी तरह सम्पन्न कर सकती है ।

इस महान कार्य में हमें बिना भेदभाव के सभी अध्येताओं एवं अनुभवी विद्वानों का लाभ लेना चाहिए, जिससे कार्य को गति मिले एवं प्रमाणिकता के साथ सम्पन्न हो सके ।

भाषण : परिशिष्ट

मेरे नाम के साथ 'समयसार' का नाम जुड़ा है इसलिए समय की चिन्ता न आप करें, न व्यवस्थापक करें ।

मेरा विषय है - 'जिनागम में नय प्रकरण । नय जैन दर्शन की अपनी मौलिक विशेषता है । अन्य दर्शनों में नय नाम की कोई चीज ही नहीं है। इसलिए नय एक ऐसा प्रकरण है जिसे हम यदि सही रूप में समाज और विश्व के सामने रखें तो समाज को पूर्ण प्रतिष्ठा दिलाने के लिए अकेला ही पर्याप्त है ।। उसके संदर्भ में क्या साहित्य उपलब्ध है उसकी संक्षिप्त रूपरेखा आपके सामने रखता हूं । जैनागम में कोई भी प्रकरण ऐसे नहीं है जिसमें नय का प्रयोग न हुआ हो । लेकिन बात असल में नय के प्रयोग की नहीं है,

उसके स्वरूप समझने की बात है । जैसे छंदों का प्रयोग अलग बात है, और छन्दशास्त्र और अलंकार शास्त्र का वर्णन अलग बात है । जैन-दर्शन में ऐसे ग्रन्थ बहुत कम मिलते हैं । नयचक्र नाम के जो ग्रन्थ मिलते हैं वे पूरी तरह से नयों के लिए समर्पित हैं, ऐसी बात नहीं है । माइल्लधवल का जो नयचक्र है उसके 12 अध्याय हैं । एक प्रकरण ले लीजिये । नय की 100-200 गाथाओं का और बाकी सब और-और बातें हैं, नाम भले ही नयचक्र हो लेकिन उसका नाम है 'द्रव्य स्वभाव नयचक्र' - द्रव्य का वर्णन, गुण का वर्णन, पर्याय का वर्णन है और भी बातें हैं और नय का भी वर्णन है । कहने का अर्थ यह है कि कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं है जो पूरा का पूरा सिर्फ नयों के बारे में ही कहता हो । प्राचीन काल में मिलना संभव नहीं है । जो नयचक्र श्रुतभक्त नयचक्र देवसेन का आलाप-पद्धति वगैरा है यह सब किसी महान नयचक्र के आधार पर बने हुए लगते हैं किन्तु इन सब ग्रन्थों में ऐसे भी बहुत से ग्रन्थ हैं जिनमें नयों की चर्चा प्रसंगोपात्त हुई है । जैसे श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक तथा तत्त्वार्थसूत्र की जितनी भी टीकायें हैं उन टीकाओं में प्रमाण नयैरधिगमः सूत्र में और नैगम संग्रह आदि सूत्र की व्याख्याओं में नयों की चर्चा आई है । इसलिए वहाँ सम्पूर्णतया नयों की बात तो नहीं है उनमें भी यह लिखकर छोड़ दिया है कि नयचक्र से जानना चाहिए । इस तरह मालूम पड़ता है कि जितने भी नयचक्र उपलब्ध हैं उन सबसे पूर्व नयचक्र नाम का कोई खास ग्रन्थ रहा होगा । लेकिन आज वह उपलब्ध नहीं है । इस तरह से देखता हूँ कि कुछ पंचाध्यायी में, कुछ अनगार धर्मामृत में और कुछ मोक्षमार्ग प्रकाशक में फुटकर-फुटकर चर्चायें प्राप्त हैं । किन्तु ऐसा कोई भी नयों का प्रमुख ग्रन्थ नहीं है जिसमें आद्योपांत - पूरी तरह, सारे नय आ गये हैं ।

मैंने स्वर्याकी वर्ष पहले से इस विषय पर अध्ययन करना शुरू किया है और मेरा करीब आधा 'वर्क' इस पर हुआ है । जिनवर नयचक्र नाम से पूर्वार्द्ध प्रकाशित हुआ है । इसमें मैंने सभी विद्वानों से सहयोग, सलाह-मशविरा लेने की कोशिश की । सभी विद्वानों का आशीर्वाद मिला अवश्य, लेकिन उस विषय में गहराई की कोई बात नहीं । प्रकाश में छोटी-मोटी बातें आईं । हमारे डा० हरीन्द्रभूषण जी ने हमें लिखा कि इसमें अनुक्रमणिका जोड़ दीजिये तो हमने अनुक्रमणिका जोड़ दी । नेमीचन्दजी साहब ने लिखा कि आपने इसमें उद्धरणों की भरमार कर दी है । आपकी लिखने की रोचक शैली है उसमें पाठक के जैसे अवरोधक होते हैं वह निकाल दीजिए । लेकिन मैंने इस पर बहुत गंभीरता से विचार किया । मेरे एक विद्यार्थी को जो इस विषय में मेरे सहयोगी भी रहे हैं और विशेषज्ञ हैं - नागपुर के हैं और इंजीनियरी की पढ़ाई छोड़कर आये हैं, पाँच साल पहले, मेरे पास आचार्य परमानन्द के विद्यार्थी हैं, उनको तो इतनी

पसन्द आयी । उन्होंने कहा कि इसका एक लघु संस्करण निकालूंगा । जैसाकि मैंने ...न्द्रजी ने कहा, लेकिन मैंने बहुत गंभीरता से विचार किया । नय जैसे विवादग्रस्त विषय मे हम उद्धरण नहीं देते तो समाज को और विद्वानों को भी कितना पचेगा इसमें मुझे शंका है ।

जैन धर्म और दर्शन : विज्ञान के संदर्भ में

- प्रो० प्रवीणचन्द्र जैन, जयपुर.

सहस्रों वर्षों के विस्तीर्ण काल में धर्म की अनेक परिभाषाएं की गई हैं । उनमें मुझे दो प्रमुख विदित होती हैं । एक तो है 'वस्तुस्वभावो धर्मः' और दूसरी है 'चारित्रं (चारित्रम्) खलु धर्मः' । धर्म के प्रति व्यक्ति की जो वीतराग/रागद्वेष रहित दृष्टि होती है वही दर्शन बन जाता है । आत्मा एवं लोक के अन्य सभी पदार्थों को समझने में धर्म की वस्तु-स्वभाव-रूप परिभाषा सहायक होती है । यह परिभाषा ज्ञान-विज्ञान-सम्मत है । समस्त तत्व-चर्चा इसी परिभाषा में समाहित है । मैं इस समय इसी परिभाषा के सन्दर्भ में एक बात कहूंगा । वह अब तक यहाँ नहीं कही गई है ।

लोक क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में हम तात्विक चर्चा करते हुए प्रायः कहते हैं कि जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन द्रव्यों से लोक बना है । इन द्रव्यों के सम्बन्ध में देश विदेश के जैन और जैनेतर विद्वानों एवं वैज्ञानिकों ने अपनी अपनी स्वतन्त्र दृष्टि से चिन्तन किया है । इन द्रव्यों के विषय में जैन और अजैन विचारधाराओं के साम्य और वैषम्य दोनों को समझने के लिए यह जरूरी है कि जैनागम और उसके परिभाषक आचार्यों ने इस विषय में जो कहा है, लिखा है वह अजैन विद्वानों और वैज्ञानिकों को विदित हो, विश्वविद्यालयों, अनुसंधानशालाओं और प्रयोगशालाओं में काम करने वाले शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों को भी विदित हो, ऐसी भाषा में जिसमें वे समझ सकते हैं । यह भाषा चाहे हिन्दी हो, चाहे अंग्रेजी हो, चाहे कोई और । इसी प्रकार जैनेतर विद्वानों एवं वैज्ञानिकों ने अपनी अपनी ज्ञान-शालाओं और कर्मशालाओं में जो उपलब्धियां प्राप्त की हैं उन्हें जैनागम के वेत्ता पंडितों को उनके समझने योग्य भाषा में बताया जाय । जैसे फिजिक्स एक विज्ञान है, भौतिक विज्ञान । इस विज्ञान के ज्ञाताओं के सामने जैनों के अजीव द्रव्य का ज्ञान पहुंचना चाहिये । जो बायोलोजी या जीव विज्ञान के वेत्ता हैं उनके सामने जैनों के जीव द्रव्य का ज्ञान पहुंचना चाहिये, जीव-कर्म-सम्बन्ध की चर्चा पहुंचनी चाहिये । इसी प्रकार इन विद्वानों की भौतिक और जीव-विज्ञानों की उपलब्धियों से जैन पंडितों को परिचित किया जाना चाहिये । इस प्रकार दोनों ओर से आदान-प्रदान होते रहना चाहिये । इससे आगे आने वाली पीढ़ियों को लाभ होगा । वे धर्म और दर्शन से दूर न रहकर उसके मर्म को निकटता से समझेंगी । जैन तत्त्व-चिन्तन विश्व के धर्म और दर्शन सम्बन्धी चिन्तन का एक सशक्त अंग बनेगा । यह एक बड़ा काम होगा । यह आदान प्रदान विचार गोष्ठियों के द्वारा अधिक सरलता से सम्पन्न होगा ।

इन गोष्ठियों में जैन और अजैन विद्वान् एवं वैज्ञानिक भाग लेंगे । वे आग्रहों से मुक्त रहकर समताओं और विषमताओं के मूल में जायेंगे, उनका परिवीक्षण और परीक्षण करेंगे ।

इस प्रकार की विचार-गोष्ठियों के आयोजनों के लिए मैं श्री महावीर अतिशय क्षेत्र की प्रबन्धकारिणी कमेटी के सदस्यों से तो कहूंगा ही इस गोष्ठी के आयोजकों से भी चाहूंगा कि वे भी इस दिशा में आगे आयें और मार्गदर्शन दें जिससे ज्ञान-विज्ञान के विकास का कार्य वैज्ञानिक रीति से आगे बढ़ता चले ।

जैन धर्म-दर्शन के अध्ययन के विकास की दिशाएँ

- डा० कमलचन्द सोगाणी, उदयपुर ।

भारत के धार्मिक और दार्शनिक गगन पर जैन धर्म और दर्शन का उदय दो देदीप्यमान नक्षत्रों की तरह हुआ है । इनका अपना सशक्त और गौरवपूर्ण इतिहास विद्यमान है । हजारों वर्षों की जीवन्त परम्परा इनके साथ जुड़ी हुई है । हमारे आचार्यों उपाध्यायों और साधुओं ने अपने त्यागमय जीवन से इनकी जड़ों का सिंचन किया है । जैन धर्म, जैन आचार और जैन अध्यात्म के माध्यम से मुखरित हुआ है तथा जैन दर्शन, जैन द्रव्यमीमांसा और जैन न्याय के द्वारा अभिव्यक्त हुआ है । जैन धर्म-दर्शन का सारा साहित्य इन चार प्रकार के आधारों को लेकर विकसित हुआ है । श्रावकाचार, श्रमणाचार, ध्यानाचार तथा योगाचार को लेकर आचार्यों ने विपुल साहित्य का निर्माण किया है । इसी प्रकार जैन न्याय और जैन द्रव्यमीमांसा को लेकर भी अपार साहित्य का सृजन हुआ है । यह समस्त साहित्य अपनी युगानुकूल भाषा और शैली में लिखित है ।

पिछले 100 वर्षों में भारत में विश्वविद्यालयों का विकास हुआ । उनके विभिन्न विभागों में अंग्रेजी भाषा में लिखित साहित्य के अध्ययन-अध्यापन का प्राधान्य रहा । इस तरह से पाश्चात्य संस्कृति और साहित्य हमारे लिए सुलभ हो गया । विश्वविद्यालयी शैली के साथ साथ प्राचीन शैली में भी अध्ययन-अध्यापन का कार्य चलता रहा । किन्तु धीरे-धीरे हमारे सोचने-समझने के तरीके अंग्रेजी साहित्य से इतने प्रभावित हो गए कि प्राचीन शैली केवल हमारी औपचारिक श्रद्धा का विषय ही बन कर रह गई । प्रोफेसर और पण्डित में खाई बढ़ती ही गई । वे एक दूसरे के आलोचक बन गए । एक के पास अंग्रेजी साहित्य से प्राप्त विश्लेषणात्मक शैली थी, तो दूसरे के पास संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से प्राप्त संश्लेषणात्मक शैली । जिस तरह से भाषा के क्षेत्र में विश्लेषणात्मक भाषाएँ जन-मानस में समादृत हुई और संश्लेषणात्मक भाषाएँ (प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश) सामान्य अध्ययन के क्षेत्र से दूर हो गई, उसी तरह से कथन तथा लेखन की विश्लेषणात्मक शैली जन-मानस के लिए आकर्षक बनती गई और संश्लेषणात्मक शैली जन-मानस के लिए क्लिष्ट बनती गई । लम्बे समय तक तो प्रोफेसर और पण्डित एक दूसरे से दूर ही रहना पसन्द करते रहे । किन्तु धीरे-धीरे वैज्ञानिक दृष्टि के प्रभाव से लौकिक विधाएँ हावी होती गई कि धर्म-दर्शन की बात व्यर्थ की कपोल कल्पना समझी जाने लगी । इस तरह से धर्म-दर्शन का प्रोफेसर और पण्डित दोनों ही वैज्ञानिक के सामने छोटे लगने लगे । दोनों के ही स्थान जन-मानस में नगण्य हो गए । उनके लिए अब सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा के निमित्त एक दूसरे के समीप आना ही श्रेयस्कर है । वैज्ञानिक दृष्टि की चुनौती का सामना वे दोनों मिलकर ही कर सकते हैं । अतः ठीक ही है कि जैन धर्म-दर्शन के

प्रोफेसर और पण्डित एक मंच पर हैं, यह एक ऐतिहासिक घटना है । यह कोनि र । विद्यार्थी और शोध-कार्य उनके पास नहीं है, केवल वे दोनों ही हैं । इसलिए जैन धर्म-दर्शन के अध्ययन के विकास के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम अपनाया जाना चाहिए :-

1. विद्यार्थियों का शिक्षण

महत्त्वपूर्ण और मूलभूत प्रश्न यह है : विद्यार्थी जैन धर्म-दर्शन के अध्ययन के लिए कैसे आकृष्ट हों ? आज इनके अध्ययन की सुविधाएँ तो हैं, पर सुविधा प्राप्त करने वाले नहीं हैं । इस समस्या के हल पर ही जैन धर्म-दर्शन का भवन निर्मित किया जा सकेगा । अतः

1. अंग्रेजी तथा जैन दर्शन लेकर शास्त्री करने वाले 10 चुनिंदा प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को विश्वविद्यालयों के दर्शन विभागों में दर्शन में एम.ए. करने के लिए छात्रवृत्ति देकर 2 वर्ष के लिए भेजा जाय । छात्रवृत्ति रु० 300/- प्रति माह की हो । ये विद्यार्थी जयपुर, उदयपुर, मद्रास, वाराणसी, शान्तिनिकेतन, दिल्ली आदि विश्वविद्यालयों में अध्ययनार्थ भेजे जाएँ । इसकी व्यवस्था सभी जैन विद्यालयों में शास्त्री तक अंग्रेजी तथा प्राकृत पढ़ाने की विशेष व्यवस्था की जाय ।

2. विभिन्न विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी साहित्य, दर्शन और संस्कृत लेकर बी.ए. करने वाले 15 विद्यार्थियों को दर्शन में एम.ए. करने के लिए उन्हीं के विश्वविद्यालयों में रु० 100/- प्रति माह की छात्रवृत्ति दी जाय । फिर इनमें से कुछ विद्यार्थियों के लिए एम.ए. करने के पश्चात् जैन दर्शन लेकर शास्त्री करने की विशेष व्यवस्था की जाय और रु० 200/- प्रतिमाह की छात्रवृत्ति दी जाय । शास्त्री करते समय इनके लिए प्राकृत भाषा को पढ़ाने की अलग से व्यवस्था की जाए ।

3. उपर्युक्त एम.ए. किए हुए विद्यार्थियों में से 4 अत्यंत प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को पी-एच.डी. करने के लिए रु० 600/- प्रतिमाह की छात्रवृत्ति 3 वर्ष के लिए दी जाय । पी-एच.डी. का विषय जैन धर्म-दर्शन से ही संबंधित हो । ये विद्यार्थी अपना शोध प्रबन्ध अंग्रेजी में लिखें ।

जब तक उपर्युक्त योजना लागू न हो ।

(क) तब तक दर्शन लेकर बी.ए./शास्त्री करने वाले 10 विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जाय । जिससे वे जैन दर्शन लेकर दर्शन में एम.ए. कर सकें । स्थानीय विद्यार्थियों को रु० 100/- प्रति माह की छात्रवृत्ति और बाहर से आने वालों के लिए रु० 250/- प्रतिमाह की छात्रवृत्ति

दी जाय । इसके लिए उदयपुर, जयपुर, वाराणसी आदि विश्वविद्यालय चुने जा सकते हैं ।

(ख) तब तक जैन धर्म व दर्शन संबंधी विषय लेकर पी.एच.डी. करने के लिए रु० 900/- प्रति माह की छात्रवृत्ति 4 विद्यार्थियों को 3 वर्ष के लिए दी जाय । इन विद्यार्थियों का चुनाव अखिल भारतीय स्तर पर हो । शोध निर्देशकों का चुनाव विद्यार्थियों पर ही छोड़ दिया जाय ।

2. विद्यार्थियों की नियुक्तियाँ

1. उपर्युक्त प्रकार के विद्यार्थियों में से प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को खपाने के लिए भारतीय ज्ञानपीठ अपने यहाँ एक शोध-विभाग प्रारंभ करे जिसमें 5 वर्षों में 15 विद्यार्थी 700-1600 के ग्रेड में (विश्वविद्यालयीय सुविधाओं सहित) नियुक्त किए जायें । शोध-विभाग के कार्य की अलग से रूपरेखा बनाई जाए ।

2. दूसरे विद्यार्थियों को जैन संस्थानों में रु० 1000/- मासिक अथवा 700-1600 के ग्रेड के वेतन पर नियुक्त करके उनके अनुरूप कार्य दिया जाए ।

3. संदर्भ ग्रन्थों का निर्माण

इसका उद्देश्य शोधार्थियों तथा स्वाध्याय कर्ताओं के लिए ज्ञानवर्धन की सामग्री विभिन्न ग्रन्थों से संकलित कर एक ही जगह उपलब्ध कराना है । अतः निम्नलिखित पक्षों से संबंधित ग्रन्थों का निर्माण कराया जाय ।

1. जैन आचार

(क)	चारित्र का स्वरूप	(मूल-हिन्दी-अंग्रेजी)	ग्रन्थों का उपयोग कालानुक्रम से
(ख)	श्रावक के बारह व्रत	"	"
(ग)	अणुव्रत	"	"
(घ)	श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ	"	"
(च)	श्रावक के मूलगुण	"	"
(छ)	सम्यग्दर्शन : लक्षण एवं महत्त्व	"	"
(ज)	अणगाचार	"	"
(झ)	सात तत्त्वों का स्वरूप	"	"

2. जैन अध्यात्म

(क)	चौदह गुणस्थान	"	"

-4-

(ख) ध्यान - सामायिक (मूल-हिन्दी-अंग्रेजी) ग्रन्थों का उपयोग कालानुक्रम से

(ग) आत्मा .. ..

(घ) बारह भावनाएँ .. ..

(च) निश्चय-व्यवहार तथा कर्ता-कर्म .. ..

(छ) केवलज्ञान तथा अर्हत् अवस्था .. ..

3. जैन द्रव्यमीमांसा

(क) द्रव्य विवेचन .. ..

(ख) जीव विवेचन .. ..

(ग) अजीव विवेचन .. ..

(घ) कर्म सिद्धान्त .. ..

4. जैन न्याय

(क) अनेकान्तवाद-नयवाद .. ..

(ख) निक्षेपवाद .. ..

(ग) स्याद्वाद .. ..

(घ) शब्द और अर्थ .. ..

(च) ज्ञान की अवस्थाएँ : जैन दृष्टि .. ..

1. ज्ञान का स्वरूप 2. प्रामाण्य विचार

3. सर्वज्ञत्व मीमांसा 4. स्मृति और तर्क प्रमाण

5. प्रत्यक्ष प्रमाण

4 कोश निर्माण

(क) षट्खण्डागम शब्द कोश (ख) कुन्दकुन्द शब्द कोश

(ग) नेमिचन्द्र शब्द कोश (घ) जैन न्याय विषय कोश

(च) शौरसैनी प्राकृत शब्द कोश

5. अनुवाद

(क) जैन न्याय के ग्रन्थों का हिन्दी एवं अंग्रेजी में अनुवाद कराया जाय ।

6. पुस्तिकाओं का लेखन (हिन्दी-अंग्रेजी) 50 से 100 पृष्ठ तक

1. जैन धर्म का साहित्य 2. जैन दर्शन का साहित्य 3. अहिंसा

4. अनेकान्त, नय - निक्षेप 5. स्याद्वाद 6. कर्म
7. भक्ति 8. ध्यान 9. आत्मा 10. पुद्गल
11. अनुव्रत 12. सम्यग्दर्शन 13. त्रिरत्न
14. अपरिग्रह 15. दान 16. पुनर्जन्म
17. पाँच ज्ञान 18. जैन अध्यात्म
19. जैन साधु · दिगम्बर दृष्टि ।

इन पुस्तिकाओं को लिखने में टेक्निकल शब्दावली का प्रयोग कम से कम किया जाय । इनके लेखन की शैली चिंतनात्मक एवं विश्लेषणात्मक होनी चाहिए ।

भाषण : आलेख का परिशिष्ट

मैं कहता हूँ कि 50 प्रतिशत थीसिस अंग्रेजी में लिखी जानी चाहिए - कम से क 50 प्रतिशत । आप इस बात का बुरा न मानें । बाकी 50 प्रतिशत हिन्दी या अन किसी भी भाषा में हो सकते हैं । आप कहेंगे कि आप क्यों अंग्रेजी का समर्थन कर रहे हैं सभा के सामने । हम लोग भूल रहे हैं कि पाश्चात्य दर्शन हमारे ऊपर इतना हावी है । आपका दर्शन पीछे चला गया है । विश्वविद्यालयों में 8 पेपर में से 7 पेपर पाश्चात्य दर्शन से पढ़ाये जाते हैं - इसलिए मैं तो यह बात बता रहा हूँ कि हम आगे कैसे बढ़ सकते हैं ? पाश्चात्य दर्शन इतना आगे बढ़ा है कि कल्पना नहीं कर सकते । जो एम.ए. दर्शन कर रहे हैं उन्हें शास्त्री पढ़ाइये । फिर विरोध किस चीज का - विरोध शैलियों का है तो वह दोनों शैलियाँ सीख जायेगा ।

देखिये । विद्यार्थी धर्म दर्शन पढ़ने के लिए आने वाला नहीं है । यदि आपसे कहा जाये कि अपने बच्चों को फिलासफी पढ़ाइये तो आप कहेंगे - आप क्या गड़बड़ कर रहे हैं ? तो दर्शन के लिए विद्यार्थियों को आप चुनकर लाईये । जब वे पढ़ लें तो समाज में उनको अच्छे स्थानों पर रखिये । मैं साहूजी से कहूँगा कि भारतीय ज्ञानपीठ में शोध विभाग खोल लें और कम से कम उन लोगों को जो इस प्रकार तैयार किये हुए हों, अपने यहाँ खपा लें । बाकी लोग जो बच जायें उन्हें दूसरी संस्था में रखिये, कोई चिन्ता नहीं । उन्हें दाम पूरा दीजिये । जो दर्शन के विद्वान हैं वे जब अच्छा काम करेंगे तो धर्म-दर्शन के क्षेत्र में जो कमी आज नजर आ रही है वह पूरी हो जायेगी । यह [illegible] की स्थिति है ।

दूसरी बात, आप कहेंगे कि ग्रन्थों का क्या करेंगे / ज्ञानपीठ के ग्रन्थ तो [illegible]

ही नहीं हैं । बिकते भी हैं तो कौन पढ़े, इतने मोटे-मोटे ग्रन्थों को । जिन ग्रन्थों का संपादन करके आप जिस शैली में निकाल रहे हैं वह शैली पुरानी हो चुकी है । यह तो 50 साल, पहले ही जाना चाहिए था । आप तो 100 साल पीछे है इसलिए दिक्कत हो रही है । शैली क्या हो ? यह प्राबलम है । जैसा मैं सोचता हूं जैनधर्म का मतलब होता है कि जैन आचार और जैन अध्यात्म|जैन दर्शन से मेरा मतलब है जैन तत्व-मीमांसा और जैन न्याय । आप जैन आचार की प्रोबलम लीजिये और प्राबलम लेकर आप इस प्रकार के ग्रन्थ का निर्माण कीजिए, जिस प्रकार मैं आपके सामने रख रहा हूं । देखिये मैं जैन आचार की बात कर रहा हूं । श्रावक के 12 व्रत । आपने श्रावकाचार बहुत देखे हैं । श्रावक के 12 व्रतों के सम्बन्ध में दूसरी शताब्दी से 16 शताब्दी या 18 शताब्दी तक चर्चा 3 आई है । ऐसे ग्रन्थ दीजिये जिनमें व्रतों का वर्णन पीरियड के हिसाब से हो । दूसरी शताब्दी, तीसरी शताब्दी, चौथी शताब्दी, पाँचवी शताब्दी, 7, 8 वीं शताब्दी और 12 वीं, 16 वीं या 18वीं शताब्दी । इसका आखिर क्या मतलब ? श्रावकों को पता चलेगा कि आचार समय के अनुसार बदलता चलता है - युग के अनुसार उसमें परिवर्तन होते हैं । आज हम कहते हैं कि जो दूसरी शताब्दी में लिखा है वह 16 वीं शताब्दी में भी चलता है, नहीं । तो श्रावक के 12 व्रत सुन्दर ढंग से तैयार करा दीजिये । आपको करना कुछ नहीं है, ग्रन्थों को निकालकर अरेंज करना है । अणुव्रतों की व्याख्या को तैयार कर दीजिये, मूलगुणों की व्याख्या को तैयार कर दीजिये । सम्यक् दर्शन की व्याख्या तैयार कर दीजिये । पीरियड के अनुसार और श्रावकों को दे दीजिए । सम्यक् दर्शन दूसरी शताब्दी में, पाँचवी शताब्दी में, 10वीं शताब्दी में, व्यवहार सम्यक् दर्शन और निश्चय सम्यक् दर्शन, सब पता चल जायेगा । श्रावकाचार पर यह संकलन तैयार कर दीजिये । श्रावकाचार निकालें - बहुत सुन्दर बात है। लेकिन प्राबलम-वाईज (समस्यागत - विचारपरक) निकालें। जैन अध्यात्म में क्या करें । गुणस्थानों की चर्चा एक स्थान पर ला दीजिये । सब । आत्मा के विषय में चिन्तन एक जगह ला दीजिये कितना चिन्तन हुआ, कितनी बात हुई - इस दृष्टि से काम करें तो बहुत बड़ा काम होगा । इसमें मूल होना चाहिए, उसकी हिन्दी होनी चाहिए उसकी अंग्रेजी होनी चाहिए । क्रोनोलाजिकल आर्डर (काल-क्रम) चाहिए । कोई लाभ नहीं है बिना क्रनोलोजी के । मेरे मन की बात समझें । हम लोग क्या करें ? और हम पीछे क्यों हैं जैन न्याय देखिये - क्या है ? अनेकान्तवाद की चर्चा कहाँ-कहाँ आई, एक जगह कर दीजिये आप । हमको सेकेण्डरी सोर्सेज नहीं चाहिए । मूल-हिन्दी, अंग्रेजी - कीजिये अनेकान्त का पता चल जायेगा । मैं फिर रहा हूं अनेकान्तवाद को समझने के लिए । मैं 100 ग्रन्थ पढ़ रहा हूं । क्या जरूरत है इसकी ? ऐसा संग्रह आप तैयार कर दीजिये । शब्द और अर्थ, (वर्ड और मीनिंग) की कन्टेम्प्रेरी प्राबलम

(समसामयिक समस्या) है । कन्टेम्प्रेरी प्राबलम है वर्ल्ड के अन्दर और जैनों ने इतना सोचा है शब्द और अर्थ की समस्या पर कि आश्चर्य होगा । शब्द और अर्थ की समस्या को पढ़ने के लिए न्याय के ग्रन्थ मुश्किल होते हैं - इनको भी ला दीजिये एक जगह । तो क्या होगा ? ग्रन्थ उठाया और शब्द और अर्थ की समस्या कोई भी पढ़ गया । जो चाहिए था वह हो गया ।

ज्ञान की समस्याएं है । ज्ञान की समस्याओं को न्याय के ग्रन्थों से लेकर इकट्ठा कर दीजिए । ज्ञान का स्वरूप क्या है । सर्वज्ञत्व की मीमांसा क्या है ? स्मृति और तर्क प्रमाण भिन्न क्यों है ? आज लोगों को पता नहीं है कि जैनों ने तर्क को प्रमाण माना है ? इस प्रकार न्याय-ग्रन्थों को आप तैयार कर दें । कोश तैयार कर दीजिये - कोश । षटखंडागम का शब्दकोश तैयार कर दीजिये । शौरसेनी प्राकृत का शब्दकोश नहीं है । मैं कहता हूं कि मूलभूत ग्रन्थ तैयार कर दीजिये जिससे दुनिया में हम पहुंच सकें - दुनिया में जा सकें । इनके बिना हमारा काम नहीं चलेगा । और एक दुःख की बात बताऊं कि न्याय-ग्रन्थों के अनुवाद नहीं है । हिन्दी अनुवाद नहीं है, अंग्रेजी को तो छोड़ दीजिये आप । न्याय के ग्रन्थ विश्वविद्यालयों में चलते नहीं क्योंकि अनुवाद नहीं है । मेरा विद्वानों से हाथ जोड़कर विनम्र अनुरोध है कि ग्रन्थों के अनुवाद वे कर दें । नहीं तो ये ग्रन्थ आउट आफ डेट हो जायेंगे, उन्हें कोई पढ़ेगा नहीं ।

आखिरी बात मैं यह कह रहा हूं - अभी तक तो बात हुई विद्यार्थियों के लिए, प्रोफेसरों के लिए, पंडितों के लिए, ग्रन्थों के विषय में । सामान्य जनों की इसमें कोई रुचि नहीं है । उनमें श्रद्धा है यह मैं समझता हूं, हाथ जोड़ते हैं, बहुत अच्छी बात है । वे रिवोल्ट (विद्रोह) नहीं करते बड़ी अच्छी बात है । मैं कहता हूं, हमने सामान्य जन के लिए कुछ तैयार नहीं किया है । मैंने 15-16 पुस्तकें या पुस्तिकाओं की बात सोची है जो 50 पृष्ठ से ज्यादा नहीं होनी चाहिये । किसी को फुर्सत नहीं है आपके बड़े-बड़े ग्रन्थ पढ़ने की । ऐसा कुछ दीजिये कि वह रेल में बैठे-बैठे पढ़ ले । जैसे आप देखिये - भक्ति, उसे दे दीजिये भक्ति पर कोई सुन्दर पुस्तक, रेल में बैठे बैठे पढ़ जाये- भक्ति क्या चीज होती है ? ध्यान पर दे दीजिये उसे पढ़ने के लिए । आत्मा पर दे दीजिये, अणुव्रत पर दे दीजिये । वह नान-टैक्नीकल हो । विश्लेषणात्मक, चिन्तनात्मक हो । मूल ग्रन्थों के आधार पर हो । ऐसी छोटी-छोटी पुस्तकें 50-60 पृष्ठों की तैयार कर दीजिये । विद्वान जुट जायें तो कार्य में सफल हो सकते हैं । हम समझते है भारतीय ज्ञानपीठ आदि संस्थाएं इस काम को उठायें तो इस क्षेत्र में ज्यादा प्रगति हो सकती है ।

'आचार्य कुन्दकुन्द के नियमसार की 53 वीं गाथा और उसकी संस्कृत-व्याख्या एवं अर्थपर अनुचिन्तन '

- डा0 दरबारीलाल कोठिया, वाराणसी

प्रास्ताविक

आचार्य कुन्दकुन्द का नियमसार जैन परम्परा में उसी प्रकार विश्रुत और प्रसिद्ध ... ग्रन्थ है जिस प्रकार उनका समयसार है। दोनों ग्रन्थों का पठन-पाठन और ... अधिक है। ये दोनों ग्रन्थ मूलतः आध्यात्मिक हैं। हाँ, समयसार जहाँ पूर्ण-... आध्यात्मिक है वहाँ नियमसार आध्यात्मिक के साथ तत्त्व ज्ञान प्रापक भी है।

समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय इन तीन पर आचार्य अमृतचन्द्र की संस्कृत-टीकाएँ हैं, जो बहुत ही दुरूह एवं दुरवगाह हैं। किन्तु तलस्पर्शी और मूलकार आचार्य कुन्दकुन्द के अभिप्राय को पूर्णतया अभिव्यक्त करनेवाली तथा विद्वज्जनानन्दिनी हैं। नियमसार पर उनकी संस्कृत-टीका नहीं है। पर मेरा विचार है कि उस पर भी उनकी संस्कृत टीका होना चाहिए, क्योंकि यह ग्रन्थ भी उनकी प्रकृति एवं रुचि के अनुरूप है।

इस पर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव की संस्कृत टीका उपलब्ध है, जिसमें उन्होंने गाथाओं की संक्षिप्त संस्कृत-गद्य व्याख्या तो दी ही है। साथ में अपने और दूसरे ग्रन्थकारों के प्रचुर संस्कृत-पद्यों को भी दिया है। उनकी यह व्याख्या अमृतचन्द्र जैसी गहन तो नहीं है, किन्तु अभिप्रेत के समर्थन में उपयुक्त है ही।

प्रसंगवश हम नियमसार और उसकी व्याख्या देख रहे थे। जब हमारी दृष्टि गाथा 53 और उसकी व्याख्या पर गयी तो हमें प्रतीत हुआ कि उक्त गाथा की व्याख्या करने में उन्होंने बहुत बड़ी सैद्धान्तिक भूल की है। श्री कानजी स्वामी भी उनकी इस भूल को ... जान पाये और व्याख्या के अनुसार ही उन्होंने उक्त गाथा के प्रवचन किये। सोनगढ़ ... से जयपुर से प्रकाशित आत्मधर्म में स्वामीजी के उन प्रवचनों को उसी भूल के ... प्रकट किया गया है। सम्पादक डा0 हुकमचन्द जी भारिल्ल ने भी उसका संशोधन ... किया। सोनगढ़ से ही प्रकाशित नियमसार व संस्कृत-व्याख्या का हिन्दी अनुवाद ... श्री मगनलाल जैन ने वैसा ही भूल भरा किया है।

नियमसार की गाथा और उसकी संस्कृत व्याख्या

यहाँ हम नियमसार की वह 53 वीं गाथा और श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा ... उसकी संस्कृत-टीका दे रहे हैं -

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतरहेऊ भणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी ॥

'अस्य सम्यक्त्व परिणामस्य बाह्य सहकारिकारणं वीतरागसर्वज्ञमुखकमलविनिर्गतसमस्त वस्तु प्रतिपादन समर्थं द्रव्यश्रुतमेव तत्त्वज्ञानमिति । ये मुमुक्षवः तेप्युपचारतः पदार्थनिर्णय हेतुत्वात् अन्तरंग हेतव इत्युक्ताः दर्शनमोहनीयकर्मक्षय प्रभृतेः सकाशादिति ।(टीका पृ 109, सोनगढ़ संस्करण)

दोनों का हिन्दी अनुवाद

गाथा व उसकी इस संस्कृत व्याख्या का हिन्दी अनुवाद, जो पं० हिम्मतलाल जेठालाल शाह के गुजराती अनुवाद का अक्षरशः रूपान्तर है, श्री मगनलाल जैन ने इस प्रकार दिया है -

'सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र है । जिनसूत्र के जानने वाले पुरुषों को (सम्यक्त्व के) अन्तरंग हेतु कहे हैं, क्योंकि उनको दर्शनमोह के क्षयादिक हैं ।' (गाथार्थ) 'इस सम्यक्त्व परिणाम का बाह्य सहकारी कारण वीतराग सर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ द्रव्यश्रुत रूप तत्त्वज्ञान ही है जो मुमुक्षु हैं उन्हें भी उपचार से पदार्थ निर्णय के हेतुपने के कारण (सम्यक्त्व परिणाम के) अन्तरंग हेतु कहे हैं, क्योंकि दर्शन मोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं ।'(टीका पृ0 109, संस्करण वही)

53 वीं गाथा का हिन्दी पद्यानुवाद

श्री मगनलाल जैन ने इस गाथा का हिन्दी पद्यानुवाद भी दिया है, जो गुजराती पद्यानुवाद पर आधृत है । वह यह है -

जिनसूत्र समकित हेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो ।
वह जान अन्त हेतु जिनके दर्शमोहक्षयादि हो ।।

उक्त गाथा की संस्कृत-टीका, गाथा व टीका के प्रवचन, उनके गुजराती व हिन्दी अनुवाद : इन पर विमर्श

किन्तु श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा की गयी उक्त (53 वीं) गाथा की संस्कृत टीका, दोनों (गाथा व संस्कृत टीका) पर स्वामीजी द्वारा किये गये प्रवचन, उनके गुजराती व हिन्दी अनुवाद न मूलकार आचार्य कुन्दकुन्द के आशयानुसार हैं और न सिद्धान्तानुकूल हैं ।

यथार्थ में इस गाथा में आचार्य कुन्दकुन्द ने सम्यग्दर्शन के बाह्य और अन्तरंग दो कारणों का प्रतिपादन किया है । उन्होंने कहा है कि सम्यक्त्व का निमित्त (बाह्य सहकारी कारण) जिनसूत्र और जिनसूत्र के ज्ञाता पुरुष हैं तथा अन्तरंग हेतु (अन्तरंग निमित्त) दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय आदि है । यहाँ 'पहुदी' - 'प्रभृति'

शब्द प्रथमा विभक्ति के बहुवचन - 'प्रभृतयः' का रूप है, पंचमी विभक्ति - 'प्रभृतेः' का रूप नहीं, जैसा कि संस्कृत-व्याख्याकार श्री पद्मप्रभमल धारिदेव और उनके अनुवर्त्तियों (श्रीकानजी स्वामी, गुजराती अनुवादक पं० हिम्मतलाल जेठालाल शाह तथा हिन्दी अनुवादक श्री मगनलाल आदि) ने समझा है। 'पहुदी' शब्द से आचार्य कुन्दकुन्द को दर्शन मोहनीय कर्म के क्षयोपशम और उपशम - इन दो का संग्रह अभिप्रेत है, क्योंकि उन दोनों का दर्शनमोहनीय के क्षय के साथ सम्बन्ध है, जो स्वयं अभिहित है और इस प्रकार उन्हें क्षायिक, क्षायोपशमिक तथा औपशमिक इन तीनों सम्यक्त्वों में दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय, क्षयोपशम और उपशम को क्रमशः अन्तरंग निमित्त बतलाना इष्ट है। अतएव 'पहुदी' शब्द प्रथमा विभक्तिका बहुवचनान्त रूप है, पंचमी विभक्ति का रूप नहीं।

आचार्य पूज्यपाद और अकलंक देव के सिद्धान्त-प्रमाण

आगम भी यही है। आ० पूज्यपादने सर्वार्थसिद्धि (1-7) में तत्त्वार्थसूत्र के 'निर्देश स्वामित्व साधन ....' आदि सूत्र (1-7) की व्याख्या करते हुए सम्यग्दर्शन के बाह्य और अभ्यन्तर दो साधन बतला कर बाह्य साधन तो चारों गतियों में विभिन्न प्रतिपादन किये हैं। परन्तु अभ्यन्तर साधन सभी (चारों) गतियों में दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम, क्षय और क्षयोपशम एक सा बतलाया है। यथा -

'साधनं द्विविधं अभ्यन्तरं बाह्यं च। अभ्यन्तरं दर्शनमोहस्योपशमः क्षयः क्षयोपशमो वा। बाह्यं नारकाणां प्राक्चतुर्थ्याः सम्यग्दर्शनस्य साधनं केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिद्वेदनाभिभवः। चतुर्थीमारभ्य आ सप्तम्या नारकाणां जातिस्मरणं वेदनाभिभवश्च। तिरश्चां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनबिम्बदर्शनम्। मनुष्याणामपि तथैव।.....' (स. सि. पृ० 26, भा. ज्ञा. पी. संस्करण)

आचार्य अकलंकदेव ने भी तत्त्वार्थवार्तिक (1-7) में लिखा है कि 'दर्शनमोहोपशमादि साधनं बाह्यं चोपदेशादि स्वात्मा वा।' अर्थात् सम्यक्त्व का अभ्यन्तर साधन दर्शनमोहनीय-कर्म का उपशम, क्षय और क्षयोपशम है तथा बाह्य साधन उपदेशादि है और उपादान कारण स्वात्मा है।

इन आगम-प्रमाणों से स्पष्ट है कि सम्यक्त्वका अभ्यन्तर (अन्तरंग) निमित्त दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय, क्षयोपशम और उपशम है तथा उपदेशादि बाह्य निमित्त है। जिनसूत्र के ज्ञायक पुरुष उसके बाह्य निमित्त तो हो सकते हैं, किन्तु वे अभ्यन्तर निमित्त (हेतु) नहीं हो सकते। वास्तव में जिनसूत्र के ज्ञाता पुरुष जिन सूत्र की तरह एकदम पर - भिन्न हैं। वे उपचार से भी उसके अन्तरंग हेतु नहीं हो सकते। क्षायिकसम्यग्दर्शन के आवारक दर्शन मोहनीय कर्म की क्षपणा का प्रारम्भ केवली द्विक (केवली या

कुन्देकलो) के पादमूल में होने का जो सिद्धान्त शास्त्र में कथन है सम्भवतः उसी को लक्ष्य में रखकर उक्त गाथा में जिनसूत्र के ज्ञाता पुरुषों को भी जिनसूत्र की तरह सम्यक्त्व का बाह्य निमित्त कारण कहा है। उन्हें अन्तरंग कारण कहना या बतलाना सिद्धान्त विरुद्ध है तथा उनमें दर्शन मोहनीय के क्षयादि का हेतु रूप में सम्बन्ध जोड़ना भी गलत है। वस्तुतः सम्यक्त्व के उन्मुख जोव में ही दर्शन मोहनीयक कर्म का क्षय, क्षयोपशम और उपशम होना आवश्यक है और इसलिए वही उसके सम्यक्त्वका अन्तरंग हेतु है। जिनसूत्र श्रवण या उसके ज्ञाता पुरुषों का सान्निध्य बाह्य निमित्त है।

कुन्दकुन्दभारती के सम्पादक द्वारा समर्थन

कुन्दकुन्दभारती के सम्पादक डा. पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य ने भी नियमसार की उक्त (53 वीं) गाथा का वही अर्थ किया है जो हमने ऊपर दिया है। उन्होंने लिखा है -

'सम्यक्त्वका बाह्य निमित्त जिनसूत्र - जिनागम और उसके ज्ञायक पुरुष है तथा अन्तरंग निमित्त दर्शनमोहनीयकर्म का क्षय आदि कहा गया है।' इसका भावार्थ भी उन्होंने ... है। वह भी दृष्टव्य है। उसमें लिखा है कि 'निमित्त कारण के दो भेद है - 1. बहिरंग निमित्त और 2. अन्तरंग निमित्त। सम्यक्त्व की उत्पत्ति का बहिरंग निमित्त जिनसूत्र और उसके ज्ञाता पुरुष है तथा अन्तरंग निमित्त दर्शन मोहनीय अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति एवं अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन प्रकृतियों का उपशम, क्षय और क्षयोपशम का होना है। बहिरंग निमित्त के मिलने पर कार्य की सिद्धि होती भी है और नहीं भी होती, परन्तु अन्तरंग निमित्त के मिलने पर कार्य की सिद्धि नियम से होती है। (53 - पृ० 207)

उपसंहार

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि नियमसार के संस्कृत-टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारि देव ने उक्त (53 वीं) गाथा की व्याख्या में जिनसूत्र के ज्ञाता मुमुक्षु पुरुषों को सम्यक्त्व का उपचार से अन्तरंग हेतु बतलाकर तथा उनसे दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादि का सम्बन्ध जोड़ कर महान् सैद्धान्तिक भूल की है। उसी का अनुसरण सोनगढ़ ने किया है। प्रतीत होता है कि श्री कानजी स्वामी ने श्रीपद्मप्रभमल धारिदेवकी इस (53 वीं) गाथा की संस्कृत-व्याख्या पर सूक्ष्म एवं गहराई से ध्यान नहीं दिया। फलतः उन्हीं की व्याख्या के अनुसार गाथा और व्याख्या के उन्होंने प्रवचन किये तथा गुजराती और हिन्दी अनुवादकों ने उनके अनुवाद भी वैसे ही भूल भरे किये।

---

1. दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो दु।
मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ।। - गो.जी. गा. 648 ।

जैनधर्म और दर्शन

उपलब्धियाँ . और संभावनाएँ

- क्षुल्लक सन्मतिसागरजी महाराज

परमपूज्य आचार्य श्री, उपाध्यायजी महाराज, त्यागीवृन्द
उपस्थित माताओं बहिनो एवं विद्वज्जन महानुभावों ।
पिछले दो दिनों से यह विद्वत् संगोष्ठी आयोजित है । यह अपने आप में एक प्रशंसनीय आयोजन है ।

अनेक प्रकार के विचार सुनने के बाद कुछ बातें मन में आईं । जैनधर्म जैनधर्म है । धर्म वह है जिससे प्राणीमात्र को सुख और शान्ति मिलती है । दर्शन शब्द और जोड़ दिया अर्थात् जिससे अवलोकन किया जाता है । किसका अवलोकन किया जाता है ? वस्तु स्वरूप का, स्वयं का । धर्म की ये विशेषता है कि जो भी उसे धारण करता है वह सुखी हो जाता है । एक प्रकरण आ गया था जाति का । ऐसा धर्म जाति से नहीं बंधता फिर धर्म किस चीज से बंधा हुआ है । न धर्म किसी प्रदेश या देश से बंधा हुआ है न किसी जाति से । यह जैनधर्म की विशेषता है कि वह जन-जन का ही नहीं अपितु पशु-पक्षी आदि सभी प्राणिमात्र का है । सैनी पंचेन्द्रिय पशु प्राणी यदि धर्म को जीवन में उतारते हैं और सम्यक्दर्शन और अणुव्रतों को धारण करके इसके माध्यम से उत्थान करते हैं तो फिर मनुष्य को धर्म से अछूता रहने की बात ही नहीं बनती । धर्म के विषय में जहाँ तक बात है सभी जानते हैं कि/वह वीतरागता देने वाला है । सरागी जो लोग हैं वह उसे समझें - दर्शन के माध्यम से, तो यह बहुत बड़ी उपलब्धि होगी । किसी प्रकार का पक्षपात धर्म के क्षेत्र में न हो । न धर्म किसी जाति से उत्पन्न हुआ है और न किसी व्यक्ति विशेष से । अब आगे जीवन में उतारने वाली चर्चा और चर्या की कुछ बात करनी है । जितनी भी बात चल रही है वह मात्र चर्चा की है । हम विद्वानों से यह बात अवश्य कहना चाहते हैं कि परिचर्चा हमारी क्या हो इस बात पर मनन करें । लौकान्तिक देव व एवं सर्वार्थसिद्धि के देव, 33 सागर पर्यन्त चर्चा करते हैं परन्तु स्वानुभूति नहीं, वहाँ से उनको मोक्ष नहीं मिलता । इस कर्मभूमि में ज्ञानी पुरुष अन्तर-मुहूर्तभी यदि सम्यक्चारित्र में लीन हो जाये तो वह केवलज्ञान को प्राप्त कर सकता है । यह है धर्म और सम्यक्चारित्र का फल । चर्चा के स्थान पर चर्या को महत्त्व दें तो वह एक विशेष महत्त्व की बात होगी । चर्चा मात्र यहीं तक सीमित रह जायेगी ।

...और चर्या हमारे अन्दर तक चली जायेगी मोक्षमार्ग बना देगी । सदाचार की चर्या हर घर में हो तो हमारे समाज के उत्थान के लिए, हमारे देश के उत्थान के लिए, निश्चित ही कुछ काम बन सकेगा, पशुओं से मनुष्यों में कुछ विशेषताएँ आ सकेंगी ।

जैनसाहित्य की बात चली तो साहित्य में हमने बहुत कुछ पाया है । पूरी बात और पूरे आदर्श हमारे बीच है । किन्तु विशेष उपलब्धि नहीं है । अनेकों विद्वानों ने अपनी-अपनी बात बताई कि हमने क्या-क्या उपलब्धियाँ की है । बड़ी प्रसन्नता हुई कि विद्वान सक्रिय हैं, जैन साहित्य के प्रकाशन में, अपनी संस्कृति के प्रकाशन में, यह गौरव की बात है किन्तु प्रकाश में सभी ओर से नहीं आ रहा है । इसके भी कुछ कारण होंगे ।

इस क्षेत्र में उपलब्धियों का कुछ प्रयत्न मैंने पिछले तीन चार वर्षों में किया है । वर्णीजी की जीवनगाथा पढ़ने के बाद । पं० पन्नालाल जी मेरे विद्या-गुरु रहे हैं और पं० दयाचन्दजी इत्यादि और भी अनेक यहाँ विराजे हुए हैं । उन्होंने जब अध्ययन कराया तो एक-एक बात कही कि जो भी पढ़ो उसे अपने तक सीमित मत रखना । सागर में एक स्याद्वाद शिक्षण परिषद् का जन्म हुआ और उसके माध्यम से युवा साहित्य बाल साहित्य तथा महिला जागृति के लिए कुछ साहित्य निकला । पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य के नेतृत्व में अनेक शिविर लगे । पिछले पाँच वर्षों में 65 शिक्षण शिविरों में यह उपलब्धि हुई कि सैकड़ों नहीं, हजारों युवक छात्र-छात्राएँ जो दर्शन करना पसन्द नहीं करते थे उन्होंने सामान्य श्रावक के व्रत भी स्वीकार किये हैं, जैनधर्म क्या है यह समझा और उभरकर आगे भी आये हैं । आज बाल साहित्य, युवा साहित्य की विशेष आवश्यकता है । इस पर मैंने कुछ नैतिक शिक्षा लिखने का प्रयत्न किया है । 100-100 प्रश्नों और उत्तरों की 3-4 पुस्तकें शिविरों के लिए तैयार की है और भी युवकों के लिए 2-3 पुस्तकें संकलित करने का प्रयत्न किया है । यह कार्य विशेषतः बुन्देलखण्ड में हुआ है । वहाँ सैकड़ों युवक प्रति रविवार को पूजन करते हैं, शाम को सामूहिक सभाएँ करते हैं और सामाजिक कार्यों में अच्छी तरह से प्रयत्नशील हैं अनेकों मोक्षमार्ग पर भी चल पड़े हैं । यह भी एक उपलब्धि है । एक बात मैं विशेष रूप से कह देना चाहता हूँ कि आज के युवक पढ़ना नहीं चाहते । जैसा अभी कहा गया है कि कठिन साहित्य उनकी समझ में नहीं आता। युवक धर्म से भ्रष्ट नहीं है परन्तु धर्म के स्वरूप को जानता भी नहीं है यह आज एक समस्या बनी हुई है । इसलिए आपका समाज जिस भाषा में, शैली में, अंग्रेजी में समझे, संस्कृत में समझे, हिन्दी में समझे उसी भाषा और शैली में साहित्य तैयार कराना चाहिये । भाषा एवं धर्म दोनों पृथक पृथक हैं । इन दोनों में एकता नहीं है । भाषा समझने की एक पद्धति है, तो इसके लिए हम

प्रयत्नशील हैं । किसी भी भाषा में हमारा साहित्य आये उसमें विकृति नहीं हो । मात्र सदाचार कैसे आये यह ध्यान में रखना चाहिये । विद्वानों की बात चल रही है इसमें आप यह निश्चित मानिये कि यह विद्वान श्रुतज्ञान की जीवन्त मूर्तियाँ हैं । यही रख सकते हैं हमारी संस्कृति को जीवित । सम्यग्ज्ञान का प्रचार एवं प्रसार करके । यह तो आश्चर्य हुआ, मुझे भी, विद्वानों की संगोष्ठी देखकर पचास-साठ विद्वान् हमारे जो विद्यमान हैं, हिन्दी के माध्यम से, अंग्रेजी के माध्यम से, प्राकृत के माध्यम से, पाली आदि के माध्यम से जैन दर्शन में एम.ए. पी-एच.डी. डी.लिट्. कर चुके हैं । अब आवश्यकता है संगठन की, सभी में एकता की, सभी को एक सूत्र में बांधकर कुछ काम करने की ।

वर्तमान में हमारे यहाँ आम्नायों को महत्त्व दिया जा रहा है । बन्धुओं । आम्नायों को हम जितना महत्त्व देते जायेंगे उतनी हमारे बीच में दीवारें - दरारें पड़ती जायेंगी । समाज छिन्न-भिन्न होती जाएगी । इसलिए आम्नाए, पंथ जिसे कहते हैं उनको महत्त्व न देकर यदि हम पथ को महत्त्व दें तो निश्चित ही एक लक्ष्य प्राप्त हो सकेगा । पथ जो है वह वीतराग देव द्वारा प्रतिपादित है । आम्नाएं - मेरी भी आम्नाएं हो सकती हैं, पंडित की आम्नाय हो सकती है किसी भी व्यक्ति विशेष की आम्नाय हो सकती है । आम्नाय को महत्त्व न देकर उस आगम को महत्त्व दें, उस सिद्धांत को महत्त्व दें, उस परम्परा को महत्त्व दें जिस पर कुन्दकुन्द आदि अनेकों आचार्यों ने अपनी लेखनी चलाई । अकलंक आदि आचार्यों ने हमारा पथ-प्रदर्शन किया है । उसमें अपनी शक्ति लगा दें । उससे धर्म का, हमारी समाज का उत्थान होगा । हमारे युवक जो आपत्ति उठाते हैं कि जैनदर्शन के जानकार आपस में लड़ते हैं तो हम यदि मंदिर नहीं जाते तो कौन सा अपराध करते हैं यह एक लगने वाली बात है । एक विचारणीय बात है । तो बन्धुओं आप सब विद्वान् इस विषय पर विचार करें । अब लड़ने का समय नहीं रह गया है । संगठन का समय आ गया है । आम्नाय का कोई भेद हो, रहने दो । एक दूसरे को न छेड़ें । आर्ष परम्परा से कुछ मिलता हो जितना उस परम्परा के अनुकूल काम करें तो निश्चित ही साधु समाज, विद्वत् समाज सभी मिलकर - एक पथ प्रदर्शन कर सकते हैं । आत्म कल्याण की बात है, उसमें आ सकें तो कल्याण हो सकता है । जैनधर्म - जन-जन का धर्म है और जैन ही छोड़ते जा रहे हैं । इस पर बन्धुओ, निश्चित रूप से आपको विचार करना होगा ।

कल अनेकों विद्वानों ने एक अच्छा प्रस्ताव रखा कि विद्वान संकल्प करें कि हम क्या तैयार करेंगे । मेरे मन में एक बात आयी कि भारतीय ज्ञानपीठ या कोई ऐसी संस्था या श्रीमंत यह आश्वासन दें कि आप काम करिये हम आपको सहायता देंगे - प्रोत्साहन देंगे । तो निश्चय ही विद्वानों की लेखनी में अपार शक्ति है । विद्वान

मोड़कर कलम रख देते हैं कारण - उनके साहित्य का उपयोग नहीं हो पाता क्योंकि श्रीमंत और विद्वत्ता दोनों अलग-अलग हैं । दोनों मिलेंगे तो हमारा कार्य आगे बढ़ सकता है अन्यथा असंभव है ।

दूसरी बात - काफी लम्बे समय से जब मैं जैन दर्शन पढ़ता था पंडितजी ... पढ़ाते थे तो मन में यह बात आती थी कि द्वादशांगों का संकलन होना ही चाहिए । ... अनुसार पूज्य उपाध्याय भरतसागर जी महाराज की कुछ विशेष प्रेरणा रही कि द्वादशांग आगे आना चाहिए तो अगले वर्ष से संकल्प किया कि हमारे ।। अंग, ।। पूर्व, चूलिका और परिकर जितने भी हैं । एक - एक के पृथक् रूप से कम सौ पृष्ठों के लेख तैयार करें । इसमें लगभग 35 ग्रन्थों का अध्ययन मात्र द्वादशांग को लेकर किया है और उतनी सामग्री उपलब्ध कर ली है ।द्वादशांग के ऊपर - हर अंग, हर पूर्व, हर विभाग पर 100 पृष्ठ लिखना किसी विद्वान् के लिए कोई कठिन बात नहीं है । मैंने संकल्प किया है कि जिनवाणी के जो 12 अंग हैं, क्रम से एक-एक अंग और बारहवें अंग के जितने भेद हैं और प्रतिभेद हैं उनका अलग संकलन आर्ष परम्परा से किया जाये । इसके लिए एक निर्देशिका भी तैयार कर दी है । पूज्य आचार्य विमल सागर जी महाराज को निमित्त बनाकर उस ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना बनाई है । वह निर्देशिका अभी आपके बीच आ जायेगी । सभी विद्वानों से मेरा एक विशेष मानसिक अनुरोध है कि जो द्वादशांग में रुचि रखते हों - निष्पक्षता से रुचि रखते हों, वाद-विवाद को कोई स्थान नहीं, वे स्याद्वाद शैली में 100 पृष्ठ, 150 पृष्ठ अंग और पूर्व पर अपने लेख देना ... वह निश्चित ही संपर्क करें । स्याद्वाद शिक्षण परिषद् सोनागिर की संस्था इस कार्य को कर रही है । लगभग दो हजार पृष्ठों का यह ग्रन्थ बनेगा । करीबन 12 विद्वानों और आचार्यों ने लिखना प्रारंभ कर दिया है । लगभग 35 लेख उसमें चाहिए । सभी विद्वानों का सहयोग इसमें चाहिये । साहूजी भी यहाँ विराजमान हैं । सभी को यह निर्णय करना होगा । दो-तीन वर्षों के अन्दर यह काम पूरा होगा । यह एक उपलब्धि होगी । यूनिवर्सिटियों में लायब्रेरियों में भी हमारे द्वादशांग का आशय रहेगा । ग्रन्थ कपोल कल्पित नहीं आगम प्रमाण से ही तैयार होगा । यह एक बहुत बड़ा कार्य होगा ।

अन्त में एक बात और कह देता हूँ कि हमने जितनी चर्चाएँ की हैं साहूजी से भी बात की थी श्री लक्ष्मीचन्द्र जी से भी कहना है कि यह गोष्ठी यदि बम्बई में ही समाप्त कर दी तो इसकी उपलब्धि कुछ नहीं होगी । यहाँ बैठकर यह निर्णय हो कि बाल साहित्य कौन निकालेगा, युवा साहित्य की जिम्मेदारी आप किसे दे रहे हैं, पुरातत्व भी किसे दे रहे हैं । विद्वत् गोष्ठी में भिन्न-भिन्न ने क्या क्या बोला है यह समाचार

सारी समाज के बीच जाये और इसका संकलन हो । थ्योरी नहीं प्रेक्टिकल को महत्व दीजिए तो कम्युनों निश्चित ही उपलब्धि होगी ।

सभी विद्वानों के विचार सुनकर और भारतीय ज्ञानपीठ की यह योजना जो सामने है, साहूजी ने बताया कि काम करेंगे । अंतिम बात मैंने कह दी । लोग कहते हैं कि विद्वानों की कमी है, किसी ने कहा कि पंडित और प्रोफेसर का लोभ कैसे मिटे । इस विषय में मेरी पिछले पांच वर्षों से लगन थी । आचार्य विद्यासागरजी से भी चर्चा की । इसका प्रेक्टिकल किया है । आज 65 विद्यार्थी जो बी.ए., एम.ए. कर रहे हैं - इसमें छात्र और छात्राएं दोनों हैं । ऐसे छात्रों को शास्त्री और आचार्य कराने का संकल्प किया है । 100 विद्यार्थी जैन दर्शन के साथ-साथ वाड्.मय में एम.ए. होंगे - इंग्लिश में, हिन्दी में और जैन दर्शन के आचार्य और शास्त्री ऐसे 100 विद्यार्थी होंगे । इन्हें पांच वर्ष में समाज को देने का भरपूर प्रयत्न करेंगे ।

समाज एवं साधुओं की दृष्टि मन्दिर और मूर्तियों की अपेक्षा, विद्यालय एवं विद्वान् बनाने की ओर होनी चाहिए ।

धार्मिक क्षेत्र में अतिवाद को बढ़ावा नहीं देना चाहिए । समयाभाव में इतना ही कहकर विराम लेता हूँ । ऊँ शान्ति ।

मानव-मूल्य और जैन दृष्टि

- डा० गुलाबचन्द्र जैन, भारतीय ज्ञानपीठ

मेरा विचार है कि जैन धर्म-दर्शन का प्रतिपादन जन सामान्य के लिए व्यावहारिक संदर्भ में होना चाहिए । जैन विद्वानों के लिए यह नये तत्व नहीं है । मैं केवल एक दृष्टि प्रस्तुत कर रहा हूं :

जैन धर्म-दर्शन की कुछ प्रमुख मान्यताएँ हैं जिनके चिन्तन से, और तदनुसार आचरण से, व्यक्ति अपना पूर्ण विकास कर सकता है, साथ ही एक आदर्श समाज की स्थापना भी कर सकता है ।

अनीश्वरवादिता : आत्मा ही परमात्मा

सबसे पहली मान्यता है जैन दर्शन का अनीश्वरवादी दृष्टिकोण । इस मान्यता में ईश्वर या परमात्म रूप की सत्ता तो स्वीकार की गई है, लेकिन इस दर्शन के अनुसार, यह ईश्वर या परमात्म रूप सृष्टि का कर्ता-धर्ता या कोई नियामक शक्ति नहीं है । वह तो अनन्त चतुष्टय गुणों (अनन्त ज्ञान-गुण-सुख-वीर्य) से सम्पन्न नित्य शुद्ध बुद्ध परमात्म रूप है । उसकी कोई वासना या इच्छा शेष नहीं रह गई है ।

जैनदृष्टि व्यक्ति को अपने विकास या ह्रास के लिए उसे स्वयं ही उत्तरदायी मानती है । व्यक्ति जब राग-द्वेष, मोह के तमान्धकार को दूर कर देता है, जब वीतरागता को प्राप्त कर लेता है तो स्वयं प्रबुद्ध परमात्मा बन जाता है । कोई ईश्वरीय प्रपंच इसके आड़े नहीं आता है । कोई ईश्वरीय करुणा या प्रेरणा इसका साधन नहीं बनती ।

इससे एक लाभ यह हुआ कि जीवन के विकास या ह्रास में ईश्वर को माध्यम बनाने से आने वाली अनेक-अनेक विकृतियों से हम बच जाते हैं । उदाहरण के लिए, नदी में डूबते हुए किसी बालक को बचा लेने वाले व्यक्ति से जब पूछा जाता है तो वह कहने लगता है, 'यह तो ईश्वर की प्रेरणा थी जो ऐन मौके पर मुझे यहां भेज दिया गया और बालक की जान बचा ली गई ।' किन्तु किसी सज्जन पुरुष की हत्या कर देना, किसी भले आदमी के घर पर डाका डालना, किसी नारी के सतीत्व को लूट लेना आदि कार्य भी क्या ईश्वरीय प्रेरणा से सम्पादित होते हैं ? हमारे व्यावहारिक चिन्तन में यह बात सीधे गले नहीं उतरती ।

ईश्वर में कर्तृत्व या नियामक का आरोप करने में फिर ईश्वर ही सबसे बड़ा आसक्त और राग-द्वेष से पूर्ण दिखायी देता है ।

का लेशमात्र भी आग्रह नहीं है । हम अपनी बात कहें लेकिन दूसरा किस दृष्टिकोण को लेकर अपनी बात आपके सामने रख रहा है, यह भी हमें समझना होगा । कहीं ऐसा तो नहीं कि दोनों भिन्न दृष्टिकोण, भिन्न-भिन्न मार्ग भी शायद आपको अपने ही लक्ष्य पर पहुँचा रहे हों ?

अनेकान्त की मान्यता से हमारे बीच का यह विरोध, यह कलह स्वतः समाप्त हो जाता है । हमारे भीतर सहिष्णुता, समता और संवेदना का स्वर प्रस्फुटित होने लगता है ।

अहिंसा

जैन धर्म का मूल आधार है अहिंसा । इसके बिना तो जैन धर्म की कल्पना भी नहीं की जा सकती है । हिंसा का निषेधवाचक शब्द है 'अहिंसा' । यह अहिंसा शब्द ही क्यों चुना ? क्यों नहीं 'क्षमा' या 'दया' जैसे सकारात्मक (पोज़िटिव) शब्द को चुना ? काफी कुछ सोचने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि क्षमा में जहाँ अधिकारभाव की बू आती है या 'दया' में कर्तव्य-बोध के साथ अधिकार-भाव जुड़ा हुआ है, वहीं 'अहिंसा' शब्द मानव के मात्र कर्तव्य-भाव को इंगित करता है । अहिंसा अर्थात् हिंसा न करना । इसमें कहीं भी अधिकार-भाव नहीं है । वह तो पूर्ण-रूप से प्रवृत्ति-परक है ।

भौतिकवाद के विकास के साथ आधुनिक मानव और और भयाक्रान्त होता जा रहा है । सुरक्षा के नाम पर राष्ट्र के बजट बनते हैं और मानव जाति के महाविनाश को आमंत्रण देने वाले शस्त्रास्त्रों का निर्माण किया जाता है । एक समय था जब मनुष्य अपनी हिंसक प्रवृत्तियों का प्रदर्शन धर्म के नाम पर करता था और अपने इन संघर्षों को वह धर्मयुद्ध की संज्ञा देता था । आज भी हमारी बड़ी-बड़ी शक्तियाँ विश्व शान्ति के लिए युद्ध करती हैं । निश्चय ही इन सबके पीछे जो हमारी स्वार्थ वृत्ति, अधिकार लिप्सा, असहिष्णुता आदि विकृत प्रवृत्तियाँ कार्य करती हैं वे सब हिंसा के ही विविध रूप हैं । वस्तुतः हिंसा के मूल में घृणा, भय, आक्रोश, स्वार्थ एवं भोग-लिप्सा की प्रवृत्तियाँ ही कार्य कर रही होती हैं । जब तक इन पर विजय प्राप्त नहीं की जाती तब तक जीवन के सच्चे रूप का प्रकटन कैसे संभव हो सकता है ?

भगवान् महावीर ने एक बार अपने शिष्य गौतम गणधर से कहा था, "मेरी सेवा करने की अपेक्षा दीन-दुखियों की सेवा करना अधिक श्रेयस्कर है । यदि शिष्य होने के नाते मेरी आज्ञा का पालन करना चाहते हो तो जाओ, प्राणिमात्र की आत्मा को

कर्मवाद

जैनदृष्टि जहाँ अनीश्वरवादी है वहीं कर्मवाद के सिद्धान्त को मान्यता देती है। कर्म के बन्धन और उसके परिणाम को प्रायः सभी मानते हैं। जैनदृष्टि के अनुसार, प्रत्येक जीव अनादि काल से कर्म बन्धन में बंधा हुआ है। अपने पुरुषार्थ से वह इन कर्मों की निर्जरा कर परम परमात्म स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। ये कर्म दो प्रकार के होते हैं - पुण्य कर्म और पाप कर्म। पाप कर्म की अपेक्षा पुण्य कर्म की श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध है। लेकिन पुण्य कर्म भी एक सीमा तक उपयोगी है। उसके बाद साधक को वह भी व्यर्थ है। क्योंकि आत्मा के पूर्ण विकास में वह भी बाधक है। कहा भी जाता है -

'पुण्य पाप मिल दोय पायन बेड़ी डालो।'

पुण्य की अवस्था से आगे एक शुद्ध भाव की अवस्था होती है जहाँ कर्म आस्रव तो होता है लेकिन उनमें बल नहीं होता। कर्मों के बन्धन ढीले होते ही जीव अपने स्वरूप को पहचानने लगता है। फिर ढीले हुए बन्धनों को टूटने में देरी नहीं लगती। जैन-दर्शन में इसी अवस्था को 'सर्वज्ञ' कहा गया है। आत्मा का तब ज्ञानानन्द रूप निखर उठता है। उसे सम्पूर्ण विश्व का, उसकी प्रत्येक अवस्था या पर्याय का पूर्ण बोध हो जाता है। वह वीतराग हो जाता है। और अन्त में, सम्पूर्ण कर्म-बन्धनों से मुक्त हो सिद्ध अवस्था पा लेता है। जैन दर्शन में इसे ही मुक्ति या मोक्ष कहते हैं।

जैन दर्शन के मान्य ग्रन्थ 'तत्त्वार्थाधिगम सूत्र' में इस अवस्था को प्राप्त करने के साधन बतलाते हुए आचार्य उमास्वामी लिखते हैं -

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।'

अर्थात् सम्यग् दृष्टि और ज्ञान पर आश्रित होकर जीवन में आचरण करने से मुक्ति के द्वार स्वतः खुल जाते हैं। किसी ईश्वरीय प्रेरणा या चमत्कार की वहाँ अपेक्षा नहीं रहती है।

अनेकान्तवाद

जैन दर्शन में अनेकान्तवाद की स्थापना से विवेकशील मानव समाज का बड़ा उपकार हुआ है। हमारी ज्ञान-शक्ति सीमित है। ज्ञान की पूर्ण निर्मलता के अभाव में एकाकी दृष्टि से किसी वस्तु के स्वरूप का विवेचन भी एकांगी ही होगा। पाँच अंधों द्वारा हाथी के टटोलने पर उनके द्वारा बनी धारणा एक अच्छा उदाहरण है।

अनेकान्तवाद का यह सिद्धान्त समाज के भीतर समन्वय की स्थापना तो करता ही है, सहिष्णुता की भावना भी लाता है। उसमें दूसरों पर अपने विचारों को थोपने

आनन्द, सुख और संतोष पहुँचाओ ।'' जनमानस को उद्बुद्ध करते हुए उन्होंने कहा था - विश्व के सभी प्राणी, चाहे वह छोटे हों या बड़े, पशु हों या मानव, सभी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता ---

'' सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं ।''

सबको सुख प्रिय है, दुःख अप्रिय है, सभी को अपने प्राण प्यारे है -

''सव्वे पाणा पियाउया सुहसाया दुहपडिकूला ।''

जैन दृष्टि के अनुसार, जो दूसरे का वध करता है, या वध करने की सोचता है वह पहले ही अपना वध कर बैठता है । क्योंकि इससे उसकी आत्मा विकृत हो जाती है, पतित हो जाती है । उल्लेख है -

''जिसे तू मारना चाहता है, वह तू ही है ।
जिसे तू शासित करना चाहता है, वह तू ही है ।
जिसे तू परिताप देना चाहता है, वह तू ही है ।''

जैन धर्म की यह दृष्टि ही अहिंसा का मूल आधार है । अहिंसा का यह उद्घोष यदि सम्यक् प्रकार से किया जाए तो आज भी हम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को प्रयोगात्मक रूप देकर इस मानव-जाति को महाविनाश से बचा सकते हैं ।

अपरिग्रहवाद

सम्पूर्ण मानव समाज को वास्तविक सुख शान्ति की ओर प्रेरित करने के लिए जैन दर्शन में एक और दृष्टि को उद्घाटित किया गया है । वह है - अपरिग्रहवाद । यह सिद्धान्त एक ओर आर्थिक समता का आधार तो बनता ही है, परिग्रह से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का भलीभाँति निवारण भी करता है ।

जैन दृष्टि में, ये सब बाह्य पदार्थ हमारे नहीं हैं । अतः इनके प्रति हमारा इतना ममत्व क्यों ? ये पदार्थ तो विनाशी हैं जबकि हमारा आत्म रूप अविनाशी अमर है । मनुष्य जब इन बाह्य पदार्थों में अपनेपन का बोध करने लगता है तभी से उसे इस सांसारिक पीड़ा का अनुभव होने लगता है ।। इसीलिये तो जैन-दर्शन में, यह शरीर और-तो-और इन्द्रियाँ भी हमारी नहीं हैं, बाहरी वस्तुओं की बात तो दूर रही । अतः संयम धारण कर अपने स्वरूप को पहचानना जैन धर्म-दर्शन की मुख्य सीख है । जैसे-जैसे हम अपने को पहचानेंगे वैसे-वैसे इन बाह्य पदार्थों से हमारा यह ममत्व स्वयं ही घटता जायेगा ।

जैन-दर्शन में इस तथ्य को बड़ी गहराई से समझा गया । भौतिकवाद मानवीय दुःखों को दूर करने का साधन नहीं है । वह तो तृष्णा को ही बढ़ाता है, आसक्ति

को उद्दीप्त करता है ।

सच कहा जाए तो सारे भौतिक और मानसिक दुःखों का मूल कारण यह आसक्ति ही है । वस्तु का संग्रह करना उतना घातक नहीं है जितना कि उस संग्रह में व्यक्ति द्वारा आसक्ति रखना है । कहा भी गया है - 'यदि सोने-चाँदी के असंख्य पहाड़ भी खड़े कर दिए जाएँ तो भी यह तृष्णा शान्त नहीं हो पाती ।'

समता और संयम की परिष्कृत भावना के द्वारा ही मानव इस तृष्णा रूपी भूतनी को शान्त कर सकता है । इस सदर्भ में मैं यह भी कह देना चाहूँगा कि आसक्ति पैदा करने वाली इन इन्द्रियों का दमन नहीं, उन पर संयम वरतना (कन्ट्रोल करना) ही इसका साधन है ।

एक और बात-जैन धर्म के अनुसार अपरिग्रह की चरम परिणति घरबार छोड़ साधु हो जाने में नहीं । एक गृहस्थ भी अनासक्त कर्मयोग के माध्यम से सच्चा साधक बन सकता है ।

जाति या सम्प्रदायवाद से दूर

जैनधर्म में सम्प्रदाय या जाति-भेद को कोई स्थान नहीं । उसमें जो कुछ भी शिक्षाएँ हैं वे सब सम्पूर्ण मानव-समाज के लिए हैं । फिर सच तो यह है कि ये सभी संप्रदायगत या जातिगत भेद किसी धर्म से निसृत नहीं हुए हैं, ये तो हमारे विकृत क्रियाकाण्डों की देन है । धर्म तो उत्कृष्ट एवं मंगलमय होता है । वहाँ ऊँच-नीच, अपने पराये का भेदभाव कहाँ ?

उपर्युक्त अनीश्वरवाद, अनेकान्त, अनासक्ति, अहिंसा और अपरिग्रह के सिद्धान्त ही जैन दर्शन में समताभाव के आधार स्तम्भ हैं । वृत्ति में अनासक्ति, विचारों में अनेकान्त, व्यक्तिगत जीवन में अपरिग्रह और सामाजिक जीवन में अहिंसा- यह व्यक्ति तथा समाज में होने वाली असंगतियों को रोक पाने, उनमें समता की भावना जागृत करने में प्रमुख साधन है । इन सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करने से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास तो होगा ही, किसी भी राष्ट्र का समाज सही अर्थों में एक आदर्श समाज कहलाने का दावा भी

पुण्य और पाप का विश्लेषण

- डा० पन्नालाल साहित्याचार्य

"वत्थु सहावो धम्मो" इस लक्षण के अनुसार आत्मा का जो ज्ञायक स्वभाव है, वही धर्म है। ज्ञायक स्वभाव वाले आत्मा को निज धर्म से विचलित करने वाला मोह कर्म है। इस कर्म के दर्शन, मोह और चारित्र मोह की अपेक्षा दो भेद हैं। दर्शन मोह के उदय से यह जीव स्व को छोड़कर पर में आत्मबुद्धि करने लगता है और चारित्र मोह के उदय से पर में ममत्व बुद्धि कर उनमें इष्ट अनिष्ट की कल्पना करता हुआ रागद्वेष मय परिणमन करता है। आत्मा की यह अशुद्ध अथवा विभाव परिणति यद्यपि आत्मा के ही उपादान से होती है तथापि इसमें मोह कर्म की उदयावस्था निमित्त कारण है। जब तक आत्मामें यह अशुद्ध परिणति विद्यमान रहती है तब तक आत्मा धर्ममय परिणत नहीं होता। कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार में धर्म की परिभाषा करते हुए कहा है -

चारित्तं खलु धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ।।

अर्थात् चारित्र ही वास्तव में धर्म है; जो धर्म है वह स्वभाव है और मोह-मिथ्यात्व तथा क्षोभ रागद्वेष से रहित आत्मा का जो परिणाम है वह स्वभाव है। इस कथन का तात्पर्य यह है कि मिथ्यात्व और रागद्वेष रहित आत्मा की जो परिणति है वह धर्म है। यह धर्म ही चारित्र कहलाता है। परमार्थ से आत्मा की वीतराग परिणति ही धर्म है।

पं० दौलतरामजी ने भी यही भाव दर्शाया है -

ये भाव मोह ते न्यारे दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबहि जिय धारे तब ही सुख अचल निहारे।

मोह से रहित जितने ज्ञान, दर्शन तथा व्रतादिक हैं वे सब धर्म हैं। इस धर्म को जब यह जीव धारण करता है तब ही अचल-अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त होता है। मोक्ष की प्राप्ति, इस वास्तविक धर्म के प्रकट हुए बिना नहीं हो सकती।

व्यवहार में दया, दान, पूजा आदि प्रशस्त क्रियाओं को जो धर्म कहा जाता है वह उपर्युक्त वास्तविक धर्म की प्राप्ति में सहायक होने से कहा जाता है। धर्म के पुरुषार्थी जीव को सबसे पहले इसी वास्तविक धर्म के प्रति लक्ष्य रखना चाहिए। हमारी जिन क्रियाओं से वास्तविक धर्म प्राप्त नहीं होता, वे क्रियाएं धर्म नहीं मानी जाती। जिस प्रकार चतुर व्यापारी सदा अर्थ-लाभ की ओर दृष्टि रखता हुआ व्यापार करता है उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष वास्तविक धर्म प्राप्ति का लक्ष्य रखता हुआ शुभ क्रियाएं करता है।

यदि कोई व्यापारी क्रय-विक्रय करता रहे, अर्थलाभ का लक्ष्य न रखे तो उसका व्यापार चल नहीं सकता । इसी प्रकार कोई मनुष्य मात्र बाह्य क्रियाओं को धर्म मान कर करता रहे और उनसे प्राप्त होने वाले वीतराग परिणति रूप वास्तविक धर्म पर लक्ष्य न रखे तो उसे धर्म पुरुषार्थ से साध्य होने वाले मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

आजकल 'पुण्य धर्म है या नहीं ?' यह प्रश्न विवाद का विषय बना हुआ है । परन्तु आचार्यों के द्वारा निरूपित अनेकान्त शैली से निरूपित वस्तु स्वरूप का विचार करने पर वह विवाद अनायास शान्त हो सकता है । 'मोह-जन्य विकार से रहित आत्मा की निर्मल परिणति ही धर्म है' जब धर्म के इस लक्षण पर विचार किया जाता है तब मोह के मन्द उदय में होने वाली शुभ परिणति रूप पुण्य को धर्म नहीं माना जाता और जब उस धर्म की प्राप्ति में सहायक होने के कारण में कार्य का उपचार कर कथन किया जाता है तब दया, दान, पूजा आदि के शुभ परिणामरूप पुण्य को धर्म माना जाता है ।

यही बात अहिंसा और दया के विषय में आती है । राग द्वेष रूप परिणति का अभाव होना अहिंसा है और पर दुःख निवृत्ति का जो शुभ राग है वह दया है । अहिंसा और दया के तथोक्त लक्षणों पर विचार करने से दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है । इन लक्षणों के अनुसार आत्मा की वीतराग परिणति रूप होने से अहिंसा धर्म है तथा शुभ राग रूप होने से दया धर्म नहीं है । आगम व लोक व्यवहार में जहाँ दया को धर्म कहा गया है वहाँ अहिंसा धर्म का साधक होने से धर्म कहा गया है या अहिंसा का पर्यायवाची मानकर कहा गया है ।

'दया धर्म नहीं है, पूजा धर्म नहीं है, दान धर्म नहीं है' इन सब कथनों का फलितार्थ यह नहीं है कि ये सब अधर्म हैं, अननुकरणीय है । इनका फलितार्थ इतना ही है कि ये आत्मा की शुद्ध परिणति नहीं है । जब तक मोहजन्य विकार की एक कणिका भी विद्यमान रहेगी तब तक वह पूर्ण शुद्ध परिणति नहीं कही जा सकती । तात्पर्य यह है कि विकार की एक कणिका भी जीव को मोक्ष प्राप्त होने में बाधक कारण है । इस विकार कणिका के रहते हुए देवायु आदि पुण्य प्रकृतियों का बन्ध होता है और उसके फलस्वरूप यह आत्मा संयम से च्युत हो असंयम दशा में आ जाता है और कुछ समय के लिये नहीं, किन्तु सागरों पर्यन्त के लिये । वास्तविक पुरुषार्थ में जरा सी कमी रह जाने के कारण यह जीव सागरों पर्यन्त के लिये अपने लक्ष्य - मोक्ष प्राप्ति से भटक जाता है ।

मोक्ष मार्ग में दया, दान आदि पुण्य क्रियाओं के करने का निषेध नहीं है । ये क्रियायें तो अपनी भूमिका के अनुसार करना ही पड़ती हैं । लकड़ी के भीतर जलते हुए नागयुगल को देखकर गृहस्थावस्था में भगवान् पार्श्वनाथ की आत्मा में भी दया का

भाव आता है, वे उसकी रक्षा के लिये कमठ के जीव को उपदेश देते हैं। परन्तु ज्ञानी जीव इन सब क्रियाओं को करता हुआ भी श्रद्धा में इन्हें साक्षात् मोक्ष मार्ग नहीं मानता। उसकी श्रद्धा है कि इस शुभराग रूप परिणति से देवायु का बन्ध होगा, मोक्ष नहीं। आस्रव, बन्ध, संवर और निर्जरा के भावों का यथार्थ बोध सम्यग्ज्ञानी जीव को ही होता है। जो आस्रव और बन्ध के कारणों को संवर और निर्जरा का, तथा संवर और निर्जरा के कारणों को आस्रव और बन्ध का कारण मानता है वह यथार्थ तत्व श्रद्धानी कैसे हो सकता है? आत्मा में इन भावों के अलग-अलग स्थान नहीं हैं। एक ही आत्मा में ये सब भाव होते हैं, उनका भेद रखना भेद विज्ञान का कार्य है। शरीर और आत्मा जुदे जुदे हैं, यहीं से भेद विज्ञान शुरू होता है और आत्मा का शुद्ध ज्ञायक भाव तथा उसके साथ मिले हुए मोह जन्य विकारी भाव जुदे जुदे हैं, यही भेद विज्ञान समाप्त होता है। भेद विज्ञान का यह अन्तिम रूप प्राप्त होने पर ही 'ज्ञाने ज्ञाने प्रतिष्ठितम्' की भूमिका आती है। इस भेद विज्ञान की महिमा में अमृतचन्द्र सूरि ने लिखा है।

'भेद विज्ञानत. सिद्धा सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥'

आज तक जितने सिद्ध हुए हैं वे सब भेद विज्ञान से ही सिद्ध हुए हैं और जितने संसार में रुके हैं वे सब भेद विज्ञान के अभाव से ही रुके हैं।

ज्ञान में से मोहजन्य विकार के दूर होने पर यह जीव अन्तर्मुहूर्त के भीतर नियम से केवल ज्ञानी बन जाता है। छद्मस्थ वीतराग दशा का काल अन्तर्मुहूर्त ही है। श्रद्धा की भी बड़ी महिमा है। रागादिक विकारी भावों का सर्वथा अभाव तो दशमगुण स्थान के अन्त में ही होता है उसके पूर्व नहीं, परन्तु श्रद्धा के कारण यह जीव चतुर्थ गुणस्थान ही से मोक्ष मार्ग को प्राप्त हो जाता है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव के मात्र अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी राग छूटा है, अप्रत्याख्यानावरणादि प्रकृतियों के उदय में होने वाला राग विद्यमान रहता है और उस राग के सद्भाव में यह एक दो नहीं, छियानवे हजार स्त्रियों तक का स्वामी होता है, इतने पर भी वह सम्यग्दृष्टि कहलाता है और यथार्थ श्रद्धा के अभाव में मुनि-लिंग को धारण करने वाला व्यक्ति भी संसारभ्रमण का पात्र बना रहता है।

जिस प्रकार मकान नींव से ही बनता है ऊपर से नहीं। उसी प्रकार धर्म सम्यग्दर्शन से ही शुरू होता है ऊपर से नहीं। सम्यग्दर्शन के बिना ऊपर से शुरू हुआ धर्म कब नष्ट हो जावेगा, इसकी कुछ गारंटी नहीं है। इस कथन का यह भी तात्पर्य नहीं ग्रहण करना चाहिये कि सम्यग्दर्शन से धर्म का प्रारम्भ होता है अतः अब आगे बढ़ने की - चारित्र धारण करने की आवश्यकता नहीं है। अरे भाई! धर्म की पूर्णता तो सम्यक् चारित्र की पूर्णता पर ही निर्भर है। जब तक परम यथाख्यात चारित्र के रूप

में इसकी पूर्णता नहीं होती तब तक मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता । इसलिये आत्म कल्याण के लिये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र - तीनों की परम आवश्यकता है । यही कारण है कि समन्तभद्र स्वामी ने -

सद्दृष्टि ज्ञान वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।
यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धतिः ॥

इस श्लोक द्वारा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को धर्म कहा है तथा इन्हीं को मोक्ष मार्ग और इनसे विपरीत मिथ्यादर्शनादि को संसार का मार्ग बतलाया है ।

शरीर का धर्म, स्पर्श रस गन्ध और रूप है तथा आत्मा का धर्म सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र है अथवा अध्यात्म की भाषा में वीतराग परिणति है । इस जीव का कल्याण आत्मधर्म होगा, शरीर धर्म से नहीं, इसलिये आत्मधर्म को अंगीकृत कर कल्याण के मार्ग में अग्रसर होना चाहिये ।

धर्म के समस्त प्रचलित लक्षणों का संकलन कार्तिकेय मुनि ने स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा निम्न प्रकार किया है -

धम्मो वत्थु सहावो खमादि भावो य दस विहो धम्मो ।
चारित्तं खलु धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥

तात्पर्य यह है कि कोई आचार्य 'वत्थु सहावो धम्मो' - वस्तु स्वभाव ही धर्म है, इन शब्दों के द्वारा आत्मा के ज्ञाता दृष्टा स्वभाव को ही धर्म कहते हैं । कोई आचार्य 'उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव आदि दश प्रकार के भावों को धर्म कहते है, कोई चारित्रको धर्म कहते है और कोई जीव रक्षा को ही धर्म कहते हैं । ये सब लक्षण एक दूसरे के पूरक है, एक के होने पर दूसरे लक्षण स्वयमेव प्रकट हो जाते हैं ।

भाषण : आलेख का परिशिष्ट

अभी आज के सत्र में एक प्रश्न मेरे सामने आया है - माननीय नीरजजी द्वारा । परिणमन वस्तु का स्वभाव है तब क्या अशुद्ध परिणमन भी वस्तु का स्वभाव है ? क्या द्रव्य के सहकार के बिना अशुद्ध परिणमन हो सकता है ? नीरज जी इस बात का समाधान चाहते हैं । एक भाषण में कहा गया था कि 'वस्तु का परिणमन स्वभाव है,' सो तो ठीक है । यह शास्त्र सम्मत है कि परिणमन वस्तु का स्वभाव है लेकिन यह परिणमन दो प्रकार का होता है शुद्ध परिणमन और अशुद्ध परिणमन । जिसे शास्त्रीय शब्दों में स्वभाव और विभाव कहा गया है । विभाव परिणमन परसापेक्ष होता है । पं० कैलाशचन्द जी ने नेमीचन्द जी के साथ भी चर्चा की थी - निमित्त और उपादान की ।

उसका सार था कि वस्तु का परिणमन अपनी उपादान शक्ति से होता है, इसमें कोई दो राय नहीं है । पर अशुद्ध परिणमन में अन्य द्रव्य के सहकार की आवश्यकता रहा करती है । इसलिए अशुद्ध परिणमन में कर्मोदय कारण माना गया है । सम्यग्दर्शन के प्रगट होने में और मिथ्यात्व के प्रगट होने में कर्म सापेक्षता स्वीकार है । करणानुयोग में इस चीज पर विशद विवेचन किया गया है । यदि एकांत से यह मान बैठें कि परद्रव्य, कुछ नहीं करता है । द्रव्य का परिणमन करना स्वभाव है इसलिए अपने आप हो जाता है तो ऐसा मानने पर करणानुयोग सम्मत कर्मों की व्यवस्था और षड्द्रव्यों की मान्यता निरर्थक हो जाती है अतः वस्तुस्थिति को मान करके हमको चलना है कि परिणमन उपादान की शक्ति से होता है लेकिन निमित्त का सहकार अवश्यंभावी है । निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध स्वीकार किये बिना काम चलता नहीं है ।

- - -

मेरे आलेख का विषय रहा है धर्म और पुण्य का विश्लेषण -

यह ताजी घटना है और उसी पर आधारित है । घटना को तो नहीं बताऊँगा पर वह विसंवाद की चीज बन गई । धर्म और पुण्य हमारा कर्तव्य है ऐसा विचार कर कोई व्याख्यान करता है - व्यवहार नय का आलंबन लेकर श्रावक को आवश्यक कार्य देव पूजा, दया, दान आदि धर्म है ; और कोई दूसरा व्यक्ति दीवालों पर अंकित करता है देव तो शुद्ध आत्मा है । देव पूजा धर्म नहीं है - पुण्य है । इससे मोक्ष नहीं मिलता । इस प्रकार के आलेखों या नारों से विसंवाद उत्पन्न हो जाते हैं और विसंवाद के कारण एक बड़ा संघर्ष हो जाता है वह बात अच्छी नहीं लगती । सब विद्वत्वर्ग यहाँ उपस्थित है । विद्वान् अपने नगर के मार्गदर्शक हुआ करते हैं । उन्हें चाहिये कि वे इस प्रकार वस्तु का विश्लेषण करें कि जिससे जो बड़ा विसंवाद लोगों में चल रहा है कि धर्म क्या है और पुण्य क्या । वह शान्त हो जाये ।

तृतीय सत्र

बुधवार, 8 सितम्बर, 1982 (9·30 बजे से 1·00 बजे तक)

विषय : जैन धर्म और विज्ञान

अध्यक्ष : डा. विलास आदिनाथ संगवे
मंगलाचरण : डा॰ दरबारी लाल कोठिया
विषय - प्रवर्तन : डा॰ नेमीचन्द जैन

1· आर्यिकाश्री स्याद्वादमतीजी : जैन दर्शन और आचार : एक वैज्ञानिक दृष्टि

2· पं0 जगन्मोहनलाल शास्त्री : जैन आगम में आधुनिक वैज्ञानिक संकेत

3· प्रो0 लक्ष्मीचन्द्र जैन : Systematics in Jainism & Science

4· डा॰ नन्दलाल जैन : जैन दर्शन में वैज्ञानिक तथ्य : संकलन और समस्याएँ

जैन धर्म और विज्ञान

- आर्यिका स्याद्वादमतीजी

मुनिकुंजों के चरणों में नमस्कार ।

विद्वत् गोष्ठी का तीसरा सत्र चालू है । विषय आपको विदित हो चुका है । जैनधर्म और विज्ञान । इसमें सर्वप्रथम हम देखेंगे, जैनदर्शन क्या है और विज्ञान क्या चीज है । और इनका आपस में क्या सम्बन्ध है । हमारा जैनदर्शन स्वयं वैज्ञानिक होकर भी इतना पिछड़ा क्यों है और हम जैनदर्शन को वैज्ञानिक रूप प्रदान करने के लिए इसमें पीछे क्यों है ? इसको हम कौन-सा कार्य करके पूर्तरूप दे सकते हैं । इन सभी बातों पर प्रकाश डालेंगे ।

जैनदर्शन क्या है ? जिसके आचार में अहिंसा है, विचार में स्याद्वाद है, अपरिग्रह जिसका अवलंबन है और ब्रह्मचर्य जिसकी आधारशिला है, ऐसा जैनदर्शन है । इस जैन दर्शन को हमने अपने ही घर के अन्दर, नयों की अपेक्षा से रहित होकर, एक-एक नय को अलग-अलग दर्शन मानकर, जैनदर्शन में अनेक दर्शन उपस्थित कर दिये । एक स्थान पर विद्वानों की संगोष्ठी हो रही थी । सभी विद्वान् अपने अपने विचारों को लेकर विवाद करने लगे । एक विद्वान् कहने लगे, हे दर्शन शास्त्रियों । देखिये मैं जिन शब्दों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करती हूँ उससे हमारा जैनदर्शन कितना विलक्षण है । यह दर्शन स्वयं अपने कार्यों से धरातल की ओर जा रहा है। जब स्वयं दर्शन विवाद के गर्त में जाने लगे तो एक दर्शन शास्त्री जो बहुत गूढ तत्वों को जानने वाले थे उन्होंने कहा - भारत के दर्शनशास्त्रियों, आप अपने-अपने विचारों को लेकर इस तरह विवाद न कीजिए । तो क्या कीजिये ? जो जैनदर्शन का स्याद्वाद सिद्धांत, अनेकान्त सिद्धान्त है, वह एक मौलिक सिद्धान्त है । यदि उसे भारत में अपना लिया जाये तो जैन दर्शन को अपनाने पर भारत में ही नहीं विदेशों में भी जितने विवाद हैं वे स्वयं नष्ट हो सकते हैं । यह जैन दर्शन के स्याद्वाद सिद्धान्त की अमूल्य देन है ।

हम देखते हैं कि विज्ञान और जैनदर्शन को दो पलड़ों पर रखते हैं । वास्तव में आप देखिये जैनदर्शन और विज्ञान कोई दूसरी दो वस्तुएं नहीं हैं । वास्तव में जो जैनदर्शन है वही विज्ञान है और जो विज्ञान है वही जैनदर्शन है । कारण क्या है ? जैनदर्शन वस्तु तत्वों का निर्णय करता है । वस्तु तत्व का कथन करना जैन दर्शन का सिद्धांत है । विज्ञान जो है वह उसे प्रेक्टिकल रूप में देता है। जैनदर्शन

मैं यदि किसी वस्तु को थ्योरेटिकल रूप दे दिया है तो विज्ञान ने उसे प्रेक्टिकल रूप से दे दिया, सिर्फ इतना अंतर रहा थ्योरेटिकल और प्रेक्टिकल का । बाकी जैनदर्शन और विज्ञान में कोई अन्तर नहीं है । जब हम उसके और सिद्धांतों की ओर देखते हैं कि जैन दर्शन के जितने भी सिद्धांत हैं वह सारे विज्ञान की धरातल पर खड़े होते हैं । मूल आचार सिद्धांत जैन दर्शन के रहे - रात्रि भोजन का त्याग, जल छानकर पीना, देव दर्शन करना । अभक्ष्य का त्याग आदि जितने भी सिद्धांत रहे उनको हम जब प्रेक्टिकल रूप से देखते हैं तो खरे उतरते हैं । जैनदर्शन ने कहा - रात्रि भोजन नहीं कीजिये, क्यों नहीं ? जैनदर्शन में धर्म के आधार पर कहा कि यदि अहिंसा की हमें रक्षा करनी है तो रात्रि भोजन का आपको निषेध है । जब विज्ञान की तुला पर हम तौलते हैं तो देखते हैं कि विज्ञान ने भी यह स्वीकार कर लिया है कि रात्रि के समय - दिन में जो सूर्य की ऊर्जा शक्ति हमें प्राप्त होती है - सूर्य की किरणों में छोटे-छोटे जीवाणु उत्पन्न नहीं होते हैं । वह ऊर्जा शक्ति रात्रि में प्राप्त न होने से अनेकों कीटाणु रात्रि में उत्पन्न हो जाते हैं, इस कारण सारा वातावरण विषैला बन जाता है । इतना ही नहीं जो वृक्ष हैं वह रात्रि में विषैली गैसें छोड़ते हैं और सारा वातावरण विषैला बन जाताहै । इसलिए रात्रि भोजन का त्याग कर देना चाहिए ।

दूसरी बात विज्ञान ने यह भी सिद्ध की कि जो पुरुष है - जो जीव हैं उन्हें भोजन करने के 6 घण्टे के बाद विश्राम करनाचाहिये । यदि हम इसका पालन नहीं करते हैं तो हमारे जीवन में निरोगता नहीं आती । किन्तु बात यह हुई कि हमने नवयुवकों और हमारी नवयुवतियों को धर्म के आधार पर उन्हें समझाने की चेष्टा की किन्तु विज्ञान के आधार पर, जैन दर्शन के साथ साथ उसे विज्ञान की कसौटी पर भी खरे उतारने की चेष्टा करें ऐसे साहित्य का प्रतिपादन करें । समाज, देश के अन्दर ऐसे साहित्य का प्रतिपादन करना चाहिए जिसके द्वारा हम सिद्धांत को समझ सकें । जिसके द्वारा हम समझ सकें, समझा सकें कि जैनदर्शन क्या है ? विज्ञान का उसके साथ सम्बन्ध क्या है ?

जापान, जर्मन आदि देशों में आज भी जैसे सूर्यास्त होता है रसोईघर के ताले लगा दिये जाते हैं । इसका क्या कारण है ? उन्होंने जैन सिद्धांत को, जैनधर्म को प्रेक्टीकल करके देखा है । उसे हमने प्रेक्टीकल नहीं, धर्म मात्र समझकर ढकोसला मात्र समझकर पीछे छोड़ दिया है । यदि हमें उस सिद्धांत को मूर्त रूप देना है तो उसे वैज्ञानिकता की दृष्टि से दिखाकर उसे खरा उतारना होगा । जैनधर्म का दूसरा सिद्धांत रहा जल छानकर पीना चाहिए । हमारे यहाँ आचार्यों ने कहा कि एक बूंद में अनन्तानन्त जीव होते हैं किन्तु हम उसे धर्म के नाम पर स्वीकार करने

े लिए तैयार नहीं है क्योंकि आजकल वैज्ञानिक युग में किसी युवक या युवती से, श्रावक या श्राविका से कहा जाय कि जल छानकर पीना चाहिए तो वह मानने को तैयार नहीं होता है। किन्तु अभी-अभी नई खोज के अनुसार ज्ञात होता है कि एक बूंद के अन्दर 36450 जीव होते हैं। यही कारण है कि आज के वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि जो पानी छानकर पीते हैं उन्हें नारियों नामक रोग नहीं होता है। और जो पानी छानकर नहीं पीते हैं। छोटे-छोटे कीटाणु उनके पेट में चले जाते हैं जिससे नाना रोग हो जाते हैं। इसी कारण आज रेती के द्वारा जब तक सूक्ष्मता के साथ जल को छाना जा सकता है, छाना जा रहा है। हमारे आचार्यों ने आज से कई वर्षों पूर्व सिद्ध कर दिया था कि जिस कपड़े के अन्दर सूर्य की किरणों का प्रवेश नहीं होता, ऐसे दोहरे कपड़े से, छन्ने से पानी छानने से सारे कीटाणु निकल जाते हैं और शुद्ध पानी पेट में पहुंचता है उसमें किसी प्रकार के कीटाणुओं की उपस्थिति नहीं होती।

तीसरा सिद्धांत हम देखते हैं कि देवदर्शन रोजाना करना चाहिए। उसे विज्ञान भी स्वीकार करता है। विज्ञान मानता है कि पदार्थ में आकर्षण शक्ति होती है। उस शक्ति के माध्यम से एक वस्तु दूसरी वस्तु को आकर्षित करती है। उसी का प्रतिफल कि हमारे घर में जैसी मूर्ति रखते हैं या जैसा चित्र रखते हैं - और जो उसका नित्य दर्शन करता है देखता है उसके ऊपर उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसलिए हमारे आचार्यों ने कहा कि यदि हम जिनेन्द्रदेव के दर्शन करते हैं तो हमें वीतरागता प्राप्त होती है। एक जैन महिला ने अपने घर के अन्दर एक सूअर का फोटो रखा था। रोजाना उस फोटो के दर्शन करती थी - उसका निरीक्षण करती थी। वह क्रिश्चियन थी। उसका प्रतिफल यह हुआ कि उसके गर्भ से लड़का हुआ उसके अन्दर सारे संस्कार रीछ के से हो गये। इसका तात्पर्य क्या है - जिसप्रकार एक लड़के में रीछ के संस्कार आ सकते हैं तो हमारे आचार्यों ने कहा कि जो वीतरागता प्राप्त करना चाहता है, उसे वीतराग देव के दर्शन करना चाहिए। उस दर्शन से - उस मूर्ति के आकर्षण से उसकी जो शक्ति होती है वह हमारे अंदर खींचकर वीतरागता को प्राप्त कराने में समर्थ होती है।

आगे चलकर हम देखते हैं कि जैनदर्शन के अंदर अनेक चीजों को अभक्ष्य बता दिया है। अण्डे के लिए जैनधर्म में जहाँ अभक्ष्य कहा वहीं आज के वैज्ञानिकों ने कहा कि अण्डे के अन्दर एक अभक्ष्य पदार्थ होता है उस भयानक पदार्थ के कारण अण्डे खाने वाले जीवों को हाई ब्लड प्रेशर, हार्ट अटैक, और दिल की बीमारियाँ हो जाती हैं, जिसे हमारे आचार्यों ने पूर्व में ही स्वीकार किया है। धूम्रपान के संबंध में हमारे आचार्यों ने बहुत पहले ही बता दिया। वहीं आज के वैज्ञानिकों ने भी यह सिद्ध कर दिया कि तम्बाकू के अन्दर एक निकोटीन नामक पदार्थ होता है उस निकोटीन नामक पदार्थ

के धूम्रपान में इस प्रकार की एक शक्ति होती है जिस धुँए के पेट में जाते ही वह धुँआ प्रति 24 घंटे के अन्दर जीव की एक समय की आयु कम करता है ।

आगे चलते हैं । हम देखते हैं कि आज परमाणु की शक्ति को मानकर हम विज्ञान को बहुत बड़ा तूल दे रहे हैं । परन्तु आज जितना विज्ञान है उसके आगे बढ़ने का कारण है हमारे उमास्वामी आचार्य द्वारा रचित तत्वार्थ सूत्र का पंचम अध्याय । जिसके अन्दर आचार्य श्री ने एक सूत्र बहुत मार्के का कहा है, जो हमें सफलता देता है । वह है - न जघन्य गुणानां - द्व्याधिकादि गुणानां तु । जघन्य गुणों का कभी भी परस्पर सम्बन्ध नहीं होता । द्व्याधिकादि गुणानां तु - यदि दो पदार्थों में एक से दूसरे में दो गुण अधिक है तो एक का दूसरे से सम्बन्ध हो जाता है । यहाँ पूर्व में भी देखकर आये थे कि जब तीर्थंकर, तीर्थंकर है तो दो तीर्थंकरों का आपस में किसी समय मिलाप नहीं होता । दो वासुदेवों का कभी मिलाप नहीं होता, दो चक्रवर्तियों का कभी मिलाप नहीं होगा । जब हम परमाणु की दृष्टि से देखें - पुद्गल की ओर दृष्टि लगाकर देखें तो देखेंगे कि जितने मकान बने हैं - रेती और चूना जब आपस में मिलते हैं - दोनों को 50-50 प्रतिशत जब हम मिलायेंगे तो कभी आपका मकान ठीक बन सकता नहीं है । किन्तु यदि सीमेन्ट अधिक है - चूना अधिक है और रेती कम है तो दोनों में से किसी की भी मात्रा अधिक होगी, दो गुना अधिक होगी तो आपका मकान शीघ्रता से बनकर तैयार होगा । तो हमारा जितना भी निर्माण का काम है वह सिर्फ एक न जघन्य गुणानां, द्व्याधिकादि गुणानां तु' इस सूत्र से सम्बन्ध रखता है ।

आगे चलते हैं - आज हम चाहते हैं कि हमने एक यान बनाया है - जिसकी रफ्तार 55 सेकेण्ड 55 मिनट की है । किसी यान की रफ्तार 30 सेकेण्ड की 30 मिनट की । इसलिए हम कहते हैं कि जितनी अधिक रफ्तार होती है उसको हम बड़ा आश्चर्य मानते हैं । किन्तु पुद्गल की शक्ति को हमारे आचार्यों ने पहले ही वर्णन कर दिया । इसलिए हमारे आचार्यों ने कहा कि परमाणु जो है उसमें कितनी शक्ति होती है । यदि वह मन्द गति से गमन करे तो एक समय में एक प्रदेश गमन करता है और उसकी इतनी अधिक शक्ति है कि यदि वह तीव्र गति से गमन करे तो एक समय में 14 राजू प्रमाण गमन कर सकता है । जब इतनी शक्ति हमारे आचार्यों ने कही । किन्तु हम अपने आचार्यों को प्रमाणित न मान करके यान आदि वैज्ञानिक चमत्कारों को उन्हें मूर्त रूप देखकर उसमें आश्चर्यान्वित हो जाते हैं तो उसका मूल कारण क्या रहा, सिर्फ यही कि जैनदर्शन को वैज्ञानिक अपेक्षा से देखने की चेष्टा नहीं की और इन जो दूसरे देशवासी हैं उन्होंने विज्ञान की तुला पर खरा उतारने की चेष्टा की । इसी के फलस्वरूप इस

समय जितना वैज्ञानिक चमत्कार हो रहा है ।

आजकल हमने पुद्गल परमाणु की वास्तविक शक्ति को मानना स्वीकार किया । इससे भिन्न हमारी आत्मा की भी कोई शक्ति है यह हमने स्वीकार नहीं किया । आचार्य कहते हैं कि जिस पुद्गल परमाणु की शक्ति का वर्णन हो रहा है, उसकी शक्ति जानने वाला आत्मा कितना शक्तिशाली होगा । उसी शक्ति को हमारे आचार्यों ने तूल दिया । पुद्गल परमाणु की शक्ति को थ्योरेटिकल रूप दे दिया और आज के वैज्ञानिकों ने इस पंचम काल के जीवों के लिए परमाणु शक्ति को सब कुछ मानकर अपनी आत्म शक्ति को नहीं पहचाना इसलिए पुद्गल को प्रेक्टीकल रूप देने जा रहे हैं । किन्तु आचार्य कहते हैं कि यदि हम उस थ्योरेटिकल को जान सकेंगे और यदि उसे हम प्रेक्टीकल रूप देंगे तो अपनी वस्तु स्वभाव को जानेंगे । तभी हम समझने की चेष्टा कर सकते हैं । अन्यथा विज्ञान और दर्शन का सम्बन्ध भिन्न-भिन्न रहेगा । जब दोनों को एक मानेंगे तो जो बीच की दीवार है वह टूट जायेगी । यह जैनदर्शन जो वास्तविक वैज्ञानिक है सामने आने पर वह दृढ़ हो जायेगा । और हमारी नासमझी है वह दूर हो जायेगी ।

जैन आगम में आधुनिक वैज्ञानिक संकेत

- पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री, कटनी

प्रास्ताविक

आदरणीय अध्यक्ष महोदय,
उपस्थित बन्धुओं, एवं साथियों ।

मैं जो विषय प्रस्तुत कर रहा हूँ उस विषय में शायद अभी कोई चर्चा आयी नहीं है और हो सकता है कि मेरी यह चर्चा आपका कुछ ज्यादा समय भी ले ले । क्योंकि जो धारणाएं हमारी हैं उनको कुछ बदलना पड़ेगा । आप जब तक उसको अच्छी तरह सुनेंगे नहीं तब तक वह समझ में आयेगी नहीं । जैन आगम में यत्र तत्र ऐसे स्थल हैं जो आधुनिक वैज्ञानिक तत्वों का संकेत विपुल मात्रा में देते हैं । अनेक स्थल ऐसे हैं जिन पर वैज्ञानिक शोध कार्य नहीं हुए हैं । कुछ स्थल ऐसे हैं जिन पर जैन चिन्तकों का ध्यान आकर्षित करना होगा । कुछ धारणाएं हमारी ऐसी हैं कि उनसे भिन्न धारणाएं बनाने के लिए अनेक स्थल हमें बाध्य करते हैं । मेरे अध्ययन काल में अनेक स्थल मुझे ऐसे प्रतीत हुए जिनके सम्बन्ध में संक्षेप में उनका विवेचन इस लेख द्वारा विद्वज्जनों के सामने प्रस्तुत करता हूँ । मैंने संभावना भी अपनी तरफ से व्यक्त की है जो आपका ध्यान आकर्षित करने के लिए है । सर्व प्रथम उमा स्वामी के तत्वार्थ सूत्र के आधार पर निर्देश करता हूँ -

आलेख

जैन आगम में यत्र-तत्र ऐसे स्थल भी हैं जिनसे आधुनिक वैज्ञानिक तत्वों के संकेत विपुल मात्रा में पाये जाते हैं । अनेक स्थल ऐसे भी हैं कि जिन पर अभी वैज्ञानिक शोध कार्य नहीं हुए । कुछ स्थल ऐसे भी हैं जिन पर जैन चिन्तकों का भी ध्यान आकर्षित होना चाहिए । जो हमारी धारणाएं हैं उनसे भिन्न धारणा करने के लिए अनेक स्थल हमें बाध्य करते हैं । मेरे अध्ययन काल में जो स्थल मुझे ऐसे प्रतीत हुए उनका संक्षिप्त विवेचन मैं इस लेख द्वारा विद्वान् जनों के सन्मुख प्रस्तुत कर रहा हूं । उन स्थलों पर मैंने कुछ सम्भावनाएं भी इसमें व्यक्त की हैं जो आप सबका ध्यान आकर्षित करने के लिए हैं। हो सकता है कि मेरे चिन्तन की धारा गलत हो या सही हो पर विद्वानों को चिन्तन करने के लिए उन्हें प्रस्तुत कर रहा हूं । आप सबके चिन्तन और अध्ययन से उन पर नया प्रकाश मिल सकेगा, ऐसी आशा करता हूं ।

मैं यहां विद्वज्जनमान्य उमास्वामी के तत्वार्थ सूत्र के आधार पर ही उनका निर्देश करता हूं ।

1. तैजस शरीर के स्वरूप पर विचार

सभी संसारी जीवों के तैजस, कार्मण दो शरीर सदा पाये जाते हैं यह बात 'सर्वस्य' सूत्र द्वारा प्रतिपादित है । यह शरीर अनन्तगुण प्रदेश वाला है, अप्रतीघात है और परम्परा से अनादि काल से है । इसके स्वरूप के विवेचन में आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि में ये शब्द लिखे हैं -

यत्तेजो निमित्तं, तेजसि वा भवं तत्तैजसम् ।

जो तेज में निमित्त हो या तेज में उत्पन्न हो वह तैजस है । इस तैजस शरीर को सोपभोग भी नहीं बताया गया और निरुपभोग भी नहीं लिखा गया अर्थात् इन्द्रियादि द्वारा अर्थ को विषय करने में निमित्त यह नहीं है जैसे अन्य औदारिकादि तीन शरीर हैं तथा इसे कार्मण शरीर की तरह निरुपभोग भी नहीं माना । विचारना यह है कि सोपभोग भी न हो और निरुपभोग भी न हो तो यह तीसरी अवस्था इसकी क्या है । निरुपभोग नहीं है इसका कारण आचार्य लिखते हैं कि तैजस, योग में भी निमित्त नहीं है, इसलिए उपभोग निरुपभोग के सम्बन्ध में इसका विचार ही नहीं हो सकता । यह केवल औदारिक शरीरों में दीप्ति देता है ऐसी मान्यता किस समय तक चली आ रही है । इसके सम्बन्ध में इससे अधिक विचार नहीं हुआ ।

-2-

सम्भावनाएँ

'तैजसमपि' सूत्र की व्याख्या में इसे भी लब्धिप्रत्यय माना है और वैक्रियक को भी लब्धिप्रत्यय माना है तथापि दोनों शरीरों के निर्माण पृथक्-पृथक् वर्गणाओं से है। वैक्रियक तो आहार वर्गणा से ही निर्मित है अतः ऋद्धिधारी मुनि का औदारिक शरीर ही विक्रिया करने की विशेष योग्यता वाला बन जाता है। ऐसी मान्यता है। पर शुभ तैजस जो एक प्रकार से शुभ्र प्रकाश रूप में और अशुभ तैजस ज्वाला रूप में प्रगट होता है,वह क्रियात्मक है ? मेरी दृष्टि में वह तैजस वर्गणा निमित्तक ही होना चाहिए। सूत्रकार ने तो दोनों शरीरों को ही लब्धि प्रत्यय लिखा है। उसकी टीका में उसे औदारिक शरीर ही इस रूप परिणमता है ऐसा नहीं लिखा। 'तेजसि भर्वंवा' पर विशेष विचार किया जाए तो ऐसा प्रतीत होगा यह एक प्रकार का बिजली की तरह 'पावर' है शक्त्यात्मक है जो स्वयं न तो योग रूप क्रिया करता है और न उपयोगात्मक क्रिया का साधन है बल्कि इन सब शरीरों को शक्ति प्रदाता है। औदारिक शरीरों को तथा विग्रह गति में कार्मण शरीर को तेज (शक्ति) दायक है। धवला, पुस्तक 8 की वाचना के समय सागर में भी कुछ संकेत इसी प्रकार के प्राप्त हुए थे अत. यह विचारणीय है।

2. भूमि के वृद्धि ह्रास सम्बन्धी सूत्रों पर विचार

एक प्रश्न जब हमारे सामने आता है कि आर्यखण्ड की इस भूमि पर भोग भूमि के तीन कोस के, 2 कोस के, और एक कोस के तथा कर्मभूमि के प्रारम्भ में 500 धनुष के मनुष्य होते थे तो उस समय क्या भूमि का विस्तार ज्यादा होता था ? यदि नहीं तो कैसे इसी भूमि पर उनका आवास बन जाता था। इस प्रश्न के आधार पर जब विचार आता है तब तत्वार्थ सूत्र के अध्याय 3 के सूत्र 27-28 पर भी ध्यान आकर्षित होता है। वे सूत्र हैं :-

'भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्'

तथा 'ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः

अर्थात् भरत और ऐरावत की भूमियों में वृद्धि व ह्रास होता है उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में, और इनके अलावा अन्य भूमियाँ वृद्धि ह्रास से रहित अवस्थित ही रहती है। यद्यपि पूज्यपाद आचार्य ने इस प्रश्न को उठाया है कि 'क्यों . '? और समाधान दिया है 'भरतैरावतयोः ।' तथापि आगे चलकर उन्होंने लिखा है कि 'न तयोः क्षेत्रयोः असम्भवात् ।' इस प्रश्नोत्तर से स्पष्ट है कि सूत्र से भी क्षेत्र की ही वृद्धि ह्रास का अर्थ निकलता है पर चूँकि उसकी सम्भावना नहीं है अत. भूमि स्थित मनुष्यादिकों के आयु अवगाहना आदि का ही वृद्धिह्रास होता है यह सप्तमी विभक्ति के आधार पर

व्याख्या की ।

संभावना

यह सम्भावना की जाती है कि सूत्र का अर्थ भूमि की वृद्धि ह्रास का भी सम्भाव्य है । प्रथम सूत्र में भरतैरावत में षष्ठी और सप्तमी से प्रचलित अर्थ किया जा सका, पर दूसरा सूत्र स्पष्टतया भूमियों की अवस्थिति बता रहा है वहाँ 'भूमयः' प्रथमान्त शब्द है, षष्ठी, सप्तमी नहीं है, जिससे पूर्व सूत्र पर भी प्रकाश पड़ता है कि यदि भरत ऐरावत के सिवाय अन्य भूमियाँ अवस्थित हैं तो भरत ऐरावत की भूमियों में अनवस्थितता है अतः उनमें वृद्धि ह्रास होते हैं ।

आचार्य पूज्यपाद ने उसकी सम्भावना तो नहीं देखी क्योंकि आर्यखण्ड-गंगा-सिन्धु दोनों महानदियों से पूर्व पश्चिम में और उत्तर दक्षिण में विजयार्ध और लवणसमुद्र से सीमाबद्ध है अतः दिशा विदिशाओं में बढ़ नहीं सकता इसलिए असंभवात् शब्द से उसे व्यक्त किया है तथापि एक और प्रसंग है और जो यह बतलाता है कि उत्सर्पिणी से अवसर्पिणी की ओर कालगति बढ़ने पर चित्रा पृथ्वी पर एक योजन भूमि ऊपर को बढ़ती है और प्रलय काल में वह वृद्धि समाप्त होकर चित्रा पृथ्वी निकल आती है ऊपर बढ़ने पर पर्वतों की तरह ऊपर-ऊपर भूमि घटती जाती है और नीचे चौड़ी रहती है क्या इसी आधार पर वृद्धि ह्रास के सम्भाव्य संकेत तो नहीं हैं । यदि यह माना जाय तो बड़ी अवगाहना के समय उसका विस्तार माना जा सकता है । यह भी एक विचारणीय संकेत है ।

3. ज्योतिषचक्र की ऊँचाई तथा चन्द्रयात्रा पर विचार

वर्तमान मान्यता है कि सूर्य ऊपर तथा चन्द्र नीचे है । किन्तु जैनागम में प्रचलित मान्यता है कि सूर्य पृथ्वी तल से आठ सौ योजन और चन्द्रमा 880 योजन है । यह प्रत्यक्ष अन्तर भी हमारी मान्यता को चुनौती हो जाती है । इस पर विचार किया जाए ।

सम्भावना

सर्वार्थसिद्धि में तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 4 सूत्र 12 की टीका में आचार्य ने इन ऊँचाइयों का वर्णन किया है । किन्तु यह वर्णन जिस आधार पर किया है वह है एक प्राचीन गाथा जिसमें क्रमानुसार पूर्वार्ध में संख्या है और उत्तरार्ध में उन ज्योतिष्कों के नाम हैं - 790, 10, 80, 4, 4, 3, 3, 3, 3 योजन ऊँचे हैं निम्न विमान तारा-रवि-ससि-रिक्ख-बुध-भार्गव-गुरु-मंगल-शनि । इसमें यह सम्भावना भी की जा सकती है कि ग्रन्थों का लेखन हाथ से लेखकों द्वारा किया जाता था । यदि कदाचित् लिपिलेखक लिखने में रवि का नाम भूल से पहले और ससि का नाम उसके पीछे लिख जाए तो दोनों की ऊँचाई का

भी अन्तर पड़ सकता है । इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रायः लिपिलेखक भूल भी कर जाता है वे सब बहुत ज्यादा आगमज्ञ ही होते हैं ऐसा नहीं है । इसके लिए यह गाथा पूज्यपाद स्वामी के पूर्व कहीं अन्यत्र ग्रन्थों में पाई जाती है अथवा उनसे पूर्व के ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में क्या विवेचन है इस ओर ध्यान आकर्षित होना आवश्यक है । अकलंक देव ने यतिवृषभ और नेमिचन्द्राचार्य ने अपने ग्रन्थों में इसीका अनुसरण किया है पर ये पूज्यपाद के बाद के आचार्य हैं । क्या इससे पूर्व का कोई साहित्य है जिसमें उक्त कथन की पुष्टि ही पाई जाती है तभी यह सम्भावना गलत होगी कि लेखक की भूल से परिवर्तन सम्भाव्य है ।

चन्द्रलोक यात्रा और उसकी दूरी

चन्द्रलोक की यात्रा मानव कर सकता है इस पर जैन चिन्तक संशयारूढ़ है उसकी ऊँचाई जो आगम में है और वर्तमान में मानी गई है वह भी जैनागम से मेल नहीं खाती ।

सम्भावना

मनुष्य मनुष्य लोक में जा सकता है । मानुषोत्तर पर्वत तो उसकी सीमा दिशा विदिशाओं में सूत्रकार ने बाँधी है पर ऊपर 99999 योजन और नीचे चित्रा पृथ्वी प्रमाण क्षेत्र भी मनुष्य लोक ही है । फलतः मध्यलोक में मनुष्य लोक 45 लाख योजन लम्बा चौड़ा और एक लाख योजन ऊपर नीचे मोटा है । अतः चन्द्रलोक जो 800 योजन या 880 योजन है वहाँ जाना आगम पद्धति से विरुद्ध नहीं है । अंजन चोरको आकाशगामी विद्या सेठ के मंत्र से प्राप्त होने तथा उसके व सेठ के द्वारा सुमेरु पर्वत के जिनालयों की वन्दना का कथा प्रथमानुयोग में है । विद्याधर और ऋद्धि प्राप्त मुनिजन भी सुमेरु के चैत्यालयों की वन्दना करते हैं । चैत्यालयों की स्थिति वहाँ सौमनस वन में 63000 योजन तथा पाण्डुक वन की 99000 योजन है जब वहाँ मानव जा सकता है तब 880 योजन ऊपर जाना आगम सम्मत है । यह बात दूसरी है कि वहाँ लोग गये या नहीं गये । इसी प्रश्न को उठाकर लोग सन्देह उत्पन्न करते हैं ।

जहाँ तक ऊँचाई के माप का अन्तर है उसके लिए यह विचार भी आवश्यक है कि कुछ समय के कोश का प्रमाण क्या था और आज कोश का प्रमाण क्या है जिसके आधार पर योजन का माप है । जिन हाथों के प्रमाण से गज, और गजों से माइल और कोश इस युग में नापे गये हैं, उनकी ये परिभाषाएँ आधुनिक हैं, प्राचीन नहीं । प्राचीन परिभाषाएँ क्या थीं ? यह शोध होना चाहिए, तब अन्तर दूर होने की स्थिति बनेगी ।

एक उदाहरण पर विचार करें । भगवान् महावीर की ऊँचाई 7 हाथ थी, वह हाथ किसका है या उसका क्या मापदण्ड है ? छठे काल में एक हाथ का शरीर होगा । शरीर

की आकृति 21 हजार वर्ष में 6 हाथ घटेगी तो उस अनुपात से और निर्वाण 2500 में होने वाले मनुष्य सवा छः हाथ के हैं। अब हाथ के प्रमाण की परिभाषा ढूंढना आवश्यक हो गया। यदि उसका निर्णय हो जाय तो माप के अन्तर की शोध हो सकती है। यह भी विचारणीय है कि जैन आगम के अनुसार चन्द्रमा की ऊँचाई 180 योजन है। यह ऊँचाई कहाँ से नापी गई है, सुमेरु के पास विदेह क्षेत्र से या आर्यखण्ड की अयोध्या से ? वर्तमान वैज्ञानिक किस कोण से माप करते हैं यह भी देखना होगा। इस बात को एक उदाहरण से समझिये। सूर्य पृथ्वी से 800 योजन है। कर्क संक्रान्ति के समय चक्रवर्ती नरेश अयोध्या में अपने महल के ऊपर से उस दिन सूर्य विमान में स्थित जिन बिम्ब का दर्शन करता है। सूर्योदय के समय वह सूर्य निषध पर्वत के ऊपर होता है, उस समय सूर्य की दूरी का प्रमाण 47, 263 योजन का आता है। इससे यह स्वयं सिद्ध हो जाता है कि भिन्न-भिन्न स्थानों से, भिन्न-भिन्न चार क्षेत्रों में स्थित सूर्य आदि ग्रहों की दूरी का प्रमाण भिन्न-भिन्न ही होगा। इसी परिप्रेक्ष्य में चन्द्रमा की दूरी के अन्तर ढूंढना आवश्यक होगा तभी सही रूप से चन्द्रमा की वैज्ञानिक दूरी और आगमिक दूरी के अन्तर या रहस्य का भेद पाया जा सकेगा।

उभय विषयों के समक्ष विद्वान् इस पर विचार करें और प्रकाश डालें।

शब्द की पौद्‌गलिकता और गति

'शब्द' जैनागम में पुद्‌गल की पर्याय माना गया है। तत्वार्थ सूत्र अध्याय 5 के सूत्र 24 में यह प्रतिपादित है। शब्द में पुद्‌गल की पर्याय के कारण रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श का होना अनिवार्य है। शब्द के इन गुणों पर भी विज्ञान के आधार पर विचार अपेक्षित है। शब्दों की व्यंजना वायु के आधार पर होती है अतः दोनों में परस्पर सम्बन्ध है और दोनों पौद्‌गलिक हैं। वायु भी वायुकायिक जीवों का शरीर है। ये दोनों दृष्टिगोचर न होने पर भी श्रवण और स्पर्शन ग्राह्य है तथा इनके अन्य गुणों की अभिव्यक्ति भी विश्लेषण चाहती है।

'प्रकाश' भी सूत्र के अनुसार पुद्‌गल की पर्याय है और अंधकार तथा छाया भी। इसी प्रकार के आतप और उद्योत भी हैं जो पकड़े नहीं जाते पर चक्षु ग्राह्य हैं। इन सबका निरूपण भिन्न-भिन्न मतों में भिन्न-भिन्न प्रकार से है पर इनकी एकरूपता, पौद्‌गलिक होने के कारण, सुनिश्चित है। विज्ञान के प्रकाश में इस एकरूपता को स्पष्ट किया जाना चाहिए।

पुद्‌गल गतिमान द्रव्य है। विज्ञान ने भी शब्द को तथा प्रकाश को गतिशील माना है। यह प्रत्यक्ष भी दिखाई देता है। प्रकाश की गति शब्द से अधिक तीव्र मानी जाती है पर जैन आगम में शब्द की गति अधिक बतायी गयी है। परमाणु यदि एक समय में

लोकान्त तक गमन करता है तो शब्दरूप पुद्गल स्कन्धात्मक परिणति के बाद भी दो समय में लोकान्त पर्यन्त गमन करता है ऐसा धवला की तेरहवी पुस्तक में स्पष्ट उल्लेख है। विज्ञान की कसौटी पर इस तथ्य का भी परीक्षण करना योग्य है।

काल द्रव्य असंख्यात है

सभी द्रव्यों के परिणमन में कालद्रव्य की पर्यायें निमित्त भूत हैं। यह सर्व मान्य सिद्धान्त है। वह इस कार्य में धर्म अधर्म द्रव्य की तरह उदासीन निमित्त है, प्रेरक नहीं। कारण वह स्वयं क्रियावान् द्रव्य नहीं है।

आर्यखण्ड में छह काल रूप परिवर्तन होता है। म्लेच्छ खण्ड में यह परिवर्तन नहीं होता। विजयार्ध पर्वत पर होने वाली विद्याधर श्रेणियों में भी यह परिवर्तन नहीं होता। स्वर्ग-नरक तथा भोग भूमियों में (जो स्थाई हैं) छः काल का परिवर्तन नहीं होता। क्या काल के परिणमन की विषमता भिन्न-भिन्न कालद्रव्य के भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न परिणमनों की सूचक है? धर्म, अधर्म, आकाश एक-एक द्रव्य हैं तब इनके परिणमन की एक ही धारा है पर कालद्रव्य असंख्य हैं अत. इनका परिणमन भिन्न-भिन्न हो सकता है। क्या इन छह काल रूप परिवर्तन में निमित्त शक्ति वाला कालद्रव्य आर्यखण्डों में ही है या इस परिणमन के कुछ अन्य कारण हैं कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न रूप काल में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी परिणमन पाये जाते हैं। चिन्तन का यह भी एक विषय हो सकता है।

अचाक्षुष पदार्थ चाक्षुष कैसे बनता है ?

पाँचवे अध्याय का 28 वाँ सूत्र है - 'भेद संघाताभ्याम् चाक्षुष.'। भेद और संघात से पदार्थ चाक्षुष होता है। टीकाकार पूज्यपाद आचार्य ने लिखा है 'अनन्तानंत परमाणुओं के समुदाय रूप कुछ स्कंध चाक्षुष हैं पर कुछ चक्षु का विषय नहीं बनते वे अचाक्षुष हैं'। सूत्र की टीका में अचाक्षुष कैसे 'चाक्षुष' बनता है इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि कोई अचाक्षुष स्कन्ध सूक्ष्म परिणत है, वह भेद के द्वारा भिन्न हुआ, उसका अंश अन्य चाक्षुष स्कन्ध में मिल गया तब वह भी चाक्षुष बन गया। इस तरह भेद और संघात दोनों के योग से ही अचाक्षुष स्कंध चाक्षुष बनता है।

सम्भावना

ऊपर का समाधान तो यथार्थ है ही, तथापि सूत्र में द्विवचन होने से अन्य अर्थ भी प्रतिफलित होता है। अचाक्षुष पदार्थ दो प्रकार से चाक्षुष बन सकता है। एक तो ऐसे कि अचाक्षुष सूक्ष्म परिणत दो स्कंध आपस में मिल जायें और सूक्ष्मता त्याग कर चक्षु ग्राह्य

न जाए । यह प्रक्रिया तो प्रसिद्ध है परन्तु भेद से अचाक्षुष चाक्षुष हो जाए इसकी भी संभावना है । इस विकल्प पर भी शोध होना चाहिए । टीकाकार के सामने जो स्थिति थी उसके अनुसार अर्थ की जो संगति बैठाई है वह पूरी तरह ग्राह्य है फिर भी एक दूसरी सम्भावना भी सूत्र से व्यक्त होती है जो यह सूचित करती है कि कुछ ऐसे भी स्कंध हो सकते हैं जो अचाक्षुष हों पर उनमें यदि भेद हो जाए तो वे चक्षु ग्राह्य हो जाते हैं । उदाहरण से विचार करें, रेत और चूना दोनों पारदर्शक नहीं हैं पर जब दोनों के योग से काँच बनता है तो वह पारदर्शक हो जाता है ।

प्रथमानुयोग में अंजन चोर की कथा है जो अंजन गुटिका का लेप करने पर संयुक्त अवस्था में अदृश्य (अचाक्षुष) हो जाता था और उस गुटिका के अलग होने पर दृश्य (चाक्षुष) हो जाता था । इस प्रकार का जो संभावित अर्थ है उसका परीक्षण भी विज्ञान से होना चाहिए । मिले हुए स्कंध यन्त्रों की पकड़ में आ सकते हैं जो अचाक्षुष हों, रासायनिक प्रक्रिया से उनका भेद करने पर उनके चाक्षुष होने की क्या कोई सम्भावना है यह भी देखना चाहिए ।

वेदनीय कर्म जीव विपाकी है या पुद्गल विपाकी

कर्मकाण्ड में वेदनीय कर्म को जीव विपाकी माना गया है । मोह के बल पर जीव उसके उदय में सुख दुख का वेदन करता है । वेदन जीव को होता है अतः इसका जीव विपाकी होना स्वाभाविक है, प्रसिद्ध है ।

आठवें अध्याय के आठवें सूत्र की टीका में टीकाकार के शब्द हैं -

यदुदयात् देवादिगतिषु शारीर-मानस सुखप्राप्तिः तत् सद्वेद्यम् ।
यत् फलं दुखमनेक विधं तत् असद्वेद्यम् ।

अर्थात् जिसके उदय से देवादिगतियों में शारीरिक और मानसिक सुख प्राप्त हो वह साता वेदनीय है और जिसका फल विविध प्रकार के दुख हैं वह असाता वेदनीय है ।

साता के उदय में धन, सम्पत्ति, संतति की प्राप्ति होती है यह उपचरित कथन है, क्योंकि कर्म का संश्लेष सम्बन्ध आत्मा से है । उदय भी आत्मा में है, वह कर्म सुख-दुख की सामग्री का संचय नहीं कर सकता । जीव उस सामग्री के संचय में सफल हो सकता है किन्तु इस प्रसंग में धवला भाग 6 सूत्र 28 में कुछ ऐसा ही प्रश्न उठाया है कि क्या वेदनीय जीव विपाकी की तरह पुद्गल विपाकी भी है ? उत्तर में कहा गया है कि नहीं है' । इस उत्तर के समर्थन में जो हेतु दिया है वह विचारणीय है । उत्तर का समर्थन इस हेतु द्वारा किया गया है - 'सुख-दुख के हेतु द्रव्य के संपादन करने वाला अन्य कर्म नहीं है इस हेतु से इसे पुद्गल विपाकी कहा' । विचार यह है कि पुद्गल विपाकी

तो देह विपाकी है । उसका फल तो देह के आकार प्रकार आदि पर होता है । सुख के साधन धन, स्त्री, पुत्र आदि पर नहीं होता । अतः पुद्गल विपाकी की अन्यत्र क्या-क्या व्याख्याएँ हैं इन पर विचार करना सार्थक हो सकता है ।

गोत्र कर्म की व्याख्या

आठवें अध्याय में बारहवें सूत्र की टीका में आचार्य पूज्यपाद लिखते हैं -

यदुदयात् लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रम् ।

यदुदयात् गर्हितेषु कुलेषु जन्म तन्नीचैर्गोत्रम् ।।

जिसके उदय से लोक पूजित कुल में जन्म हो वह उच्च गोत्र है तथा जिसके उदय से निन्दित कुल में जन्म हो वह नीच गोत्र है । गोमटसार कर्मकाण्ड की व्याख्या पढ़ें - 'सन्तानक्रम से आया हुआ जीव का आचरण गोत्र कहलाता है । उच्च आचरण उच्च गोत्र है तथा नीच आचरण नीच गोत्र है ।' सूत्र की व्याख्या में पूजित कुल को उच्च गोत्र और निन्दित कुल को नीच गोत्र कहा गया है पर गोमटसार में ऊँचे आचरण को उच्च गोत्र और नीच आचरण नीच गोत्र माना गया है । यहाँ कुछ प्रश्न उत्पन्न होते हैं -

1. लोक पूजित किसे माना जाय ?
2. लोक का क्या अर्थ है ?
3. निन्दित कुल किसे कहा जाय ?
4. सन्तान क्रम से तात्पर्य कितनी पीढ़ियों से सदाचार देखा जाय ?
5. देव, नारकीय और पशुओं में कुल की व्यवस्था है तब उनके गोत्र के लक्षण क्या बनाये जायें ? क्योंकि मूलाचार में कुल का लक्षण स्त्री-पुरुष संतान किया है ।

उच्च गोत्र वाला नीचा आचरण करके नीच गोत्रीय हो जाता है । उच्च गोत्र कर्म का सर्व संक्रमण होता है, पर नीच गोत्रीय उच्च आचरण करे तो संक्रमण तो होगा पर सर्व संक्रमण नहीं होगा । तब व्यवस्थायें कैसे बनेंगी ? इसी प्रकार संतान क्रम के सन्दर्भ में यदि अनादिकाल का सन्तान क्रम लिया जाय तो किसी कुल के सदाचरण की परीक्षा कैसे होगी ।

*** **

SYSTEMATICS IN JAINISM AND SCIENCE

- Prof. L.C. Jain, Chhindwara.

Through a few research articles, listed in the reference, the author has brought to the notice of the scholars of history of science and Jainology, how systems ideas and systems theory were developed in the Jaina School. Dr. L. von Bertalanffy, born in Vienna in 1901, had advanced the conception of the general system theory more than a quarter of a century ago.

It may be emphasized that today it has an eventful history to its credit and that it has gained paramount importance in the world of science. Through its structural and functional ideas it has expressed new tendencies in scientific achievements during the last thirty years. Almost all mathematical subsystems have been utilized to develop general systems theory that could cope with any problem confronting an industry, bio-physical or space study, nuclear engineering, socio-economic or a political set up. (Vide, Blauberg, I.V., et al, Systems Theory - Philosophical and Methodological Problems).

ACHIEVEMENTS

The systems methodology developed in the Jaina Philosophy may be summarized as follows:

i) Technical language developed for the studies into the Karma phenomena through Syadvada and Anekanta systems of predication. Their scientific evaluation was performed by Mahalonabis and Haldaney in two articles. Further contributions may be seen in the author's articles.

ii) Development of a number system, finite and transfinite, through measure (pramana) methodology for evaluation of its own types of existential and constructional sets (Rasis). A few articles on the set theory in Jaina School will show how this system has been useful today even.

iii) Evolution of systematic knowledge of Maxima and Minima

(Utkrsta and Jaghanya), quantatively and qualitatively, in so far as their comparability (alpabahutva) results in dynamical Karmic systems are concerned. Their transfinite topology has been discussed by the author in his article on Divergent Sequences of the Trilokasara (Dharas).

It may be noted that most of the results in physical [illegible] today have been analysed for the micro and macro cosmos through the functional analysis of the maxima and minima, in all [illegible] and dynamical systems.

iv) Development of systematic ideas of input (Asrava), [illegible] (bandha, nirjara etc.), impedence (Samvara), state [illegible] and so on, as well as their [illegible] every instant [illegible] quantitative as well as qualitative results through set theoretic approach.

It has been observed that the systematic approach to dynamical systems is complete in itself and far profound. The Karma system is a dynamical system with its analogue in the present day kybernatics.

v) Development of unified systems in the studies of the astronomical, cosmological and bio-rheological systems. For example:

a) Studies in the Spiro-elliptical orbits in the motion of astral bodies (duirnal and annual motions unified) referred to grid systems of gagana khandas and yojanas subject to time variations, in muhurtas.

b) Studies in various systems of sets of beings in various states through methods of applications of areas and eight other abstract methods of vikalpas, found in the Dhavala texts, through cosmological models, geometrically.

c) Studies in various Karma phenomena through unitary

systematics for stationary and non-stationary states of fluents (Dravyas) which flow in their own controls (gunas) and events (paryayas). The systematics of the control stations (Gunasthanas) and the way-ward stations (margana sthanas) studied as time independent and time dependent systems expounded by Acarya Puspadanta and Bhutabali in the Satkhandagama and by Yatirsabha in Kasaya Pahuda's Curnisutras, as formulated earlier by Gunabhadracarya may be said to be the monumental achievements in the science of systems theory.

PROSPECTS :

It a team of scholars is employed in the study into the Jaina Systems Theory, for a comparative contribution to modern systems theory, one could avail of the opportunity of historical explorations. Moreover, one could also bring to light new scientific ideas evolved by the Jaina School and their application to the purpose they stood for. The motivation of the Jain School appears to upkeep a balance in nature for the larger interest of those who have violent as well as those who have peaceful attitudes. It is the intelligentia class alone, which could be said to be chiefly responsible for setting precedents and examples in internal and external behaviour and determination, in order to maintain the balance in the nature.

The problem is more complex now owing to the explosion of population and deficit in the energy supply due to the unbalanced development of science and technology. The study of the Karma phenomena leads to the analysis of the hazards of the political manoeuvre adopted in the nuclear world and its systematics may lead the way to the strengthening of the forces of peace and tranquility.

If at this symposium attended by one of the choicest of the galaxy of scholars of Jainology, a serious thought is given for establishing an advanced institute of learning for the pursuits of learning the complete systemetics of the Karma Theory of the Jaina Works along with all that is relevant to its research scientifically and not literally, the purpose of the Jaina School could be served in a scientific way. This meeting and action aence has to resolve that negligence of scientific vision, spirit and way could not be tolerated in the present circumstances and the systematic study of the deep Karma theory could not be ignored in the present centres of learning of Jainology. Let us hope that this way we may be able to keep up the balance in the perturbed nature of to-day.

...

जैन धर्म और विज्ञान (भाषण)

- प्रो॰ लक्ष्मीचन्द्र जैन, छिन्दवाड़ा

खग जाने खग ही की भाषा । कुछ आप समझे कुछ मैं समझा । इसकी कहानी का अर्थ अगर विद्वानों के लिए समझा दूं तो मेरे लिए कुछ कहने को नहीं रह जाता । जैसा नेमीचन्द भाई ने कहा कि मुझे टाईपराईटर की जरूरत है । किसी जमाने में थी । और अब मैं कहूंगा एक शोफर एक ड्राईवर की जरूरत है । तो मेरे से पूछेंगे शायद मैं उसकी कहानी बताता हूं ।

आईस्टाइन जहाँ कहीं लेक्चर देने भी जाते थे तो उनका लेक्चर कोई समझ पाता नहीं था । जो भीड़ इकट्ठी होती थी वह केवल उनको देखने के लिए । जब लेक्चर देते-देते थक जाते तो कभी-कभी उनका ड्राइवर उनकी मदद करता था । एक बार जब वो थक गये तो ड्राईवर ने जाकर कहा कि साहब आप थक गये हैं मैं जाकर मैं कह आता हूं । क्योंकि सुनते सुनते उसको आने लगा था सब कुछ । उसने भाषण तो किया उसके बाद प्रश्न होने लगे । प्रश्न होने लगे तो कहने लगा कि साहब लेक्चर तो मैंने दे दिया परन्तु आपके प्रश्न इतने हल्के हैं कि उनका उत्तर मेरा ड्राइवर आकर अभी देगा । आईस्टाइन ने अंत में उन प्रश्नों का उत्तर दिया ।

मैं बताऊं आपको गणित का प्रवेश कहाँ नहीं है । आजकल जो बच्चे पढ़ रहे हैं मैथामेटिक्स - नाइंथ क्लास से या जहाँ से भी शुरू कर रहे हैं उनको ग्रुप थ्योरी की ट्रेनिंग दी जा रही है । ग्रुप थ्योरी की ट्रेनिंग इसलिए दे रहे हैं कि अभी जो दुनिया आने वाली है उसकी हमारी पुराने टूल्स जो हमारे पास हैं उसकी समस्याओं का हल नहीं निकाल सकते हैं । हमारे पास जब तक गणित का टेक्नीक नहीं होगा प्रगति नहीं हो पायेगी । माफ करेंगे जब मैं बरेली-भोपाल में था - बरेली में उस समय बिजली नहीं, तांगा नहीं, उस समय नागपुर में आईस्टाइन पर एक सिम्पोजियम हुआ ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक आये हुए थे, चीफ गेस्ट होकर । पत्रकारों ने पूछा आप किसलिए आये हैं ? तो उन्होंने कहा कि हम विशेषकर इसलिए आये हैं कि हमें प्रो॰ लक्ष्मीचन्द्र जैन से मिलना है और हम देखना चाहते हैं कि वह कहाँ-कैसे रहते हैं । मैं उनको बरेली ले आया और अपने छात्रों के सामने एक लेक्चर रखवाया । कक्षा में उनका लेक्चर था तो उन्होंने लिखित पर अपना भाषण शुरू किया । बोर्ड पर एक ट्रिएंगल बना दिया । जैसे ही उन्होंने ट्रिएंगल बनाया लड़कों ने हूटिंग शुरू कर दी क्योंकि वे लड़के समझे कि गणित शुरू कर दी है उन्होंने । उन्होंने कहा कि मि॰ जैन ये तो बहुत खराब बात है । मैंने कहा क्यों ? उन्होंने कहा ऐसा लगता है कि

यहाँ कोई गणित पढ़ा ही नहीं है । मैंने कहा कि नहीं साहब गणित तो जानते हैं लोग परन्तु गणित से रुचि नहीं है, ऐसा महसूस होता है । इसलिए आप जल्दी से लिटरेचर पर आ जाइये । वैसे उनकी ट्रेनिंग मैथेमेटिक्स में है । मैथेमेटिक्स का जहाँ भी प्रयोग हो सकता है हर जगह उसका प्रयोग उन्होंने किया । हर महीने में उनके दो रिसर्च पेपर पब्लिश होते हैं ।

प्रश्न - संयोजकों द्वारा -
'अब आप अपने विषय पर कब आयेंगे । आप कहना क्या चाहते हैं '?

'यही तो मैं कहना चाहता हूँ कि आप मेरी बात समझ नहीं पा रहे हैं । '

अच्छा तो हम सिस्टैमैटिक्स पर आ जायें । मेरा मतलब था कि आप सिस्टामैटिक्स पर सुनना चाहते हैं - प्रोब्लेम्स पर या एचीवमेन्ट्स पर - तो मैंने प्रोब्लम्स की बात तो कर दी ।

सिद्धान्त का एक ही पढ़ने का नजरिया नहीं है, वह एक इतनी सम्पूर्ण प्रणाली है - सिस्टम स्टडी जिसका कि 40 साल में बहुत विकास हुआ है और दुनिया की पूरी ताकत साईस की जिस थ्योरी को डेवलप करने के लिए लग गई है वह है 'नियंत्रण योग्यता' - कन्ट्रोलेबिलिटी - आब्जरवेबिलिटी । वह क्या है ? गुण स्थान और मार्गणा । स्थान क्या है ? आपका कौन-सा भाव होता है - उस भाव से कितने परमाणु आते हैं कितने समय के लिए आते हैं, कब तक रहेंगे । कितने - कितने खिरेंगे - सबका गणित बहुत ही जटिल है । उन लोगों ने जो रिजल्ट निकाले, अपने कर्म सिद्धांत के उसमें बहुत टेरोवल स्टैटिस्टिक्स है । उसमें आपका टोपालाजी, आपका माडल आब्जरवर लगता है - ग्रुप थ्योरी लगती है । और बड़े बड़े समीकरण बनते हैं । इन समीकरणों का हल करना पड़ता है । जब कहीं यह मालूम होता है कि जो चीज हम जानना चाहते हैं कि चीज किस प्रकार से फलित होती है । कई प्रकार की प्राप्ति के लिए, कई प्रकार की प्रणालियाँ, सिस्टम्स, डेविलप की गई है । उन्होंने किस तरह से लैंग्वेज का स्ट्रक्चर और उसका फैशन जबर्दस्त तरीके से डिविलप किया । स्याद्वाद के सिद्धांतों और अनेकान्त के द्वारा अनेकात्मक वस्तु के स्वरूप को देखकर यह सब किया और इसके अलावा उन्होंने कौन-कौन सी यूनीफाइड सिस्टम्स उसके अन्दर डाली । और उनके द्वारा उन्होंने कर्म सिद्धान्त का विश्लेषण किया । यह बहुत गहन स्टैडी है । इसलिए उस पर ज्यादा जोर नहीं दिया ।

टिप्पणी - श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन द्वारा

आपके पेपर में से मैं एक अंश इसलिए पढ़ना चाहता हूँ कि हम अपनी टर्मिनालाजी - पारिभाषिक शब्दावली को शास्त्रों में जिस रूप में पढ़ते हैं उसको अगर आधुनिक वैज्ञानिक शैली में रखना चाहें तो क्या करना चाहिए, कैसे करना चाहिए। कर्म सिद्धान्त के बारे में आपके आलेख का एक अंश पढ़ता हूँ।

'स्टडीज इन वैरियस कर्म फिनामिना थ्रू यूनीटरी सिस्टमैटिक्स फार स्टेशनरी एण्ड नान-स्टेशनरी स्टेट्स आफ फ्लुएंस'। अब ये देखिये कि द्रव्य के लिए हम मैटेरियल कहें, मैटर कहें, पर इन्होंने उसके भाव को पकड़ के फ्लुएंस कहा। द्रव्य जो द्रवित है जो बह रहा है जिसमें से विघटन भी हो रहा है संगठन भी हो रहा है। जहाँ स्कन्ध भी है, परमाणु भी है। पुद्गल के अन्तर्निहित भाव को इन्होंने 'फ्लुएन्ट्स में लिया। जैनधर्म के उस द्रव्यार्थ को पकड़ता है। आज तक यह हमारे सामने नहीं आया था कि इसके लिए हम अंग्रेजी का ठीक-ठीक क्या शब्द लें। 'विश्व फ्लो इन पेयर और कन्ट्रोल्स गुण को आप क्या कहेंगे? गुण को कह दिया कन्ट्रोल क्योंकि वह स्वयं अन्दर से है, उसका स्वभावी गुण है और उसी को वह कन्ट्रोल करता है। एण्ड 'इवेन्ट्स' - पर्याय को क्या कोई सोचेगा कि 'इवेन्ट्स' कहें। पर चूंकि सारी थ्योरी को - पुद्गल की, परमाणु की अणु की, और उनके पारस्परिक संबंधों से जो निष्पत्ति निकलती है, जिस भाषा में उनको रखना चाहिए उस वैज्ञानिक भाषा और भाव के शब्द उन्होंने अंग्रेजी के अपने ढंग से रखे। द्रव्य के लिए 'फ्लुएंट्स, गुण के लिए 'कण्ट्रोल' पर्याय के लिए 'इवेन्ट्स' पर्याय जो बदलती है। उस सन्दर्भ में उसका जन्म और विघटन हो रहा है। वही 'ईवेन्ट' है। द सिस्टामैटिक्स आफ् द कण्ट्रोल स्टेशन्स अर्थात् गुण-स्थान। आप जब अंग्रेजी में इस चीज को समझेंगे और यह देखेंगे कि इन्होंने 'कन्ट्रोल स्टेशन' रखा। गुण-स्थान के लिए तो हमारी पारिभाषिक शब्दावली में जो चीज समझ में नहीं आ रही थी वह एकदम स्पष्ट हो जायेगी। कण्ट्रोल स्टेशन्स, गुणस्थान, एण्ड वेवार्ड स्टेशन्स, मार्गणा स्थान।

मैंने यह पढ़ दिया। अपने शब्दों में भाव बता दिया। मैं सोचता था कि ये कुछ इस तरह की चीज बतायें। कितनी बड़ी उपलब्धि है इनकी।

इस भाषा में हमारा प्राचीन वैज्ञानिक सिद्धान्त आयेगा तो उसे बायलोजी भी समझ में आयेगी और कैमिस्ट्री भी समझ में आयेगी और फिजिक्स भी।

जैन दर्शन में वैज्ञानिक तथ्य : संकलन और संभावनायें

- नन्दलाल जैन, रीवा

वैज्ञानिक युग के अनुरूप इस गोष्ठी में जैन दर्शन के वैज्ञानिक तथ्यों के मूल्यांकन की चर्चा न हो, यह आश्चर्य की बात ही होती । फलतः इस विषय के गोष्ठी में समाहार के लिये भी इसके आयोजक बधाई के पात्र हैं ।

जैन आगम और अन्य साहित्य का प्रमुख निर्माणकाल प्रारंभिक युग से दशवी सदी तक माना जा सकता है । जैन दर्शन के वहुत्ववादी सिद्धान्त के कारण इसमें जीव के साथ अजीवतत्व और उसके विविध रूपों का वर्णनपर्याप्त मात्रा में, परन्तु स्फुट रूप में पाया जाता है । भिन्न-भिन्न युगों में निर्मित साहित्य में इसके विविध रूप पाये जाते हैं । इनके आधार पर विभिन्न युगों की भौतिक जगत संबंधी मान्यताओं और उनके विकास एवं तुलनात्मक अध्ययन की प्रेरणा मिलती है । आज के युग में धार्मिक आस्था को बलवती बनाने के लिये ऐसे अध्ययन की नितांत आवश्यकता है । यह अध्ययन भी पुरातत्व एवं इतिहास की भांति जैनों की ही नहीं, वैज्ञानिक जगत की भी धरोहर सिद्ध हो सकता है ।

इस अध्ययन को मूल्यवान बनाने के लिये सर्वप्रथम विविध साहित्य में पाये जाने वाले तथ्यों का संकलन प्रथम चरण है । पिछले चालीस वर्षों से संकलन की प्रक्रिया चल रही है और यह अभी पर्याप्त अपूर्ण है । संकलन के बाद तथ्यों के मूल्यांकन की बात आती है । 'अवग्रहेहावाय धारणा: ' के सूत्र से यह पता चलता है कि जैनाचार्यों की भौतिक जगत संबंधी अध्ययन की प्रक्रिया वर्तमान वैज्ञानिक निरीक्षण, परीक्षण और सामान्यीकरण एवं संप्रसारण की क्रियाओं के अनुरूप ठहरती है यदि धारणा शब्द का अर्थ संप्रसारण किया जाए । यह देखा जा रहा है कि इन तथ्यों के मूल्यांकन की प्रक्रिया में कुछ कठिनाई अनुभव में आई है । जी आर जैन, जवेरी, मुनि महेन्द्रकुमार आदि अनेक विद्वानों ने सुझाया है कि तीर्थंकरों की वाणी कालाबाधित है और परिपूर्ण तथा अपरिवर्तनीय है । फलत. उन्होंने जैनागम वर्णित वैज्ञानिक तथ्यों की व्याख्या में पर्याप्त खींचतान की है और अनेक तथ्यों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि उसके विश्लेषण से पर्याप्त जटिलतायें उत्पन्न होती हैं । उदाहरणार्थ, जैनों के परमाणु शब्द से न्यूक्लियस, इलेक्ट्रान, पोजिट्रान या फोटान ग्रहण करने पर निम्न प्रश्नों का समाधान किया जा सकता :

(1) परमाणुओं का संकोच-प्रसार गुण

(2) परमाणुओं की विभिन्न प्रकार की गतियाँ

(3) परमाणुओं की मूलभूत एकरूपता तथा 200 प्रकार

(4) परमाणुओं से सामान्य अणुओं/आविष्ट कणों का निर्माण या [illegible]

उपरोक्त लेखकों ने इन समस्याओं के समाधान के प्रति अस्पष्टता या मौन-भाव रखा है। इस दृष्टिकोण के विपर्यास में यदि हम आगमवर्णित वैज्ञानिक तथ्यों को ऐतिहासिक विकास एवं समकालीन वैज्ञानिक विचारों के दृष्टिकोण से विचार करें, तो उपरोक्त समस्यायें उठती ही नहीं। अर्थात् हम 'परमाणु' शब्द से समकालीन ग्रीक वैशेषिक, बौद्ध आदि के समान अर्थ को लें और तब उसके गुणों को तत्कालीन मान्यताओं तथा आधुनिक मान्यताओं से तुलना कर उनका मूल्यांकन किया जा सकता है। इस प्रकार मैंने अनेक वैज्ञानिक प्रकरणों का अध्ययन किया है जिनमें श्रोत्र और चक्षु की प्राप्यकारिता का अर्थ, ज्ञान की पद्धति, ध्वनि, प्रकाश, चुंबकत्व एवं पदार्थों की परिभाषा और सामान्य [illegible] गुण समाहित हैं। इन अध्ययनों से यह पता चलता है कि जैन मान्यतायें तत्कालीन मान्यताओं से पर्याप्त उच्च कोटि की है।

भौतिकी और रसायन के अतिरिक्त जीव विज्ञान, भूगोल, खगोल, आदि से [illegible] तथ्यों का संकलन भी आवश्यक है। इन क्षेत्रों में संकलन अभी मंद गति पर है। [illegible] कारण पुरातन और नवीन तथ्यों के जानकार विद्वानों का अभाव है। [illegible] इस क्षेत्र में [illegible] करने के इच्छुक छात्रों को छात्रवृत्ति देकर कुछ मात्रा में [illegible]

[illegible]

[illegible] किया जाये

[illegible] आश्चर्य होगा कि जैन दर्शन के वैज्ञानिक तथ्यों का संकलन और समीक्षित करने में मध्यप्रदेश के जैन विद्वानों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्रो. जी.आर.जैन की 'कास्मोलाजी - ओल्ड एंड न्यू' 1942 में प्रकाशित पहली पुस्तक है। गणित के क्षेत्र में कार्यरत श्री एल.सी.जैन को सभी लोग जानते हैं। भौतिकी रसायन, जीवविज्ञान के क्षेत्र में मैंने भी सन् 43 से अनेक लेख देशी और विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किये हैं। मैंने यह भी प्रयत्न किया है कि स्फुट रूप में प्रकाशित होने वाले लेखों के बदले अनेक विज्ञान-विधाओं से संबंधित सामग्री को 80-100 पृष्ठों में दिवाकर अभिनन्दन ग्रन्थ तथा सिद्धान्ताचार्य कैलाशचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित करायी है। इसके अतिरिक्त लोढ़ा, नेलड़ [illegible] जवेरी, सिकदर [illegible] ने [illegible] लेख, पुस्तिकायें तथा पुस्तकें प्रकाशित की हैं। पटियाला के भौतिकी विभाग [illegible] अनेक विद्वानों द्वारा जैन ज्योतिष और गणित पर अच्छा तुलनात्मक काम हो रहा है। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि जैन दर्शन की [illegible] विज्ञान विकास के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। परन्तु यह खेद की बात है कि बीसवीं

सदी में लिखे गये विज्ञान के इतिहास में भी विज्ञान की विविध विधाओं में जैनों के योगदान को नगण्य ही स्थान मिला है । यह तथ्य खटकने वाला है ।

अनेक वर्ष पूर्व मेरे मन में यह बात आई थी कि विभिन्न वैज्ञानिक विधाओं से संबंधित जैनागम वर्णित तथ्यों से परिपूर्ण एक प्रामाणिक पुस्तक तैयार कराकर मुद्रित की जावे । मैंने अपनी इस योजना को मूर्तरूप देने के लिए भारतीय ज्ञानपीठ से निवेदन किया था । मैंने सुझाया था कि विज्ञान के क्षेत्र में काम करने वाले लेखकों एवं विद्वानों की एक गोष्ठी आयोजित की जावे जिसमें विभिन्न अधिकारी विद्वानों द्वारा पूर्व में लिखे गये विभिन्न विधाओं से संबंधित प्रारूप की चर्चा के बाद मानकीकृत रूप दिया जाये । परन्तु कुछ माहों के पत्राचार के बाद मुझे प्रेरणा के बदले निराशा ही हाथ लगी । फिर भी, मैं अपना लेखन-कार्य करता ही रहा । अभी कुछ दिन पूर्व नाहटाजी के समान कुछ विद्वानों ने फिर सुझाया है कि ऐसी मानक पुस्तक की आवश्यकता है । तदनुसार मैंने पुनः कुछ संस्थाओं को ऐसी गोष्ठी के लिए लिखा है । इसी बीच आपके द्वारा यह गोष्ठी आयोजित की जा रही है । मुझे विश्वास है कि यह गोष्ठी मेरी इस योजना को साकार रूप देने में सहायक होगी ।

करणीय कार्य

आज के युग में पत्रकारों और पुरातत्त्वियों का बड़ा महत्त्व है । विभिन्न जैन संस्थायें भी उनके द्वारा समर्थित योजनाओं को समर्थन एवं सहयोग देती हैं । बेचारे वैज्ञानिकों को कौन पूछे ? संभवतः पूर्वाग्रहरहित विचारधारा की घोषणा करने वाली संस्थायें भी विज्ञान को बीसवीं सदी में भी धर्म का विरोधी मानती हैं । आज के युग में यह धारणा दूर होनी चाहिये । धर्म और विज्ञान को एक दूसरे का पूरक माना जाना चाहिये । इस आधार पर :

1. विज्ञान की विभिन्न विधाओं से सम्बन्धित जैन वैज्ञानिक तथ्यों के आकलन एवं समीक्षण हेतु एक संगोष्ठी आयोजित की जावे ।

2. इसमें पूर्व में ही लिखाये गये विभिन्न लेखों को विचारकर मानकीकृत किया जावे । तत्पश्चात् संपादित कर पुस्तक प्रकाशित की जावे ।

3. वैज्ञानिक क्षेत्रों से संबद्ध कार्य करने वाले विद्वानों को नि. शुल्क साहित्य उपलब्ध कराया जावे तथा उन्हें अन्य सुविधायें व साधन सज्जित किया जाए ।

4. एक जैन विद्या अनुसंधान संस्थान खोला जाए जिससे विज्ञान विभाग भी रहे ।

5. जैन न्याय के कुछ ग्रन्थों प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचंद्र आदि तथा तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय की टीकाओं का हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद किया जाये ।

इन सभी कार्यों में मेरा सहयोग सदैव उपलब्ध रहेगा ।

चतुर्थ सत्र

बुधवार, 8 सितम्बर, 1982 (3.00 बजे से 5.45 बजे तक)

विषय : जैन मंत्र एवं ज्योतिषशास्त्र

अध्यक्ष : संहितासूरि पं०नाथूलालजी शास्त्री
डा० प्रेमसुमन जैन

1. श्री सोहनलाल देवोत : जैन मन्त्रशास्त्र से अपेक्षाएँ
2. डा० यतीन्द्र कुमार जैन : जैन मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र एवं ज्योतिष
3. प्रो० अक्षयकुमार जैन : मंत्र शक्ति, जैन ज्योतिष - एक विहंगावलोकन
4. पं० बाहुबली पार्श्वनाथ उपाध्ये शास्त्री : जैन मंत्र तंत्र शास्त्र, जैन ज्योतिष

6. संहितासूरि पं० नाथूलालजी शास्त्री : जैन मंत्र शास्त्र
7. आचार्य विमलसागरजी महाराज : समापन

248

जैन मन्त्र शास्त्र से अपेक्षाएँ

- सोहनलाल देवोत, बांसवाड़ा

भारतीय संस्कृति को पुष्ट करने का सर्वाधिक योगदान दो संस्कृतियों का रहा है । एक जैन संस्कृति तथा दूसरी वैदिक संस्कृति । कोई समय था जब भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी साम्राज्य था । सारा विश्व इसकी मान्यताओं, परम्पराओं और सिद्धान्तों का अनुकरण कर गौरव का अनुभव करता था । प्राचीन भारत की आत्मविद्या, इसका दार्शनिक विवेक और विचारों की महिमा तथा गरिमा तो आज भी सर्व स्वीकृत हो है । पश्चिम देश के दार्शनिक विचारकों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा के रूप में छोटे-मोटे अनेक ग्रंथ लिखे हैं । जहाँ भारत अपनी आध्यात्म शिक्षा में जगद्गुरु रहा है, वहाँ अपनी वैज्ञानिक विद्या, वैभव व समृद्धि में भी अद्वितीय था, यह इतिहास सिद्ध बात है । नालन्दा तथा तक्षशिला विश्वविद्यालय उसके ज्वलन्त साक्षी हैं । कहने का भाव प्राचीन भारत आध्यात्म विद्या के अतिरिक्त विज्ञान दर्शन, भाषा, साहित्य, योग, शिल्प तथा कला कौशल आदि की पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ था । इसकी जन्त्र कलाएँ अदृश्य अस्त्र उत्पन्न करती थी । यानि विश्व में अनुपमेय अस्त्र तैयार करती थी, ये भी ऐतिहासिक बातें हैं । महाराजा भोज के काल में भी अनेक प्रकार की कलाओं, यन्त्रों तथा वाहनों का वर्णन प्राप्त होता है - सौ योजन प्रति घण्टा भागने वाला अश्व, स्वयं चलने वाला पंखा आदि का भी वर्णन मिलता है ।

किन्तु पाश्चात्य रंग में रंगे हुए अपने धर्म को मानने वाले ही इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे हैं । प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में पूजा-पाठ, धार्मिक कर्म-काण्ड, चिन्हों तथा विश्वासों का अनुकरण करना पिछड़ेपन की निशानी माना जाने लगा है । जिन निष्पक्ष विदेशी विद्वानों और विचारकों ने जैन धर्म का गहन अध्ययन किया है, वह उसे मानव मात्र के लिए नैतिक, चारित्रिक, शारीरिक तथा आत्मिक उत्थान के लिए अत्यन्त उपयोगी व पूर्ण रूप से वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित मानते हैं । परन्तु पश्चिम के प्रवाह में बहने वाला शिक्षित वर्ग इसे वर्तमान युग के लिए अनुपयोगी समझता है लेकिन भौतिक विज्ञान की उपलब्धियों में प्रवाहित व्यक्तियों को यह जानकारी नहीं है कि आधुनिक विज्ञान ने स्थूल जगत में ही अपने अन्वेषण किये हैं । उनके यन्त्र स्थूल वस्तुओं की गतिविधियों का ही पता लगा सकते हैं । सूक्ष्म जगत में उनका प्रवेश शून्य है । अस्तु उनकी बड़ी से बड़ी सफलता स्थूलता के क्षेत्र तक ही सीमित रहती है । स्थूल वस्तुएँ निर्जीव और जड़ होती हैं, उनकी अपनी कुछ भी शक्ति नहीं होती । सूक्ष्म का सहारा लेकर उनकी गतिविधियाँ संचालित होती हैं । सूक्ष्म जगत में असीम शक्ति के भण्डार भरे पड़े हैं । जिन ऋषि-मुनियों ने भारतीय संस्कृति की मान्यताओं, सिद्धान्तों, उपासनाओं, कर्मकाण्डों आदि पद्धतियों आदि का निर्माण किया था, वे निश्चित ही

उच्चकोटि के वैज्ञानिक थे । उनको ज्ञान ज्योति में यह स्पष्ट प्रतिबिम्बित होता था कि स्थूल जगत की अपेक्षा सूक्ष्म जगत में अधिक शक्ति सन्निहित होती है तथा उसका विकास कर मनुष्य प्रत्येक क्षेत्र में चमत्कारिक सफलता प्राप्त कर सकता है । धार्मिक साधनाएं शक्तियों के विकास में सहायक होती हैं । सूक्ष्म शक्ति को विकसित एवं तेजपुंज बनाने के लिए पूजा-पाठ, उपासना, जप-तप, ध्यान योग आदि विधि विधानों की व्यवस्था की गई है । मन्त्र योग का भी यही आधार है ।

मन्त्रयोग का अपना स्वतंत्र विज्ञान है । मंत्रयोग को हम शब्द-विज्ञान अथवा ध्वनि विज्ञान कह सकते हैं । शब्द शक्ति पर विचार करने पर हमारा ध्यान भारतीय मंत्र विद्या पर जाता है । हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थ मंत्रों की महिमा से भरे पड़े हैं ।

मंत्र शास्त्र पर चर्चा करने के पूर्व मंत्र शब्द की शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक व्याख्या करना न्याय संगत होगा । दिगम्बर मुनि श्री समन्तभद्र आचार्य ने मंत्र व्याकरण में कहा कि 'मंत्र्यन्ते गुप्तं भाष्यन्ते मन्त्र विद्भिरितिमन्त्राः । जो मन्त्रविदों द्वारा गुप्त रूप से बोला जाये वह मंत्र जानना । श्री अभयदेव सूरि ने पंचाशक नामक ग्रन्थ की टीका में बताया है कि - 'मंत्रो देवाधिष्ठितोऽसावक्षररचना विशेषः । देव से अधिष्ठित विशिष्ट अक्षरों की रचना को मन्त्र कहते हैं । निरुक्तकार यास्क मुनि ने कहा है कि 'मन्त्रो मननात्' । मन्त्र शब्द का प्रयोग मनन के कारण हुआ है । कारण जो वाक्य या पद बार-बार मनन करने योग्य होते हैं, वे मन्त्र कहलाते हैं । जैन धर्म का पंच मंगल सूत्र ने इसी दृष्टि से महामंत्र का स्थान प्राप्त किया है । मन का त्राण करने वाले को मन्त्र शास्त्रों में मन्त्र कहा गया है । मन की चंचल वृत्ति से उसकी शक्तियाँ बिखरी रहती हैं । जब उसकी वृत्तियाँ एकाग्र हो जाती हैं तब उसकी सारी अपार सामर्थ्य एकत्रित हो जाती है और वह देव जगत को शक्ति की तरह कार्य करने लगता है । मन्त्र द्वारा यह कार्य सफलतापूर्वक हो जाता है । इससे भिन्न-भिन्न मानसिक वृत्तियाँ एक बिन्दु पर लाई जाती हैं । तब वह शक्ति का स्त्रोत बन जाती है । मन इन्द्रियों को चलाने वाला है । इसलिए मन्त्र द्वारा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की जा सकती है । अतः मन्त्र वह विज्ञान व विद्या है जिससे शक्ति का उद्भव होता है । नियत ध्वनियों के समूह को मन्त्र कहते हैं । मन्त्र के अर्थ भी होते हैं । उनमें शिक्षाएं और प्रेरणाएं भी निहित होती हैं । परन्तु विशेषता ध्वनियों की होती है । उसी से शक्ति का विकास होता है ।

जब शब्दों का उच्चारण होता है तो उनसे कम्पन उत्पन्न होता है, वह कम्पन विश्वयात्रा की तैयारी करते हैं और ईथर तत्त्व के माध्यम से परिभ्रमण करके कुछ क्षणों में इस परिक्रमा को समाप्त कर लेते हैं । इस यात्रा में अनुकूल कम्पनों का मिलन होता है । अनुकूलता में एकता का सिद्धान्त प्राकृतिक है । तथा इन कम्पनों का एक पुंज

बन जाता है और अपने केन्द्र तक लौटने तक अपनी शक्ति काफी बढ़ा लेते हैं। यह कार्य इतनी तीव्र गति से होता है कि साधक को इसका अनुभव भी नहीं हो पाता कि शब्दों के उच्चारण मात्र से यह चमत्कार कैसे उत्पन्न हो रहे हैं। फ्लोरेंस स्कोवलशीन नामक एक पाश्चात्य विदुषी महिला ने अपनी पुस्तक 'द पावर आफ् द स्पोकन वर्ड' में बताया है कि - 'विक्टरी एंड फुलफिलमेन्ट आर द् वन्डरफुल वर्ड्स एंड सिन्स वी रियलाइज् दैट वर्ड्स एंड थाट्स आर अ फार्म आफ रेडियो एक्टिविटि, वी केयरफुली चूज् वर्ड्स वी विश टु सी क्रस्टलाइज्ड'।

अर्थात् : विजय और तृप्ति दो आश्चर्यजनक शब्द है, क्योंकि हमें इन शब्दों का अनुभव होता है कि शब्द और विचार रेडियो धर्मिता का रूप है। जब हम शब्दों का चुनाव सावधानी से करते हैं तब हम पूर्ण स्पष्ट नजर आते हैं। कहने का आशय शब्द तथा विचार मनुष्य का ही नहीं, प्राणिमात्र को प्रभावित करते है।

लोक में भी शब्द के अनेक चमत्कार प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलते हैं। बीन बजाकर सर्प को मोहित किया जाता है। संगीत से मृग तन्मय हो जाते हैं। मेघ मल्हार से वर्षा की जाती है। दीपक राग से बुझे हुए दीपक जलाए जाते हैं। थाली बजाकर सर्प बिच्छू के विष उतारे जाते हैं।

मन्त्र विज्ञान के चमत्कारों पर ही बुद्धिवादी लोग अविश्वास करते हैं। [illegible] जब चिकित्सा और औद्योगिक क्षेत्रों में ध्वनि शक्ति की सहायता से अद्भुत लाभ प्राप्त किये जा रहे हैं तो मन्त्र विज्ञान पर विश्वास करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह गया है। रोग निवारण, इस्पात की चादरों को काटना, लान्ड्री, सिंचाई के साधनों में उस शक्ति का प्रयोग विद्युत की तरह होने लगा है। विदेशों में इस विज्ञान को और [illegible] विकसित करने के लिए खोजें तीव्र गति से चल रही हैं, जिससे खगोल विज्ञान में न[illegible] प्रयोग किये जा सकने की सम्भावना है। भौतिक उपकरणों से प्रगति की इतनी सम्भा[illegible] है, तो सूक्ष्म उपायों से तो उससे भी अधिक लाभों की आशा करनी चाहिए। क्योंकि स्थूल से सूक्ष्म की शक्ति सदा अधिक होती है। सूक्ष्म शक्ति को जागृत करने के लिए पूर्वाचार्यों ने प्रत्येक मन्त्र का गठन कुछ ऐसे चमत्कारी ढंग से किया है कि उसका सीधा प्रभाव हमारी सूक्ष्म ग्रन्थियों, षट्चक्रों और शक्ति केन्द्रों पर पड़ता है। जिससे सूक्ष्म जगत के शक्ति केन्द्र जागृत होते हैं। मन्त्रों के विधिपूर्वक गठन से वह शब्द उनसे सम्बन्धित यौगिक ग्रन्थियों को गुदगुदाते हैं। उनकी सोयी हुई शक्तियों को जगाते हैं। उन ग्रन्थियों में स्फूर्ति आने से वह क्रियाशील हो जाती है, जिस प्रयोजन के लिए जो [illegible] होते हैं वह उसी प्रकार की ग्रन्थियों को जगाते हैं, उन्हीं पर वह शब्द आघात करते हैं। इन ग्रन्थियों की क्रियाशीलता से ही साधक को विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती है, जो दूसरों को चमत्कार दिखायी देती है। परन्तु वह वास्तव में शब्दों की

वैज्ञानिक प्रक्रिया का परिणाम है ।

फ्लोरेन्स स्कोवेलशीन अपने ग्रन्थ में लिखती है कि 'साइंस एंड रिलीजन आर …फ अर्निंग टूगैदर । साइंस इज डिस्कवरिंग द पावर विदिन द स्टोन , मैटाफिजिक्स …ज द पावर विदिन थाट्स एंड वर्ड्स । वी आर डीलिंग विद डायनिमक्स व्हैन … विद वर्ड्स । थिंक आफ द पावर आफ द वर्ड इन किलिंग । अ वर्ड स्पोकन … कैमिकल जेज टेक प्लेस इन द बौडि[1]।

अर्थात् विज्ञान और धर्म एक दूसरे के निकट आ रहे हैं । विज्ञान अणु में शक्ति को खोज रहा है । जबकि आध्यात्म विचार और शब्द शक्ति का अध्ययन करता है । जब हम शब्दों का व्यवहार करते हैं तो हम विस्फोटक वस्तु से व्यवहार करते हैं । शब्द शक्ति को उपचारात्मक रूप से सोचो । उच्चरित शब्द शरीर में रासायनिक परिवर्तन लाते हैं ।

मन्त्र की सफलता उसके शुद्ध उच्चारण में है, तभी उसके गुंथे हुए शब्दों का प्रभाव विभिन्न शक्ति केन्द्रों पर पड़ना सम्भव होता है । मन्त्र की सफलता में भावना का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है । श्रद्धा और विश्वास इसके मेरुदण्ड हैं ।

विज्ञान के इस युग में शब्द विज्ञान पर अनेकों वैज्ञानिकों के सफल परीक्षणों के बाद भी यदि हम शब्द विज्ञान पर आधारित मन्त्र गठन की वैज्ञानिक प्रक्रियाओं पर अविश्वास करें तो हमें वैज्ञानिक तथ्यों से अनभिज्ञ ही समझा जायेगा ।

शब्द की सामर्थ्य को सभी भौतिक शक्तियों से बढ़ कर सूक्ष्म और विभेदन क्षमतावाली पाने की निश्चित जानकारी हमारे ऋषि मुनियों को थी । जिसके कारण मन्त्र विद्या, यन्त्र विद्या, तन्त्र विद्या आदि का विकास किया । जिस पर कई ग्रन्थों की रचना हुई । उन मन्त्र तन्त्रों की विषयगत व्यापकता बड़ी दर्शनीय है । इन ग्रन्थों का दार्शनिक दृष्टि से अनुशीलन करने पर प्रमुख भेद निम्न प्रतीत होते हैं.-

जैन तन्त्र, वैष्णव तन्त्र, शैव तन्त्र, शाक्त तन्त्र, बौद्ध तन्त्र आदि । भेदोपभेद की दृष्टि से उपर्युक्त तन्त्रों की अनेक शाखाएँ हैं । भारतीय मन्त्र शास्त्र की इस विशाल परम्परा में अन्य सम्प्रदायों की तरह जैन सम्प्रदाय में मन्त्र-यन्त्र एवं तन्त्र से सम्बन्धित शास्त्र प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं । यदि इनका सम्यक् रूप से उपयोग किया जाय तो मानव जीवन की सभी उलझी गुत्थियों को सुलझा कर पृथ्वी पर ही अपना स्वर्ग बनाने की सफलता प्राप्त की जा सकती है । किन्तु कब ? जिस प्रकार भौतिक विज्ञान के आचार्यों ने शब्द विज्ञान के रहस्य को प्रकट कर नई आस्थाएँ बनायी हैं, उसी तरह मन्त्र साधना के आचार्यों का भी कर्तव्य हो जाता है कि वह इस क्षेत्र में हर प्रकार के प्रयोग करें और लुप्त प्रायविधि विधानों का शोध एवं विकसित करने का प्रयत्न करें ताकि वैज्ञानिक

-5-

1. The Power of the spoken word P. 43.

युग में मन्त्र शक्ति पर डूबते हुए विश्वास को पुनः उभार सके ।

विषय की महत्ता को वैज्ञानिक युग के परिप्रेक्ष्य में तर्क तथा व्यावहारिकता के आधार पर जानने का प्रयास किया । अब आगे हमें इस क्षेत्र की अद्यावधि उपलब्धियों पर विचार करना होगा, साथ ही भविष्य की परिकल्पनाओं की रूपरेखा तैयार करनी होगी । जिससे भविष्य में अध्ययन के विकास की दिशाएँ खुले :-

मेरी दृष्टि में जो प्रकाशित तथा अप्रकाशित मन्त्रशास्त्र के ग्रन्थ आये उन ... 'जैन मन्त्रशास्त्रों की परम्परा और स्वरूप' नामक निबन्ध में सार संक्षेप के साथ ... है । जिसमें करीब चालीस ग्रन्थों के हवाले प्रस्तुत किये गये हैं । उपलब्ध प्रकाशित मन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों का अध्ययन करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि समस्त पुस्तकों में मन्त्र-सिद्धि की सम्पूर्ण विधि का अभाव है । मेरी जानकारी के अनुसार जैन मन्त्र शास्त्र पर विश्वविद्यालय के माध्यम से अभी तक कोई शोध कार्य नहीं हुआ है । अतः उस विषय पर शोध कार्य की महती आवश्यकता है ।

भविष्य में जैन मन्त्रों के अध्ययन, मनन प्रतिपादन के लिए नीचे लिखे शीर्षकों के आधार पर वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक दृष्टियों से विशद शोध कार्य कर इस विद्या के लुप्त प्राय विधि विधानों को पुनर्जीवित किया जा सकता है ।

1. मन्त्र की परिभाषा 2. मन्त्र की शक्तियों का वैज्ञानिक रहस्य
3. शब्द शक्ति के चमत्कार 4. ध्वनि तरंगों की भौतिक उपलब्धियाँ
5. जैन मन्त्र शास्त्रों में वर्णों की शक्तियाँ 6. जैन मन्त्र शास्त्रों में बीजाक्षर का रहस्य 7. जैन मन्त्र तथा देवता 8. जैन मन्त्र और ज्योतिष 9. देव प्रतिष्ठा और जैन मंत्र 10. पूजन तथा जैन मन्त्र 11. व्रत तथा जैन मन्त्र
12. साधु तथा जैन मन्त्र ।

इसके अतिरिक्त जैन मन्त्रों के स्वरूप की हर विद्या पर पृथक् मौलिक शोध ग्रन्थों की रचना सम्भव है :-

<u>शान्तिमन्त्र</u> . 13 जैन मन्त्र शास्त्रों में ग्रह (भूत-व्यन्तर आदि) पीड़ा निवारक मन्त्र यन्त्र एवं तन्त्र
14 जैन मन्त्र तथा रोग निवारण ।
15 विष बाधा निवारण तथा जैन मन्त्र
16 जैन मन्त्र शास्त्रों में दुर्भिक्षादि प्रशम मन्त्र यन्त्र एवं तन्त्र ।

<u>पौष्टिक मन्त्र</u> : 17 जैन मन्त्र शास्त्रों में लक्ष्मी प्राप्ति मन्त्र यंत्र एवं तन्त्र ।
18 यश सौभाग्य तथा जैन मन्त्र ।
19 सन्तान प्राप्ति तथा जैन मन्त्र ।

<u>वश्याकर्षण मंत्र</u> : 20 जैन मन्त्र शास्त्रों में वश्याकर्षण मंत्र यंत्र एवं तन्त्र ।

<u>मोहनमन्त्र</u> : 21. मोहन तथा जैन मन्त्र शास्त्र ।

<u>स्तम्भन मन्त्र</u> : 22 जैन मन्त्र शास्त्रों में स्तम्भनाधिकार ।

<u>विद्वेषण मन्त्र</u> . 23. विद्वेषण तथा जैन मन्त्र ।

<u>उच्चाटन मन्त्र</u> : 24 जैन मन्त्रों में उच्चाटन मन्त्र यन्त्र एवं तन्त्र ।

<u>मारण मन्त्र</u> : यद्यपि जैन धर्म में किसी के प्राणों का घात करना घोर पाप है, किन्तु फिर आचार्यों ने मारण मन्त्र के प्रयोग क्यों बतायें ? इसका उत्तर यही है कि आचार्यों ने आत्मरक्षा हेतु विधान बताया न कि जान बूझ कर किसी का घात करना ।

25 जैन मन्त्र तथा आत्मरक्षा मारण मन्त्र

मन्त्र साधना के निम्न बिन्दु जिन पर तुलनात्मक तथा परीक्षणात्मक शोध अपेक्षित है ।

26. जैन मन्त्र शास्त्रों में मन्त्र तथा गुरु
27. जैन मन्त्र शास्त्रों में मन्त्र तथा साधक
28. जैन मन्त्र शास्त्रों में सकलीकरण विधान
29. '' '' मन्त्र तथा स्थान
30 '' '' मन्त्र तथा वस्त्र
31. माला तथा जैन मन्त्र शास्त्र
32. आसन तथा जैन मन्त्र शास्त्र
33. मुद्रा और जैन मन्त्र शास्त्र
34 दिशा तथा जैन मन्त्र शास्त्र
35 जप तथा जैन मन्त्र
36. योग तथा जैन मन्त्र शास्त्र
37. जैन मन्त्र शास्त्र तथा देवपूजा
38. जैन मन्त्र शास्त्र तथा दीप धूप वस्त्र
39 जैन मन्त्र तथा ध्यान
40 संयम तथा जैन मन्त्र साधना
41. जैन मन्त्र साधना तथा आहार
42. जैन मन्त्र तथा यज्ञ .

43 जैन मन्त्र तथा अर्थ चिन्तन

44 जैन मन्त्र श्रद्धा एवं दृढ़ संकल्प

45 जैन मन्त्र साधना एवं साधना नियम

उपर्युक्त बिन्दुओं पर शोध कार्य करने के लिए सर्व प्रथम भारत के प्रत्येक ग्रन्थ भण्डारों से जैन मन्त्र शास्त्रों की परम्परा पर सूची ग्रन्थ तैयार किये जायें, जिसमें प्रत्येक मन्त्र ग्रन्थ का सार संक्षेप दिया हुआ हो । साथ ही उपलब्ध ग्रन्थ एवं पाण्डुलिपियों की सुरक्षा एवं संरक्षण की समुचित व्यवस्था की जाय साथ ही माइक्रो फिल्म का निर्माण किया जाय जिससे समय-समय पर गोष्ठियों के आयोजन करने पर उपेक्षित ग्रन्थ की अवधारणा स्पष्ट हो सके । विश्वविद्यालयों में शोध के लिए संकाय प्रकोष्ठ की स्थापना करवायी जाय । जिन विषयों पर शोध कार्य हो, उनका प्रकाशन करवाकर उचित मूल्य पर जनता को ग्रन्थ उपलब्ध कराये जायें ।

उपर्युक्त परिकल्पनाओं को मूर्त रूप देने पर जैन मन्त्र विद्या के अध्ययन के विकास की दिशाएँ खुलेंगी हो नहीं अपितु इस विद्या के वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने पर जो तथ्यों का विश्लेषण हमें प्राप्त होगा वह निश्चित रूप से मानव कल्याण के लिए लाभदायक सिद्ध होगा ।

टिप्पणी

जैसी कि संयोजक महोदय ने मुझसे जो अपेक्षा की थी उसी के संदर्भ में मैंने अपने विचार इस आलेख में प्रस्तुत किये हैं । आलेख को प्रस्तुत करने से पहले मैं कुछ निवेदन कर देना चाहता हूँ कि यह विषय एक ऐसा विषय है कि जो आज के वैज्ञानिक भौतिक युग में हम मात्र कपोल कल्पना एवं अन्ध विश्वास मात्र समझ लिया गया है । मैं भी आज से बारह वर्ष पहले इसी विचारधारा का था कि ये जप पूजन पाठ, अभिषेक, मंत्र-तंत्र और ज्योतिष मात्र कल्पना है । किन्तु सन् 1967 में आचार्य विमलसागर जी महाराज के सान्निध्य में आने का मौका प्राप्त हुआ । उस समय से प्रेरणा प्राप्त हुई कि भारतीय विद्याएँ जो हैं वे अमूल्य विद्याएँ हैं और इनमें वैज्ञानिक दृष्टि सन्निहित है ।

ज्योतिष क्या है

- डा. यतीन्द्रकुमार जैन शास्त्री, आगरा

निखिल ज्ञान का एक प्रधान अंग ज्योतिष भी है । यह ज्योतिष खगोल स्थित सूर्य चन्द्रादि नवग्रह 28 नक्षत्रों एवं धूमकेतु आदि के गति उदय एवं प्रभाव से उत्पन्न गणित फलित का वर्णन करने वाला ज्योतिष ज्ञान कहलाता है ।

यह विद्या मानव को भविष्य ज्ञान के जानने की तीव्र इच्छा को तृप्त करता है । आदि महामानव (ज्ञान प्रवार प्रसार का प्रथमोद्गम महास्रोत) श्री भगवान् आदिनाथ ब्रह्माजी ने जिस तरह आधुनिक सर्व विषयों की जानकारी शिल्प-कला कौशल का मानव को ज्ञान दिया, वहीं ज्योतिष ज्ञान का भी (खगोल भूगोल विषयक) ज्ञान दिया था । तब से उत्तरोत्तर वृद्धिंगत हुआ अद्यावधि उपस्थित है ।

ज्योतिष-शास्त्र

अंक विद्या भी इस ज्योतिष शास्त्र का प्राण है । सभ्य जगत् की गणित ज्योतिष ज्ञानोन्नति का मूल क्रम, वर्तमान अंक क्रम है । जिसमें मुख्य अंक एक से नव तक एवं शून्य कहलाते हैं । जगत् का सम्पूर्ण व्यवहार इनके लोम, विलोम, प्रतिलोम पद्धति का ही विकसित रूप है । जैन अंक विद्या 66 अंक प्रमाण व्यवस्थित है । यह क्रम भारतीयों की देन है जिसे संसार अपनाये हुए हैं ।

ज्योतिष - शास्त्र की आधारशिला (समवायांग)

खगोल-भूगोल के प्राचीन मनीषियों ने और जगत् का सूक्ष्म अवयवी अध्ययन किया एवं ऋषि-मुनियों ने त्रिगुप्ति उपयोग बल से साक्षात् ज्योतिष चक्र को देखकर नव राशि 88 ग्रह, 28 नक्षत्रों चन्द्र (ज्योतिष देवों का राजा) सूर्य (ज्योतिष देवों का प्रति राजा) एवम् समग्र परिवार 2 सूर्य, 2 चन्द्रमा, 88 ग्रह, 28 नक्षत्र - एवं आकाश गंगा आदि एवं सुदर्शन मेरु की प्रदक्षिणारत 110 योजन मोटे आकाश में स्थित हमेशा गतिशील एवं सूर्य (183 । 184) गमन मार्ग) लवण समुद्र के बाह्य मार्ग से सिंह गति से जम्बूद्वीप में आते समय गज गति गमन आदि का ज्ञान प्राप्त कर जगत को (संसार) दिया है ।

ज्योतिष शास्त्र के आधार ग्रन्थ और सिद्धान्त

मुख्य आधारभूत सिद्धान्त ये हैं -

1. जैन ज्योतिष सिद्धान्त (मूलज्ञान)
2. वशिष्ट सिद्धान्त
3. रोमक सिद्धान्त (व्याख्याता लाट देव) ग्रीक सिद्धान्ताधार पर
4. पौलिश सिद्धान्त (यूनानी सिद्धान्तोन्ताधार से)
5. सूर्य सिद्धान्त (कर्ता श्री सूर्य ऋषि)

इन पाँच सिद्धान्तों के अतिरिक्त ताजिक पद्धति (यवन पद्धति), नारद संहिता, गर्ग संहिता, पाराशर होराशास्त्र, सिद्धान्तशिरोमणि, तथा अर्ध भद्रो सिद्धान्त, सौर सिद्धान्त, पितामह सिद्धान्त, अर्ह चूडामणिसार, केवलज्ञान प्रश्नचूडामणि, रिष्ट समुच्चय, भद्रबाहु संहिता, चन्द्रोन्मीलन (कुवलयमाला), मेघमाला, सामुद्रिक सार आदि आदि अनेक शास्त्रों से आज तक अधिकाधिक अक्षुण्ण रूप ज्ञानवर्द्धन पुष्ट हुआ है। ज्योतिष का सम्पूर्ण रूप निमित्त ज्ञान कहलाता है - जिसके कतिपय विभाग निम्न प्रकार हैं ;

1.	स्वरज्ञान	2.	लक्षणज्ञान
3.	व्यंजन ज्ञान	4.	स्वप्नज्ञान
5.	छिन्न ज्ञान	6.	भौम ज्ञान
7.	अंतरिक्ष ज्ञान	8	अंग ज्ञान
9	अंक ज्ञान	10	शरीराकृति चिन्ह ज्ञान
11	प्रश्नज्ञान (अंक या सांकेतिक) (अष्ट प्रकार)	12.	नष्ट ज्ञान

यह सब लोक में नित्य व्यवहार योग्य है - सुलभता से विद्वानों द्वारा जनता लाभान्वित होती रहती है।

ज्योतिष काल विभाग एवं शुभाशुभ कालज्ञान प्रथम सूर्य चन्द्रोदय।

प्रथम कुलकर प्रतिश्रुत के समय में मनुष्यों को सूर्य और चन्द्रमा को आकाश में देखा। इससे पहले ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्षों के प्रभाव नक्षत्र मंडल सहित चन्द्र सूर्य दिखायी नहीं देते थे। सो अब उन्हें देखकर भयभीत जनता प्रथम कुलकर के पास आयी और विपत्ति का वर्णन किया। तब प्रतिश्रुत ने ये चन्द्र-सूर्य हैं अब रात दिन हुआ करेंगे नक्षत्र मण्डल भी दीखेगा, व क्रमश: दशों जाति के कल्पवृक्ष - प्रभावहीन होते होते विलुप्त हो जायेंगे। अब महीना, ऋतु, अयन वर्ष, युग, संवत्सर से काल गणना होगी, आदि आदि। इस प्रकार एक के बाद दूसरे यों चौदह कुलकर हुए। बाद नाभिराय व उनके पुत्र श्री ऋषभदेव हुए। ये भी 15 वें 16 वें कुलकर कहलाये।

ये प्रथम तीर्थंकर थे । यों श्री आदिनाथ स्वामी/से ही सम्पूर्ण ज्ञान, कला-कौशल, नगर व्यवस्था, न्याय व्यवस्था कार्यपद्धति प्रगट हुयी । ज्योतिष ज्ञान आदि आदि के आद्य प्रवर्तक हुए । इस प्रकार करोड़ों लाखों वर्ष पहिले से ही ज्योतिष एवं अन्य सभी ज्ञान का प्रकाश फैल चुका था । वह तो यह कहिये कि आपाधापी के समय बराव होता गया । तब आपसी झगड़े राजयुद्धादि से पूर्व विकसित सभ्यता, विज्ञान कला का स्वर्णयुग नष्ट हो गया । युद्धादि प्रतिसंहार से बची शेष जनता गरीबी अभाव, क्लेश, रोग में जकड़ी विद्या विहीन होती गयी । कुछ समय बाद जब कुछ स्थिति सुधरी तो ज्योतिष विद्या की ओर ध्यान गया । स्मरण रहे ये युग श्रुति युग थे । एक दूसरे से गुरु शिष्य ने सुन सुनकर ज्ञान कंठाग्र कर लिया करते थे । जब संहार हुआ तो ज्ञानियों का भी विनाश हुआ । तब आज तक क्रमशः विकास करते करते (शोध खोज) इस अवस्था को प्राप्त हुआ है ।

महाकाल

महाकाल जो 20 कोड़ाकोड़ी सागर का होता है । इसके दो विभाग होते हैं जो 10-10 कोड़ाकोड़ी सागर के हैं । (1) अवसर्पिणी, (2) उत्सर्पिणी, इन विभागीय कालों में लघुकाल (समय) छः छः विभाग हैं जो पहिला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवा या छठा (सुखमा-सुखमा, सुखमा, सुखमा-दुखमा, दुखमा-सुखमा, दुखमा, दुखमा दुखमा) यों अवसर्पिणी में आयु काय शक्ति सुख की वृद्धि एवं उत्सर्पिणी में क्रमशः घटती जाती है ।

इस प्रकार माह वर्ष, युग, संवत्सर होते शताब्दियाँ व्यतीत होती रहती हैं । काल और महाकालों का चक्र चलता ही रहता है । यह वैधक शाला है ।

ज्योतिष

ज्योतिष मुख्यतः दो विभागों में है । 1- गणित 2- फलित ।
आजकल गणित की कई पद्धतियों में 3 का ज्यादा चलन है । भारतीय गणित । (ग्रहलाघवीय, केरलीय,

2. यूरोपीय गणित । 3- यवन व ग्रीक गणित । भारतीय गणित के तीन स्कंध हैं - 1- करण, 2- तंत्र, 3- सिद्धांत ।

फलित ज्योतिष के 5 स्कंध हैं । 1- जातक, 2- ताजिक, 3- मुहूर्त, 4- प्रश्न, 5- शकुन ।

भारतीय ज्योतिष का लक्ष्य आत्म कल्याण के साथ-साथ लोक व्यवहार को लाभ

सम्पन्न करना है । यह उक्त दो वर्गीकरणों में आ जाता है ।

प्राचीन ऋषि मुनियों ने योगबल से ज्ञान वर्द्धन किया एवं नंगी आँखों से ग्रहों, नक्षत्रों, राशियों, धूमकेतुओं, उल्काओं को आकाश में स्पष्ट स्थिति को जानकर । पंचांग निर्णय पूर्वक नियमन से निर्माण को जिसका अद्यावधि चलन है । फलित ज्योतिष का अनुभव अपने दिव्य ज्ञान से जानकर शास्त्र रच दिया । पर अब उस प्रकार के दि० ज्ञानियों के अभाव से प्राचीन ज्योतिष में शिथिलता आ गयी है । पुरातन शास्त्र कु- मे आपत् काल युद्ध व्यवसायों संग्रहालय के संग्रहालय नष्ट हो गये । अतः आ न ढंग से शोधखोज करना अत्यावश्यक हो गया है । उन्नत वेधशालाओं से प्रत्यक्ष ज्ञान संभव है । यदि राजकीय बृहद्सहायता प्राप्त हो तो नवीनतम सूक्ष्म गणित का निर्माण हो सकता है ।

सभी ग्रह यद्यपि गुरुत्वाकर्षण शक्ति से परस्पर आबद्ध एक निश्चित कल्पित धुरी पर घूमते रहते हैं । भास्कराचार्यजी ने सिद्धांत शिरोमणि के

आकृष्टशक्ति स्च महीलमायत, स्वस्थं गुरु स्वभिमुखं स्व शक्त्या
आकृष्यते यत्पततीतिभाति, समे समन्तात्क्व पतत्वि यं खे ।

पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति से आसपास के पदार्थों को खींचा करती है । दूर होने से खिंचाव कम होता है । पास होने पर खिंचाव भी बढ़ जाता है । यही कारण है कि गृहगति में अंतर हुआ करता है ।

जातक स्थिति

स्वकर्मानुसार प्रत्येक जीव पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्मफल को भोगने वश मृत्यु के पश्चात् आत्मा नवीन जन्म धारण हेतु योनि स्थान को प्राप्त होती है । जन्म के साथ भचक्रस्थ ग्रहों की जानकार जन्म कुंडली एवं अंतरदशा प्रत्यन्तर दशा ग्रहस्पष्ट आदि गणित विस्तार से शुभाशुभ स्थिति का ज्ञान किया जाता है। अत पंचांग शुद्धि पर ध्यान देना चाहिए । इष्ट सावधानी से बनाना चाहिये । तभी फलादेश प्राप्त होता ।

इस प्रकार ज्योतिष पर अभी बहुत शोध-खोज की आवश्यकता है । यदि कुछ विद्वान शोध-खोज कार्य में संलग्न हो जायें तो प्रामाणिक सूक्ष्म विधियाँ खोज निकाली जा सकती हैं ।

प्राचीन, अर्वाचीन, आधुनिक, अत्याधुनिक विचारों की उपलब्धियों को एकत्र कर गणित विस्तार सूक्ष्म विवेचन कर सर्वसुलभ सिद्धान्त का निर्माण किया जाना अत्यावश्यक है ।

योग

मन्त्र - यन्त्र - तन्त्र

आर्य खण्ड और विशेषतः भारतवर्ष में भोगभूमि काल के बाद कर्मभूमि-काल की आदि में महायोगीश्वर श्री 1008 आदिनाथ, (ऋषभदेव) इक्ष्वाकुवंश के आद्य कुल ईश्वर प्रथम तीर्थंकर थे। जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान से परिपूर्ण ज्ञानवान थे। आद्ययोगी, आद्य धर्मोपदेशक सम्पूर्ण कला-कौशल के आद्य प्रणेता थे।

योग, मंत्र, यंत्र, तंत्र आदि शिक्षक जगद्गुरु थे इसी समय से आज तक परम्परा ऋषियों द्वारा यह ज्ञान बहुत कुछ अभी जीवित है।

योग

मन, वचन, काय को वश करने को (गुप्ति) योग कहा जाता है। उक्त ज्ञान-त्रयों को भी जितना अधिकाधिक योगपूर्वक चिन्तन में लगेगा उतना ही ज्ञान प्रकाशदाता होगा - वृद्धि को प्राप्त होगा।

आज का मानव अल्पशक्ति कमजोर कायवाला होने पर भी जितना योगत्रय को वशवर्ती कर मंत्र का जाप, यंत्र का लेखन, तंत्र का एकत्रीकरण कर प्रयोग लायेगा तो उतना ही लाभ प्राप्त कर सकेगा। मन वचन काय का स्थिर होना अत्यावश्यक है। जो प्राणायाम द्वारा भी हो सकता है एवं धारणा योग से भी संभव है।

संकल्पशक्ति

मन की अत्यंत सूक्ष्म गति को संकल्प शक्ति कहते हैं। अर्थात् - वह सूक्ष्मगति जो किसी काम के करने के लिये अन्य को प्रेरणा देती है या प्रेरित करती है। जब वह सूक्ष्म अवस्था कुछ स्थूल रूप धारण करती है तब उसे तंत्र (विचार) कहते हैं।

मन्त्र शक्ति

मातृका वर्ण (असे हतक) एवं तदुत्पन्न बीजाक्षरों, दग्धाक्षरों कूटाक्षरों, प्रणवबीज, मायाबीज, वाग्बीज आदि से युक्त विशिष्ट कामनाओं में निहित योग्य पल्लव स्वरादि के साथ जो सूत्र रचना है वह मंत्र कहलाते हैं।

ये मंत्र कभी स्तोत्र में गुम्फित भी पाये जाते हैं। तब स्तोत्र मंत्र कहलाते हैं। मंत्र में कामना, शांतिक, पौष्टिक, वश्य, आकर्षण, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन मारण आदि अनेक रूप में देखी जा सकती है। लोम प्रतिलोम आदि पद्धति से गुम्फित

होती है । मंत्र को हम विचार भी कह सकते हैं जो संकल्प शक्ति से परिपक्व किये जाते हैं । संकल्प शक्ति की ही दूसरी अवस्था मंत्रशक्ति जो बाह्य आभ्यंतर स्थिति युक्त होती है ।

मंत्र का जाप

निहित मंत्र को निर्दिष्ट दिशा में कार्य के अनुरूप दिशा, समय, आसन, पल्लव, मुद्रा, योग, वस्त्र, मंडल, स्वर, माला, हस्तांगुलि, संचालन आदि।

चतुर्थी मंत्र स्मरण ।. वैखरि (स्पष्ट उच्चारण 2. पश्यन्ति (अर्धदृष्टि) 3. मध्यमा (हृदये सर्व कर्म व्यापिका) 4 परा (चतुर्था मंत्र जाति) ।. मानवः (सत्कर्म बीजः) 2. कर्मजः सद्व कर्मोदयः) 3. प्रवर्तकः (सत् कर्म - प्रवृर्तयित्वा) 4 निवर्तक. ।

मंत्रोच्चार

शक्ति की वह तरंगें जिनके साथ संकल्प शक्ति का (श्रद्धा व दृढ़ता) अकंप, अडोल, सबका सामंजस्य है । मनुष्य के मन, मस्तिष्क से निकलकर शब्द या विचार रूप सूक्ष्म या स्थूल रूप से निकलकर रूकावट या विरोध को पारकर असम्य तक निरंतर दौड़ती रहती है । जब तक साधक साध्य को प्राप्त न कर ले । यही वह ऊर्जा उत्पन्न करती है जो अंतर्जगत से कर्म निर्जरा और कर्म क्षय करती है । और बहिर्जगत से साध्य को प्राप्त कराती है । उसे साध्य करती है । बाह्य जगत में भी टेलीपैथी उस मानसिक स्थिति (माइंड मैसेज) का कार्य है जिसे हम सत्वपान दृढ़ संकल्पशक्ति (मंत्रोच्चार) कह सकते है ।

मन्त्र (शब्द) प्रेषण

शब्द (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत) नाद स्वर जो नियमानुसार विस्तृत हुआ होता है, वायुमण्डल में उसी प्रकार की गति उत्पन्न करता है जिस प्रकार झील में एक कंकड़ डाल देने से तरंगें उठने लगती है वैसे ही आकाश में लहरें उत्पन्न होती बढ़ती जाती है । बारंबार हजार लाख की संख्या एक से एक लय से निकलते शब्द लहर पर लहर उत्पन्न करते बढ़ते जाते हैं । दूर तक पहुँच कर साध्य पर अपना इच्छित प्रभाव डालती है । विद्युतधारा के समान ऊर्जा उत्पन्न करती अनहोनी को होनी में परिणित कर देती है । यही मंत्र सिद्धि का रहस्य है ।

मंत्र प्रायः अशुद्ध मिलते हैं । कारण ग्रन्थ प्रकाशक मंत्र व्याकरण, शब्द-सामर्थ्य, शब्द सामर्थ्य, शब्द लक्षण, शब्द परिचय से बीजाक्षर सामर्थ्य एवं अर्थ से एवं उनके विनियोजन से अनभिज्ञ होते हैं । विरुद्धाक्षरों के उच्चारण से विरुद्ध प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। फलतः साधकका मन, मस्तिष्क, शरीर, चेष्टा, स्वर, भाव, भंगिमा विकृत अवस्था को प्राप्त हो जाती है । ऐसी दशा में अज्ञानी जीव मंत्र क्रिया को बुराई मानने लगते हैं । जैसे गलत दवा के प्रयोग उत्पन्न शरीर को व्याधि (रिएक्शन) पूर्ण देखकर दवामात्र को ही अनिष्टकारक मान लें ।

धनुषादि भिन्न आकारों विभिन्न कोष्ठों में लोम प्रतिलोम चालन, क्रमानुसार अंकों को कोष्ठों में भरना यह भी मंत्र नियमानुसार आम्र, जामुन, बहेड़ा आदि पट्ट पर नदी तीर पर भूर्ज पर पद्यकर्दम या केशर का अष्टगंध या अशुचि पदार्थों से निर्मित आधार संख्यानुसार लिखने से सिद्धि प्राप्त होती है । मंत्र अंकों में या शब्दों में या शब्दांकों में होते हैं । जो ताम्र, स्वर्ण रजतादि पात्रों में रखकर गले बाँह कमर में पहने जा सकते हैं । कुछ गाढ़े, या ताप शीत गर्म में ढाले जाते हैं ।

तंत्र

विविध प्रकार की वस्तुएं एवं वनस्पतियों को देश, काल, नक्षत्र, पात्र, राशि मुहूर्त, योग, तिथि, वार, लग्न, ग्रह, तंत्र शास्त्रानुसार मिलन कर एकत्र करना तंत्र है । ये अभिप्राय वशीकरणादि, रोगनाशन, रोगोत्पादन, कलह द्वेष, उन्मत्तादि कारण में समर्थ होता है । किसी किसी तंत्रमें मंत्रोच्चार पूर्वक संग्रह का उत्पाटन का भी विधान पाया जाता है ।

मंत्र सिद्धि

निर्देशित दिशा, काल, योग, देवता, पल्लव, आसन, वस्त्र, रंग, मुद्रा, माला, दीप, धूप, आदि 15-20 प्रकारों को समझ कर अपने अनुकूल ज्योतिष में पंचांग शुद्ध मुहूर्त में मंत्र साध्य सिद्ध, सुसिद्ध और भेद वस्त्र विचार कर जपने से मंत्र की

सिद्धि होती है ।

विशेष विचार

उक्त तीनों प्रकारों में मंत्रज्ञ देवज्ञ गुरु से मंत्र दीक्षा लेकर गुरु आज्ञा से आरम्भ करना चाहिये। अमृत स्नान, सकलीकरण, दिग्बंधनकरने से कार्य-सिद्धि, सिद्धि, विद्या सिद्धि, प्राप्त होती है, देवों का साक्षात्कार वार्तालाप आदि भी हो सकता है । पर विधिपूर्वक जाप, दशांश हवन, तर्पणादि, पूर्णाहुति करनी ही चाहिये । यों प्राय. पूर्णाहुति भर ही देवदर्शन, वर प्राप्ति, या अन्य वार्तालादि होता देखा गया है ।

मन्त्र क्रम तीन प्रकार है -1- सृष्टि क्रम 2- स्थिति क्रम 3- संहार क्रम ।

सृष्टि क्रम मन्त्र - काम्य विधिपूर्वक साधन सुख शांति अभ्युदय, धर्म, पुरुषार्थ, अर्थ पुरुषार्थ, काम पुरुषार्थ, स्मक, पौष्टिकादि सृष्टि उत्पन्न कर्य सृजनात्मक होते हैं ।

स्थितिक्रम मन्त्र - जीवों को दुःखोत्पादक शुभ संस्कारों का नाश, किंवा अशुभ भाग्य का, अशुभ कर्मों का, जीवों के शत्रु, अशुभ भवों का, अशुभ पुद्गलों आदि आदि का शुभ परिगमन अशिव का संहार करते है । किंवा सुगुण का संहारकर विनाश उपस्थित करते हैं । साधक के भाव, पराक्रम, गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र के प्रभाव से संहार करना इन मंत्रों का कार्य है । साधक चाहे शुभ का संहार करें या अशुभ का संहार करना चाहे, संहार (विनाश) कर ना उनका कार्य है ।

-

मातृकाक्षर, बीजाक्षर, अंक, अंक विकास, विस्तार, विस्तार क्रम, सामर्थ्य, सम्पूर्ण मातृकाक्षरस्वरूप आदि को बनाने वाला मंत्रबीज व्याकरण जिसमें संयुक्त बीजाक्षर, कुटाक्षर, दग्धाक्षर, शून्याक्षर, पिंडाक्षर, वर्गाक्षर, ज्ञानबीज, मायाबीज, लक्ष्मीबीज ऐश्वर्य बीज आदि आदि की क्षमता, सामर्थ्य, स्वरूप, विस्तार, प्रभाव, प्रेषण, संप्रेषण टैलीपैथी, आधुनिक विज्ञान से भी जहाँ सिद्धान्त भेद न हो वहाँ तक सामंजस्य स्थापित करते हुए विज्ञान सम्मत स्थिति का दिग्दर्शन सहित, टिप्पणी सहित, एवं ध्वनि, मंत्र ध्वनि विशेषता ध्वनि से उत्पन्न तेज, तेज प्रवाह, उसे गति देना, तेजगति देना, मारक, तारक, संहारकगति, प्रदान करना, ऊर्जोत्पन्न विधि, नियमन, विस्तार संकोच, सूचीवेध स्थिति लाना, ऐसी शक्ति जो लोक संहार, लोकरंजन, लोक लक्ष्मी, (शिवकारक, अशिवकारक) का प्रसार प्रचार हेतु शक्ति सृजन का अर्पन हो ऐसे ग्रन्थ का प्रकाशन आवश्यक है

टिप्पणी: इस आलेख में जो अशुद्ध या अस्पष्ट लगे, उसके विषय में निम्न पते पर जानकारी प्राप्त करें । डा0 यतीन्द्र कुमार जैन, शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, आगरा ।

मंत्र शक्ति

- प्रो0 अक्षयकुमार जैन, इन्दौर

1. मन् धातु से ष्ट्रन प्रत्यय लगने से मंत्र बनता है । मंत्र का बाह्य रूप (अथवा शरीर) शब्द है, ध्वनि उसके प्राण है, गति, यति, लय, तत्व उसके मर्म है, और भाव उसकी आत्मा है ।

2. शब्द - पुद्गल की पर्याय, जैन दृष्टि से है, आकाश का गुण वैदिक दृष्टि से है, और विश्व का आदि या संसार का मूल ध्वनि है । मूल ध्वनि जो चराचर जगत में व्याप्त है - ऊँ है । तीर्थंकरों की वाणी-उपदेश-दिव्य ध्वनि ओंकारस्वरूप ही मानी गई है ।

3. ऊँ को आर्यावर्ती दार्शनिकों ने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप और सत्व-रज-तम रूप माना है । अ+ उ+ म तीनों ; द्रव्य के सत् स्वरूप के, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के वाचक हैं । जैन शास्त्रों में ऊँ पंच-परमेष्ठी वाचक अनंत शक्ति सम्पन्न मंत्र है । अंग्रेजी बाइबिल में .... सम्बोधन इसका ही अपभ्रंश है । गुरु नानक ने भी, एक 'ओंकार ध्वनि' को, अनादि-अखंड-विश्वोत्पत्ति का कारक कहा है ।

4. अणु के विस्फोटित होने पर जो नाभिकीय ऊर्जा उत्पन्न होती है वह सृष्टि में निर्माण/ध्वंस करने में सक्षम है। इसी प्रकार इस पंचतत्व के शरीर स्थित अनाहत, गूंजती हुई ध्वनि का एक रूप - सम्मोहक, वशीकरण उच्चाटन आदि, ओंकारस्वरूप ले लेता है ।

5. शब्द, ध्वनि, तरंग - विद्युत रूप - मन-प्राण के संयोग से, अति बलवान और शक्ति सम्पन्न हो जाते हैं । दैनिक व्यवहार में यदि आप किसी को कड़वा (उल्टा) भी बोल दें तो वह तत्काल आपसे झगड़ा कर लेता है । मीठे शब्द, मित्र ध्वनि के आकर्षण से, बैरी भी, मित्रवत् व्यवहार करने को तैयार हो जाता है ।

ध्वनि - चेहरे पर भावों को प्रदर्शित करती है ; कानों को टकराती है ; मन में भाव उत्पन्न करती है और श्रोता को प्रभावित करती है । हम जो भी शब्द बोलते हैं, वह ब्रह्माण्ड या लोकाकाश में ध्वनि तरंग से, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि रूप तत्वों के मिश्रण से, एक आकृति, रूप और चित्र बनाता है । मीठी कोमल ध्वनि-वायु तत्व के/ कर्कश रूक्ष ध्वनि अग्नि तत्व के, व मधुर-शीतल ध्वनि, जल तत्व के चित्रों को जन्म देती है ।

उच्छ्वास ; संतोष - शांत हृदयाकाश के अनाहत ध्वनि मंत्र,
आकाश तत्वों को जन्म देते हैं और वशीकरण; सम्मोहन; विद्वेषण; शक्ति उत्पन्न

करते हैं ; जो तत्संबंधी बीजाक्षरों, मंत्रों और देव देवियों को आव्हान कर स्थान देते हैं - फिर वैसा ही फल उपलब्ध हो जाता है ।

समय और स्थान महत्त्वपूर्ण है

न्यायालय का समय 11 से 5 दोपहर का है

स्थान - हाइकोर्ट - सुप्रीम कोर्ट की कथा है

जहाँ की सोच, शब्दों का प्रभाव जीवन को बदल देता है ।

इसी प्रकार,

रात्रि - 3 से 5 का शांत वातावरण, और हृदय से निकली ध्वनि, शब्द तरंग मंत्र रूप से - $1\frac{1}{2}$ मिनिट में सम्पूर्ण विश्व में तरंगायित होने की क्षमता रखती है ।

- कुरान में हजरत मोहम्मद ने फरमाया है 3-30 से 4-30 बजे ;
  मैं सब जगह, सबको सुनता हूँ,
  जो
  उस सच्चे दिल से फरियाद करता है, उसकी अर्जी मंजूर होती है ।

- उषाःपूर्व, ब्राह्म मुहुर्त में, शान्त आकाश एवं वातावरण में, स्तोत्र पूजन, भजन, मंत्र की जो आज्ञा - शास्त्र देते हैं, वह वैज्ञानिक तथ्यों एवं ऋषियों की साधना की पृष्ठभूमि पर आधारित है ।

- नीतिकारों ने कहा है - यदि आपके शब्द , ध्वनि, मंत्र
- दाँतों और ओठों से आते हैं तो -
- कण्ठ से स्वर रूप में - तो
- मन-प्राण-हृदय-आत्मा से गुंजित होते हैं - तो उस वाणी को, महासत्ता द्वारा सुना जाता है - प्रभु उसे सुनते हैं ।
- वह पवित्र, कोमल, निश्छल ध्वनि इष्ट देवों, पूज्य आत्माओं और पर्यटक प्रेत देवों द्वारा सुनी जाकर पात्रों को तदनुरूप फल भी देती है ।

- मंत्रोच्चार -

मंत्रों का जाप, यदि बढ़ता है । बढ़ाया जाये, तो वायुमण्डल में विद्युत चुम्बकीय तरंगें घनत्व बढ़कर - एकाग्रता लिए हुए लेसर किरणों समान, ऊर्जा से शक्ति सम्पन्नता को जन्म दे देती है । रूस में मनोचिकित्सक, रिकार्ड ध्वनि-टेप द्वारा बीमारों की चिकित्सा करने लगे हैं।

- संगीत - ध्वनि की शक्ति

- वनस्पति, पेड़-पौधों के पल्लवित-पुष्पित होने की प्रक्रिया तेज हो जाती है ।
- डेनमार्क में/ भारत में भी, पाया गया कि गाय-भैंसें अधिक दूध देने लगीं - यह सबको ज्ञात है ।
- सर्प; हिरण और दुष्ट जीव भी संगीत से वशीभूत हो जाते हैं । अतः शब्द-मंत्र का महत्त्व स्वयंसिद्ध है ही ।
- विश्वविख्यात नोबल पुरस्कार विजेता डा० चन्द्रशेखर रमण ने जीवन के अंतिम दिनों में ध्वनि-विज्ञान पर साधना की । सबसे कठिन भारतीय वाद्य तबला पर, अभ्यास द्वारा, ताल और लय के उच्चतम शिखर पर पहुँच गये । प्रदर्शन किया - तबला वादन का । थाप देते ही, समीप रखे मोती, ॐ और श्री का आकार, ले लेते थे ।
- एक बूँद जल, कम/अधिक होने पर, जल-तरंग से निकले स्वरों में, राग और रागिनी में, आकाश-पातालीय अन्तर हो जाता है ।

- मंत्र

- नेमिचंद्राचार्य आदि आचार्यों ने ; मन को बाँधने - संयमित करने के लिये द्रव्य संग्रह में कहा है परमेष्ठी वाचक सभी प्रकार के मंत्र जपो और मनरूपी चंचल बंदर को बाँधो ।

- ॐ - अ - अर्हत
  उ - साध
  म् - शांतरस/ वैसे ही -

- ऐं - सरस्वती वाचक
  ह्रीं - महालक्ष्मी वाचक
  श्री - अन्नपूर्णा वाचक
  बीजाक्षर जगत प्रसिद्ध है ।

- इन ध्वनि से - यंत्र, तंत्र-मंत्र का स्वरूप
- मोटर - यंत्र है
  चलाने का टेकनीक (तकनीक) - चालक (ड्राइवर) का तंत्र है ।
  साहूजी का - आर्डर - मंत्र है
  तीनों से ही मोटर यात्रा, संभव बनती है

- यंत्र-तंत्र-मंत्र तीनों का अन्योन्याश्रित संबंध है
- उनकी शक्ति, शास्त्र पूर्णत. विज्ञान सम्मत है
- तीनों योग्य कुशल-साधक, सामग्री - स्थान
  गुरु - पात्र - समय के अनुसार फलवान सिद्ध होते हैं ।

- प्रो० अक्षयकुमार जैन

ज्योतिष - ज्योति का, ज्योति तरंगों का, प्रकाश का, प्रकाश किरणों का, उद्योत, आताप, ऊष्मा के प्रभाव का वैज्ञानिक शास्त्र है ।

सूर्य, चांद और गृह नक्षत्रों की किरणें, तरंगे, पृथ्वीमंडल और उसके निवासियों पर जो प्रभाव डालती है, उसका विवेचन करना इस शास्त्र का लक्ष्य है ।

काले, पीले, नीले, श्वेत, लाल रंग अलग-अलग प्रभाव डालते हैं । अल्फा, बीटा एक्सरे तरंगों के प्रभाव व शक्ति से सब परिचित होने लगे हैं, वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है ।

आकाश, स्थित ग्रह मण्डल - दिन-रात के भेद से काल का विभाजन करते हैं । विस्तृत नीलिमा-सागर या आकाश की - शांति दे रही है । लाल रंग और किरणें क्रूरता व ब्लड प्रेशर को बढ़ाती है ।

चन्द्र + शनि, - कैल्शियम + क्लोरीन का मिश्रण - बाढ़ें लाती, दिमागी भ्रम उत्पन्न करता है । नेत्रों से प्यार, घृणा की किरणें निकलती है । रजस्वला के नेत्रों से, अचार- पापड़, मुरब्बा बिगड़ता है । क्रूर नेत्र-तरंगों से नजर लगना और गर्भवती की नेत्र-तरंगों से सर्प का अंधा होना, चन्द्रमा के घटने-बढ़ने से समुद्र में ज्वार-भाटा आना बीमारों के रोगों का घटना-बढ़ना एवं कवियों, भावुकों को विशेष पीड़ा/प्रसन्नता होना, वैज्ञानिक सिद्ध तथ्य हैं ही ।

जैनागम में एवं वैदिक ज्योतिष में पंच-तत्त्व जो हैं, उन्हीं के मिश्रित रूप, नवग्रह पिंड हैं । बारह राशियों, प्रसिद्ध बारह ग्रह एवं अनंत नक्षत्र-मंडल इन्हीं के मिश्रित रूप हैं । जल ही शुक्र, चन्द्र है । वायु ही शनि व गुरु ही आकाश है । अग्नि ही सूर्य मंगल और पृथ्वी ही बुधादि के रूप हैं । राशियाँ भी, तीन, सात, ग्यारह, वायु तत्त्व की द्योतक है । चार, आठ, बारह राशियाँ जल तत्त्व की द्योतक है । दो, छह, दस पृथ्वी तत्त्व की एवं एक, पाँच, नव अग्नि तत्त्व की प्रधानतालिप्त है । इस प्रकार चराचर पर इसका प्रभाव होना स्वाभाविक है । जल में ठंडक, आग से गर्मी, हवा से शान्ति, आकाश से विशालता, पृथ्वी से इच्छित ऐश्वर्य का मिलना प्रत्यक्ष सिद्ध है ।

इसी प्रकार ग्रहों, नक्षत्रों के फल स्वयंसिद्ध हैं । गणना तो उसका आधार ही है । निश्चित पूर्व घोषित समय पर चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण, चन्द्र दर्शन, सूर्योदय,

सूर्यास्त का होना, इनके फलित को सिद्ध करता ही है।

जैन आगम में ग्रह व नक्षत्र, कर्मोदय। कर्मफल के सूचक और दर्शक हैं। जिस प्रकार रेल का सिगनल गाड़ी आने का सूचक है, बिजली की कड़कड़ाहट/बादल की गड़गड़ाहट; वर्षा सूचक है, पक्षी समय सूचक है उसी प्रकार शनि दुख सूचक, शुक्र भोग सूचक, गुरु ज्ञानसूचक, बुध बुद्धिसूचक, राहु-केतु बाधासूचक, मंगल शक्तिसूचक, चन्द्र शान्ति/मन स्थिति एवं सूर्य आत्मा की बलवान/तेजोमयी/निस्तेज अवस्था का सूचक है।

जैन आर्य प्रज्ञा तन्त्रज्ञों ने प्राणियों के कल्याण के लिये ज्योतिष के सभी अंगों का विलक्षण साहित्य दिया है। जैनों के सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, विद्यानुवादपूर्व, ज्योतिष-करण्डक, आगम, तिलोयप्रज्ञप्ति के साथ साथ भद्रबाहु संहिता, केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि रिष्टसमुच्चय, अर्हच्चूड़ामणि सार, चन्द्रोन्मीलन, कालज्ञान, तिथि निश्चय, अर्हत पाशा केवली अंगविज्जा, निमित्त शास्त्र जयपाहुड आदि अनेक ग्रन्थ हमारे यहाँ उपलब्ध हैं। ये ग्रन्थ होरा, संहिता, गणित, फलित के अनेक अंगों पर विस्तृत एवं मौलिक रूप से प्रकाश डालते हैं। निमित्त ज्योतिष, स्वरशास्त्र, अंगविज्जा तो मुनियों द्वारा प्रयुक्त थे जो श्रावकों, गृहस्थों, नरेशों, श्रेष्ठियों को आकाश मेघवर्धनगर, पक्षी, जानवर एवं मौन, अंतरिक्ष, स्वर, शब्दों एवं शरीर लक्षणों से अनेक जन्म और पर्यायों का भविष्य कथन कर देते थे।

कर्मों का विपाक, फल स्थिति को धारक ही दशाएँ हैं। महादशाएँ, नक्षत्र-निसर्ग दशाएँ हैं। काललब्धि और दशाफल एक ही वस्तु है। राशियाँ भी स्वयं प्राणियों के स्वभाव के प्रतीक हैं। साहित्य में कल्पना और अलंकार को अलग करने से विशुद्ध वैज्ञानिक विवेचन आ जाता है। इसी का नाम ज्योतिष है।

सृष्टि के क्रिया-कलाप प्रायः अधिकांश; निश्चित नियत और क्रमबद्ध हैं। शरीर के अंग, शक्ति, स्थान निश्चित हैं, इसी प्रकार वस्तु का स्वभाव शक्ति, परिणमन निश्चित है। ग्रहों, पंचतत्वों का फल भी निश्चित है।

जिस प्रकार, पुद्गल- रूपवान दृश्य पंच-तत्व, दृश्य जगत की रचना करते हैं, एवं पुद्गल परमाणु एक दूसरे का उपकार भी करते हैं। उमास्वामी ने तत्वार्थसूत्र में बताया भी है। उसी प्रकार गर्मी-सर्दी/सूर्य-चन्द्र के प्रकाश, शरीर, जड़, चेतन जगत पर प्रभाव डालते हैं।

जैन गणित में अभिजित से कालगणनादि का विवेचन मौलिक है। गणित पर भी जैनों की देन और कार्य, अलग से चर्चा, अनुसंधान और विवेचन की अपेक्षा रखता है।

श्वेताम्बर शास्त्र वीर- सिंहावलोकन में आचार्य ने तो प्रत्येक प्राणी को जन्म नक्षत्रानुसार रोग, उनका समय ही नहीं अपितु उनकी जड़ी-बूटी जो उन्हें निरोग करेगी, इस पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

- उग्रादित्य की 'कल्याणकारक' ... वाग्भट्ट की 'गद्यावली' - जैन आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ है । कल्याणकारक आयुर्वेद में जैनों के योगदान को अमर कर रहा है ।

- पूर्वाचार्य रचित 'जयपाहुण' में मुहूर्त, निमित्त के अचूक अद्भुत नुस्खे हैं ।

- मुनि जिनविजयजी द्वारा संपादित अनुवादित 'अंगविज्जा' में शरीरांगों और आकृतियों से प्राणी के भविष्य और शुभाशुभ तथा स्वभाव, लक्षण, का विस्तृत गहन और सूक्ष्म विश्लेषण है ।

- 'ज्योतिष्करण्डक' जैन ग्रन्थ की महिमा सम्पूर्ण भारत के ज्योतिषियों ने स्वीकार कर ली है ।

- 'करलक्खण' - हस्तरेखा पर वैज्ञानिक विवेचन देकर सामुद्रिक शास्त्र में अपनी महत्ता, सिद्ध कर चुका है । कैरो और बेनहम से भी उसमें अधिक, मौलिकता और प्रमाणित सूत्र हैं ।

- 'हस्त संजीवनी' - (संस्कृत-गुजराती) दोनों हाथ की लकीरों पर से कुण्डली निर्माण और जातक के भूत-भविष्य का कथन करने के साथ, ग्रह-स्थिति, लग्न आदि का गंभीर विस्तृत विवेचन तो करता ही है, स्त्री-पुरुषों के शरीरांगों के फल पर भी विस्तृत प्रकाश डालता है ।

- आचार्य दुर्गदेव का 'रिष्ट समुच्चय' जो पंडित नाथूलालजी ने ही डा० स्वर्गीय नेमीचन्द्रजी से संपादित कर गोधा ग्रन्थमाला, इन्दौर से प्रकाशित कराया है, भविष्य के सभी अरिष्ट, हानिप्रद और दुखद घटनाओं का अद्भुत शास्त्र है । इसमें व्यक्ति, समाज, राष्ट्र-देश, पृथ्वी पर कब क्या घटेगा - विस्तार से है, मेदिनीय ज्योतिष पर यह महत्वपूर्ण कृति है ।

- 'लघुपाराशरी' का मंगलाचरण परमेष्ठी को नमन करता है । मानसागरी तो जैन ज्योतिष का ग्रन्थ है, इसमें आदिनाथ, पार्श्वनाथ को नमनपूर्वक ही ग्रन्थ रचना एवं फल-विवेचन किया गया है ।

- 'नरपतिजयचर्या' में राजाओं की विजय यात्रा और उसके लिये मुहूर्तादि के साथ भविष्य के अनेक संकेत हैं ।

- भद्रबाहुसंहिता - में अष्टांग निमित्तों का जितना सूक्ष्म विस्तृत गहन विवेचन है, 'वाराही संहिता' और 'बृहद् पाराशर होरा' में भी वह नहीं है । इसमें स्वप्न, भौम, अंतरिक्ष, गंधर्वनगर के अतिरिक्त मेघ, उल्का, पशु-पक्षी, पृथ्वी समुद्रादि के क्रिया कलापों से, भविष्य के लिये अद्भुत सत्य कथन है । ये तथ्य जैन तपस्वी, आचार्यों की साधना व प्रकृति निरीक्षण के समन्वय की यशोगाथा गाते हैं ।

- समयसार - पर आरा के स्वर्गीय डा० नेमीचन्द्रजी ने अनेकों लेख लिखे हैं

जिनमें उसकी मौलिकता प्रतिपादित थी ।

- रणबीर ज्योति निबंध - (काश्मीर नरेश के लिये) तत्कालीन उपलब्ध सर्व ज्योतिष - ग्रन्थों का निचोड़/सार तत्व, उपस्थित करने में अपनी सानी नहीं रखता ।

- 'प्रश्नाकर' 'प्रश्नलग्न' 'आय ज्ञान तिलक' - ग्रन्थों में प्रश्न शास्त्र के विषय हैं जिनमें केरल ज्योतिष से, कहीं अधिक ऊँचाइयों को स्पर्श किया है ।

- अर्हच्चूड़ामणिसार - में भद्रबाहु ने तो जैन ज्योतिष के मूर्धन्य स्वरूप को सिद्ध करने में अक्षर-सम्पूर्ण अर्थों को प्रस्तुत कर दिया है एवं करतल में समस्त लोक उपस्थित कर दिये हैं ।

- नरचंद - का 'ज्योतिष प्रकाश'

- 'अर्घकांड '- तेजी-मंदी और व्यापार - ज्योतिष का प्रसिद्ध जैन शास्त्र है ।

- महावीराचार्य का - 'ज्योतिष पटल' भी प्रकाश में आ गया है ।

- 'त्रैलोक्यदीपक' - में ग्रहों, राशियों, नक्षत्रों और प्रश्न के संबंध को चौपड के दृष्टांत से सप्रमाण, सरल एवं सरस रूप दे दिया गया है ।

- भट्टवोसरी के 'आय ज्ञान तिलक' में भी - हानि लाभ - शुभाशुभ का सूक्ष्म एवं तात्विक वर्णन है ।

- श्रीधराचार्य का - 'ज्योतिर्ज्ञान - निधि' ने अपनी महत्ता सिद्ध कर दी है ।

- 'आरंभसिद्धि' - हेमहंसगणि का - मुहूर्तशास्त्र पर मौलिक ग्रन्थ है । इसमें लगभग 300 पृष्ठों में ' मुहूर्त' पर विस्तृत विवेचन किया गया है ।

- मुनि चंद्रसेन का -'केवलज्ञान होरा' - जन्मदाता कहा जा सकता है
वर्तमान; भविष्य-कथन प्रणाली का ।

- विद्याविजयजी के ' वर्ष-प्रबोध' में वर्षफल की कुछ नूतन विधियाँ हैं, जो गणित, फलित के दोनों रूपों पर कुछ मौलिक प्रकाश डालती हैं ।

- सकलकीर्ति मुनि का 'पाशा केवलि' - रमल शास्त्र का प्रतिनिधित्व करती है ।

- आचार्य तिलकविजय की रचना ' 'भविष्यज्ञान' - जैन ज्योतिष की प्रामाणिकता पर तत्त्व-प्रणाली पर जैमिनी पद्धति का शास्त्र है ।

- पद्म प्रभुसूरि का ' भुवन दीपक' तो जब से प्रकाशित हुआ है, देश विदेश के ज्योतिषी विद्वानों ने उसके सिद्धांतों और भविष्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है ।

- मतिसागर का 'विद्यानुवाद' भी पुस्तकालयों में हस्तलिखित रूप में है ।

- कुंथुविजय ग्रंथमाला का 'लघु विद्यानुवाद' छप चुका है ।

मूल कर्म-प्रकृति आठ हैं । ग्रह भी सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध गुरु, शुक्र, शनि केतु आठ ही हैं । साता-असाता से; वेदनीय के दो भेद हैं । राहु केतु से वे, नवग्रह

या नवप्रकृति ही नवग्रह ।· नवप्रकृति के संदर्भ में, अद्भुत अनुसंधान एवं विचार मंथन हेतु जैमिनी-सूत्र में भरपूर सामग्री उपलब्ध है ।

- 'जैमिनी सूत्र' - जो तत्वधारा की ही; फलित-ज्योतिष की, दक्षिण-भारतीय धारा की एवम् जिस पर अब केवल आयु के संबंध में विचार किया जाता है, उस दृष्टि को विवेचनापूर्ण एवं वैज्ञानिक सिद्ध किया जा सकता है ।

अशुभ कर्मोदय के लिए - जिनेन्द्र, पंच परमेष्ठी, चौबीस तीर्थंकर, सिद्धचक्र विधान, पूजन का भी निर्देश इसलिए है, कि शुभाचरण के द्वारा अशुभोदय को शांत किया जा सके । शांति-आराधना के लिए कविवर मनसुखसागरजी कृत 'नवग्रह अरिष्ट विधान' - उत्तम रचना है ।

हमारे भविष्य के पुण्य संचरण हेतु आचार्यों ने दान, व्रतादि का आदेश दिया है व देशना की है ।

- प्रारब्ध अर्थात् पूर्व-जन्म के कर्मों का फल ।

- संचित - अनेक जन्मों के कर्मों का फल ।

उपरोक्त कर्मफलों को तप, व्रत, गुप्ति, ध्यान द्वारा

सकाम-निर्जरा, अकामनिर्जरा द्वारा भस्म/भुक्तमान करने के कथन है - जैन ग्रन्थों में ।

क्रियमाण - वर्तमान कर्मफलों को भी शांत/शमन किया जा सकता है ।

प्रायश्चित, विनय, शुद्धि, दान, प्रभावना, वात्सल्य एवं क्षमा द्वारा जैनाचार्यों ने, चारों अनुयोगों के शास्त्रों में, वैज्ञानिक - विधि और निर्देश यथास्थान निर्देशित किया है ।

आगमों में, विद्यानुवाद पूर्व, सूर्य प्रज्ञप्ति; चन्द्र प्रज्ञप्ति के मूल ग्रन्थों और संहिता, स्वर, निमित्त, हस्त, प्रश्न, पाशा, शकुन, गणित ग्रंथों के अतिरिक्त, आचार्य शांतिसागर, आचार्य महावीरकीर्ति एवम् वर्तमान में आचार्य विमलसागरजी, विद्यानंद जी महाराज, पूज्य कानजी स्वामी, भट्टारकजी एवं श्री माणिकचन्द जैन, की, देश में अद्भुत प्रशंसा है ।

वर्तमान समय में स्व० डा० नेमीचन्द्र के 'भारतीय ज्योतिष', 'भाग्यफल', रिष्ट समुच्चय, करलक्खण, केवलज्ञान प्रश्नचूड़ामणि, भद्रबाहु संहितादि - मौलिक ग्रंथ ।

- डा० राजाराम जैन के - तेजी मंदी और व्यापार पर, ग्रन्थ,

- आचार्य अजीता जैन के - अंग्रेजी एवं मराठी में, मेदिनी एवं सायण पद्धति के ग्रन्थ,

- कन्नड़ के मराठी लेखक - आठवें की बीस कृतियों, जो प्रत्येक ग्रह; दशा,

फल, प्रश्न, (सूर्य विद्या, चंद्र विद्या, राहु केत्वादि विद्या) और अध्यात्म ज्योतिष पर प्रकाश डालती है ।

- दिल्ली के श्री माणिकचंद जैन के लगभग बारह ग्रंथ - प्रायः सभी अंग्रेजी में,

- ब्यावर राजस्थान के श्री मेहता का, 'तेजी-मंदी' फलित ज्योतिष के विभिन्न अंगों की पुष्टि और सिद्ध करते हैं ।

लखनऊ के प्रज्ञाचक्षु भगत् अग्रवाल श्री धनपालसिंह, पंक्तियों का लेखक अजित शास्त्री पं० नाथूलाल जी तथा उपस्थित बाहुबलि शास्त्रीजी एवं कई प्राध्यापक बंधु भी इन विषयों पर अपने मौलिक अध्ययन और अनुभव रखते हैं, जो प्रकाशनीय है ।

मैंने उल्लेख विशेष दि० जैन साहित्य में प्राप्त ग्रन्थों का किया है । श्वेताम्बर ग्रन्थालयों, राजस्थान ग्रंथागारों एवं मुनियों, यतियों के पास इसका विशद भंडार उपलब्ध है । जिस पर ध्यान देना और उन्हें प्रकाश में लाना ही जैन ज्योतिष विद्या की प्रभावनाओं को जनजन में जागृत कर सकेगा । इति ।

भाषण : परिशिष्ट

ओंकारबिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ।।

भर्तृहरि ने नीतिशतक में कहा है 'अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।'

आप सभी विशेषज्ञ हैं । इसलिए मैं पिष्टपेषण नहीं करूँगा । मुझे जीवन में जो उपलब्ध हुआ है वह मैं आपके सामने यहाँ प्रस्तुत करूँगा । एक व्यक्ति भी यहाँ उपस्थित, यदि मुझे निर्देश करेगा, कि कुछ संभावनाएँ आप में है तो मैं उस चीज को आगे बढ़ाऊँगा ।

यह जो आपके सामने यन्त्र चल रहे हैं यदि विद्युत फ्यूज हो जाए तो ट्रेन, ये रौशनी, ये स्पीकर ये सारी गतिविधियाँ समाप्त हो जायेंगी । टेलीविजन बन्द हो जाएगा । ये आकाशवाणी बन्द हो जाएगी । ये हीटर ये रेफरीजेटर, ये पंखे सब बन्द हो जायेंगे । अर्थात् होल फैक्ट्री जो है समाप्त हो जाएगी । उसी प्रकार से यह जो अक्षयकुमार जैन है, यह एक यन्त्र है । इसके अन्दर मुँह आकाशवाणी है । आँखें टेलीविजन है । कान टेलीफोन है । पेट और विसर्जन संस्थान ये हीटर रेफरीजेटर हैं । ये तन्त्र हैं । अक्षय कुमार जैन जो वह इन सबका कम्पोजीशन है । तन्त्र है और इस यन्त्र को इस तन्त्र को

जो बलाने वाली शक्ति है वह मन्त्र है ।

मन्त्र के ध्वनि आदि विभिन्न रूप हैं । मैं प्राध्यापक हूँ । महाविद्यालय में प्रात. पहुँचा । सुनाई पड़ा - नमस्ते सर, नमस्ते सर, नमस्ते सर .... पांच छात्र यही वाक्य प्रयोग में लायें । पहला नमस्ते सर कोमल था । इसने जल तत्व का चित्र बनाया और सम्मोहन किया । दूसरा नमस्ते सर कुछ विकृत था उसने वायु तत्व का चित्र बनाकर वशीकरण किया । तीसरे ने नमस्ते सर तीव्र कठोर स्वर में था उसने उच्चाटन किया । चौथे ने चीखकर नमस्ते सर बोला । और विद्वेषण जागृत कर शत्रुभाव पैदा किया । पाँचवें ने नमस्ते सर कर्कश क्रूर ध्वनि में बोलकर अग्नि तत्व जागृत किया । और वैरभाव तथा मारण शक्ति पैदा की जिसके लिए मन में आया कि मैं उससे बदला लूँ । एक ही शब्द है । एक ही वाक्य है । वही ध्वनि, तरंग आरोह, अवरोह की दृष्टि से वशीकरण, सम्मोहन, मारण और तारण बन जाता है ।

दूसरा उदाहरण । मैं कक्षा में उपस्थित हुआ । छात्रों ने कहा - छुट्टी होना चाहिए 'मैंने कहा सभी बैंच पर खड़े हो जाइये । आप सभी सस्पेंड तीन दिन तक कक्षा में नहीं आ सकते । सभी प्रोफसरों ने कहा - 'छुट्टी होना चाहिए ।' प्राचार्य ने बुलाया और फाइल के अन्दर लिख दिया ये डिसटरबिंग एलोमेन्ट हैं । प्राचार्यों ने कहा - 'छुट्टी होना चाहिए ।' प्रस्ताव सुनकर डायरेक्टर ने उन सबके ट्रांसफर कर दिये । सारे के सारे मंत्रियों ने कहा कि 'छुट्टी होना चाहिए । सुनकर सारे सदन में तालियाँ बज गई प्रधानमंत्री ने कहा - 'छुट्टी होना चाहिए ।' और सारे देश में छुट्टी घोषित हो एक ही वाक्य है एक ही बात है । किन्तु एक व्यक्ति सस्पेण्ड होता है, दूसरे का ट्रांसफर होता है, तीसरे की फाइल खराब होती है, चौथे पर तालियाँ बजती हैं और पाँचवें पर पूरे देश की छुट्टी हो जाती है ।

एक वाक्य है दोपहर 1। से 4 के बीच में हाईकोर्ट की न्याय कुर्सी पर एक जज बोलता है - 'पाँच साल की सजा दो हजार जुर्माना, और वह हो जाता है । किन्तु यदि यही बात यही अभयकुमार जैन कहे तो उसका कोई अर्थ नहीं होता । न्यायाधीश के शब्द आपके जीवन और जगत को बदल देते हैं। शब्द उसकी शक्ति, और उसका स्थान इनका विशेष महत्त्व है मंत्र में । मुहम्मद साहब कहते हैं -कुरानशरीफ में - 'मैं सबसे मिलता हूँ । सबकी सुनता हूँ । सबकी उचित फरियाद मंजूर होती है किन्तु उसका समय है रात्रि की 3 से 5 । क्योंकि इस समय अन्तरिक्ष शान्त होता है । हमारी बात डेढ मिनिट के अन्दर सारे ब्रह्माण्ड में गूँज जाती है । ठीक उसी तरह से जिस तरह से टेलीफोन के नम्बर से एकव्यक्ति की दूसरे व्यक्ति से बात होती है। इसी प्रकार बीजाक्षर

द्योतक है । शुद्ध अनाहत ओंकार ध्वनि तुरीय चौथी मोक्ष अवस्था की सूचक है । बाइबिल में लिखा है इन द बिगिनिंग इज वाज वर्ड - गोड - जी. ओ. डी. जी - फार जेनेरेटर, ब्रह्मा । ओ फार आरगेनाइजर - विष्णु । डी - फार डिस्ट्रक्टर - महेश । यही तीन उत्पाद, व्यय और धौव्य है । द्रव्य के स्वरूप हैं । सत् है । सृष्टि रूप है ।

ओम् का यह सारी ध्वनियों का, सारे अक्षरों का, सारे बीजाक्षरों का, संसार की सारी भाषाओं का जनक है और मन्त्र राज है । समय बहुत कम है । इंग्लिश में एक कहावत है - यदि आप दाँतों से, होठों से बोलते हैं तो यू बार्कलाइक डाग्ज - तुम कुत्तों की तरह भौंकते हो । यदि संगीत की ध्वनि में गले से गाते हो - तो 'यू सिंग लाइक कुक्कू ' तुम एक कोयल की तरह केवल कूकते हो । और यदि आत्मा से, मन से, प्राणों से श्वांस और शुद्ध भाव से यदि अनहद नाद निकालते हो तो पवित्र ध्वनि को महासत्ता सुनती है । वह स्वीकार की जाती है प्रभु के द्वारा । सभी शास्त्रों और संतों की आज्ञा है कि प्रातःकाल में उषावेला में जो आपके हृदय से पवित्र मानसिक उपांशु और वाचिक ध्वनि निकलती है, वह मंत्ररूप में होती है । उसे देवता, प्रभु और इष्ट सुनता है और भावुक भक्त को भावशुद्धि के अनुसार फल देता है ।

मेरे जीवन में जो मैं बोल रहा हूं, यह कहीं स्कूल, कालेज में पढा नहीं है। मेरे पास मंत्र या तंत्र या ज्योतिष शास्त्र की कोई डिग्री नहीं है किन्तु 30 वर्षों में अधिकतर जिसको जो कुछ कहा, ठीक उतरा । मंत्र की शक्ति का रहस्य मैं आपको समझाता हूं । मानतुंगाचार्य भक्तांबर में पवित्र भाव से कहते हैं - अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम - । 'तथा तुल्यभवन्ति भवतो ननुतेन किंवा - तो सारे ताले टूट जाते हैं । वे बन्धनमुक्त हो जाते हैं । समन्त भद्राचार्य प्रभु की स्तुति करते हुए जब चन्द्रप्रभु की प्रार्थना में तल्लीन कहते हैं 'चन्द्रप्रभु चन्द्र मरीचि गौरं — । तो शिवपिण्डी के टुकड़े होकर तीर्थंकर चन्द्रप्रभु की प्रतिमा प्रकट हो जाती है । सती मैना सुन्दरी जब शुद्ध भावों से सिद्धचक्रमण्डल पूजा, विधान करके जल छिड़कती है तो उसके कोढी, कुष्ठी पति का सारा शरीर सुन्दर और निरोग हो जाता है । ये सामान्य चीजें हैं, जो आप सभी को ज्ञात है । यह जो ध्वनि है । यह शब्द की मूल शक्ति है । इससे उर्जा का जागरण होता है । उर्जा से तत्व बनता है । तत्व जल पृथ्वी, अग्नि, वायु और आकाश रूप 5 प्रकार के हैं । मंत्र की उर्जाशक्ति इन्हीं 5 तत्वों का निर्माण करती है और वे ही स्वभाव अनुसार फल देते हैं । फ्रांस के अन्दर जो मनोचिकित्सक हैं, वे संगीत के द्वारा रात्रि को टेप की ध्वनि सुनाकर रोगियों को ठीक कर देते हैं । प्रार्थना चिकित्सा क्या है ? केवल शब्द, मंत्र और भावना का चमत्कार ही तो है । हमारा संगीत, ध्वनि, भजन, कीर्तन, पूजन, प्रार्थना, स्तोत्र ये सब क्या है ? केवल मंत्र और शब्द शक्ति के ही रूपांतर है ।

आज संसार के कई आविष्कारक वैज्ञानिक और ज्ञानवान पुरुष रात्रि को जहर खाकर क्यों मर जाते हैं ? मस्तिष्क, ज्ञान, बुद्धि और भावुक हृदय साहित्यक कहते हैं - 'संसार बदल देंगे - दुनिया बदल देंगे ।' लेकिन दिवाली के दिन उनकी पत्नी कहती है - कविजी 'संसार बदल दोगे दुनिया बदल दोगे', 'साल भर तो हो गया अपना पायजामा मेरी साड़ी और मुन्ने की कमीज नहीं बदल पाये ।' देहातों, गांवों और खेतों में 95 प्रतिशत काम करने वाले मजदूर किसान कर्मवीर दु:खी क्यों है ? इन सबके दु:ख का कारण क्या है ? मैं यह बताना चाहता हूं कि जब तक हम यह नहीं समझेंगे कि मनुष्य क्या है ? तब तक मनुष्य की मानवता की और संसार की समस्याएं हल नहीं होंगी । मनुष्य न तो मस्तिष्क है, और न हृदय है और न ही शरीर है । वह तो इन तीनों का समन्वित पुतला है । हार्ट, हैड और हैन्ड इन तीनों का एक रूप है । तीनों के समन्वय से पूरा मनुष्य बनता है । तीनों की त्रिवेणी मानव जीवन को सुखी और सफल बना सकती है। जिसे ही जैन तीर्थंकरों ने सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र कहा है । तीनों एक साथ ही सफलता का, सिद्धि का, मुक्ति का और आनन्द का मार्ग बनते हैं किन्तु आज सारा संसार दो हिस्सों में बटा है । शहरों के सारे जीव, सारे मनुष्य, जो है, ज्योतिष की भाषा में केतु हैं । गांवों के, देहातों के सारे मनुष्य राहु हैं । एक तरफ शहरी मनुष्यों के पास केवल चतुराई, चालाकी, धूर्तता और बुद्धिबल है तो दूसरी ओर गांवों, देहातों में केवल अज्ञानपूर्वक की हुई शक्त मेहनत, मजदूरी है । जिसमें विचार और स्किल नहीं है, ऐसे हमारे देहात हैं । जहां केवल चातुर्य है, ऐसे शहर है । एक तरफ केवल धड़ है । एक तरफ केवल सिर है । लकवा मार गया है, सारी मानवता को । आचार है, तो विचार नहीं । विचार है, तो आचार नहीं है । यह एकांगी, अधूरा दर्शन ही दु:ख का कारण है । सारा यूरोप, सारा पश्चिम भौतिकवादी है, और कहता है कि यह दृश्य जगत और शरीर ही सब कुछ है । आज जो मैं अक्षयकुमार जैन आपके समक्ष आत्मस्वरूप होकर बोल रहा हूं, इसमें से यह आत्मा यदि पृथक् हो जाय तो या जो शिव है, एक क्षण में मात्र शव या लाश हो जायेगा । हमको मानव जाति को और समूची धरा को यह सोचना है और मानना है कि मनुष्य, आत्मा और शरीर दोनों है । महावीर कहते हैं, मैं सबको सफलता सिद्धि, आनन्द, सुख और शान्ति का मार्ग बताता हूं । वे कहते हैं कि ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग तीनों की त्रिवेणी और एकात्मता ही प्रत्येक प्राणी के सुख, सिद्धि, सफलता, आनन्द और मोक्ष का मार्ग बन सकती है । यही रत्नत्रयकी त्रिवेणी आत्मा से कर्मों को दूर कर, नर से नारायण आत्मा से परमात्मा, पुरुष से पुरुषोत्तम बनादेगी और यही त्रिवेणी तुम्हें स्वास्थ्य, धन, भोग, सांसारिक व्यापार और जीवन में सफलता दे सकेगी । परीक्षा में थ्योरी और प्रेक्टिकल दोनों का समन्वय चाहिए । तभी पूरी सफलता मिल

सकती है । इसी प्रकार हृदय में विश्वास, मस्तिष्क में ज्ञान और शरीर में क्रियाशीलता हमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुख सिद्धि और सफलता दे सकती है । स्वामी समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में धर्म का यही स्वरूप बताया है । वे कहते हैं - जो संसार के प्राणी मात्र को दुखों से निकाल कर उत्तम सुख में पहुँचाता है, जो इस लोक और परलोक में सुख-शान्ति देता है, जो जीव मात्र का बन्धु है, वही धर्म है । मैं थोड़ा सा ... तंत्र की ओर आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ । हमारे शरीर का जो ऊपरी अंग सिर है, इसमें ऊपर बाल है, भीतर मस्तिष्क है, इसकी आकृति नारियल के समान है । नारियल के द्वारा आप खोपरे को खाकर दिमागी ताकत और उसके तेल से बालों को सजा और सुन्दर कर सकते हैं । आँखों में यदि रोग और कमजोरी है तो आँखों की शक्ल के पदार्थ बादाम, काजू, बेर, मूँगफली, कालीमिर्च, धनिया सेवन कीजिए आँखों की सभी परेशानियाँ दूर होंगी, शिव के ऊपर बेलपत्र क्यों चढ़ाते हैं । लिंग में, इंद्रिय में कोई खराबी हो, बेलपत्र का सेवन कीजिए, मधुमेह, प्रमेह, डायबिटीज को आराम मिलेगा । लंग्स और हार्ट में खराबी हो तो पाँच पीपल के पत्ते नीती सेवन कीजिए आपको हृदय और फेफड़ों के रोग दूर होंगे । बम्बई की एक बीमारी कई जगह पहुँची थी । आँखें लाल और दर्द से सूजने लगी थी । आपको मालूम है । होम्योपैथी की किस दवा ने ठीक किया ? वनस्पति जिसकी शक्ल आँखों जैसी थी, उस फूल का अर्क रोगी को दिया गया और आँखें ठीक हो गईं । मैं कहता हूँ, प्रकृति केप्रत्येक पत्ते पर प्रत्येक फूल पर, प्रत्येक फल पर नाम, प्रभाव और गुण लिखा हुआ है । आवश्यकता है, हम लुकमान, हकीम और वैद्य, धन्वन्तरि की तरह शुद्ध हृदय से प्रकृति की जड़ी-बूटियों का निरीक्षण, परीक्षण कर उपयोग करें । वज्रदन्ती दाँतों को वज्र बना देती है । अनार के दाने और भुट्टे के दाने आपके दाँतों और मसूड़ों को निरोग कर देते हैं । ये तंत्र की ओर इशारा था । अब बहुत संक्षेप में मुख्य विषय अपने ज्योतिषशास्त्र की कुछ बातें बताऊँगा । ज्योतिष ज्योति का, प्रकाश का, तरंगों का और उनके प्रभाव और शक्ति का शास्त्र है । अल्फा, बीटा, डेल्टा, गामा, आदि तरंगों के वैज्ञानिकों ने प्रभाव सिद्ध कर दिए हैं। आपको मालूम है, आँख आई है, जिसकी, उसको और मत देखिए । अगर देखेंगे तो आपकी आँखों में जलन, दर्द और आँसू आ जायेंगे । एक बालक पर कुदृष्टि (नजर) क्यों लग जाती है ? यदि रजस्वला महिला अशुद्धभाव से पापड़, बड़ी, अचार और मुरब्बे को देख ले, छू ले तो वे खराब क्यों हो जाते हैं ? जिस समय गर्भवती सर्प को देखती है तो साँप की आँखों में फैलुली और अंधापन क्यों आ जाता है ? यह सब दृष्टि दोष नजर और आँख की किरणों का प्रभाव है । मैं बतला रहा हूँ कि सूर्य का, चन्द्र का, सितारों का, नक्षत्रों का और प्रकाश किरणों का जो प्रभाव है, और उनकी जो वैज्ञानिक व्याख्या है, उसी का नाम ज्योतिषशास्त्र है ।

निश्चित समय पर सूर्य उगता है, चाँद रात को उदित होता है, ठीक निश्चित तारीख, समय पर सूर्यग्रहण, चन्द्र ग्रहण क्यों होते हैं, इन सबके वैज्ञानिक कारण, प्रभाव और फल है।

अग्नि राशि और धन, मेष राशि का व्यक्ति पानी में जाते ही तालाब, कुँए या समुद्र में डूबकर क्यों मर जाता है? क्योंकि अग्नि का पानी में जाकर बुझ जाना स्वाभाविक है। एक बालक छोटी उम्र का कई दिन तक समुद्र में तैरता रहा। प्रतियोगिता जीती। समुद्र पार किया। मैंने उसकी पत्रिका मँगाई। क्या देखा? जन्म, जल तत्व मीन राशि और मीन लग्न में है। अधिकतर ग्रह जल नक्षत्रों में थे। अतः उस बालक का पानी पर तैरना स्वाभाविक था। अब जरा राशि फल की ओर ध्यान दीजिए।

उदाहरण के लिए कुम्भ राशि लीजिए। कुम्भ यानि घड़ा। आप नहीं जानते इस घड़े में पानी है, दूध है, जहर है, अमृत है, यह घड़ा खाली है। इसी प्रकार कुम्भ मनुष्यों के बारे में आप कभी भी अधिकारपूर्वक कुछ नहीं कह सकते, उनका जीवन रहस्यपूर्ण होता है। कुम्भ की शादी विवाह, मंगल कार्यों में रखते हैं। घड़ा गले में रस्सी फसाकर कुँए से जल भरकर सबको पिलाता है। इस राशि के लोग मानवता और समाज सेवा के लिए अपना समय और शक्ति नष्ट करते हैं। ये राशियाँ संकेत हैं। इन सबके पीछे वैज्ञानिक अध्ययन, निरीक्षण और संतों की साधना और तपस्या का फल है। पूर्णमासी के दिन ज्वार-भाटा आता है। उस दिन पागल और बीमार अधिक कष्ट पाते हैं। कवि, लेखक, उत्तम कल्पना और साहित्य रचना करते हैं। शरीर के अन्दर 75 प्रतिशत पानी और 25 प्रतिशत पृथ्वी तत्व है। यही भूगोल का सार है। सृष्टि की रचना है, इसी से समानान्तर मनुष्य का शरीर है, इसलिए चन्द्र राशि का फल और राशि फल प्रायः माना जाता है और अधिकांश ठीक भी उतरता है। यह सब अब वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है।

ये ग्रह क्या हैं? ये कर्मों के सूचक हैं। घड़ी बता देती है कि समय क्या है। रेल आने का समय सिगनल बता देता है। बादलों की गरज और बिजली की चमक वर्षा की सूचना दे देते हैं। उसी प्रकार शनि दुख का सूचक है। शुक्र सूचना देता है कि शादी-विवाह कब होगा। गुरु बता देता है कि ज्ञान कैसे, कब मिलेगा। मंगल बता देता है कि क्रोध से झगड़ा-विवाद युद्ध होगा। ये जो ग्रह हैं - घटनाओं के द्योतक हैं। उन्हीं को बतलाने वाले कर्म हैं। जैन दृष्टि से आठ कर्म हैं। वेदनीय के दो भेद कर दीजिए। साता और असाता तो नौ हो जायेंगे और यही नवग्रह के सूचक समझ लीजिए। सारा का सारा जैन ज्योतिष कर्मों के फल का सूचना देने वाला है।

मेरी ओर ध्यान से देखिए जो श्वास लेता हूँ। यह शनि है। जो आँखें हैं,

यही सूर्य और चन्द्र हैं । कान गुरु है । ओंठ शुक्र है । शरीर और चमड़ी बुध है । पाँच तत्वों का मिश्रण जो है उसी का रूपांतर ये नौ ग्रह हैं । आप पृथ्वी में जल को डालिए और बीज डालिए, वृक्ष उत्पन्न हो जाता है । इसी प्रकार से शरीर में वात, पित्त, कफ समान होने पर शरीर स्वस्थ रहेगा । यदि शरीर में जल और वायु अधिक हो गई अर्थात् शनि और चन्द्र इकट्ठे हो गये तो कफ, शीत, श्वांस, खांसी और निमोनिया हो जायेगा । जैनाचार्य वीरसिंह ने वीरसिंहावलोकन शास्त्र में लिखा है कि किस प्राणी को किस नक्षत्र में जन्म लेने पर क्या रोग होगा । कब तक रहेगा और किस औषधि से लाभ होगा । आपके हाथ में क्या है । हथेली में जो रेखाएं हैं । इट इज जस्ट लाइक ए फिटिंग जैसा ही है यह । फिटिंग रहा किन्तु फ्यूज उड़ गया तो लाइट नहीं जलेगी । रेखाएँ वही होती हैं किन्तु एक दिन में सुबह सिंहासन और शाम को जेलयात्रा होती है । उसका कारण है कि आसमान से बिजलीघर ने लाइट या गृह की रोशनी सुबह दी थी शाम को नहीं दी । गृह उदित हो जाता है तो रेखा फल देने लग जाती है । उसीप्रकार से सब गृहों का फल पंचांग में निश्चित निर्देश किया जाता है ।

जैनाचार्य जंगल में बैठे-बैठे आसमान में फैले बादलों की आकृतियों के गंधर्वनगर देखकर तथा पक्षियों के शकुन और स्वर तथा पशुओं के क्रिया-कलाप को देखकर अनेक पूर्व जन्मों का फल और भविष्य कथन कर देते थे । मौन प्रश्नों के उत्तर भी देते थे । सिग्नेचर आफ् दि नेचर अर्थात् प्रकृति के कण-कण पर आपका भविष्य लिखा हुआ है जिसे साधक और जिज्ञासु जान लेते हैं । जैन वह है जो मस्तिष्क में स्याद्वाद और अनेकान्त के विचार रखता है । हृदय में शुद्ध अहिंसा प्रेम की भावना रखता है और शरीर से अपरिग्रहवादी है । न्यायी अभक्ष का त्यागी, व्यसनों का त्यागी, देवशास्त्र गुरु, मंदिर, तीर्थ, भक्त और अभक्ष का त्यागी है । पीछे ध्वनि सुनाई दे रही है । मेरी काललब्धि समाप्त होने का इशारा है । गुरुअन्तर समाप्त होकर बाधक राहु शुरु होने को है अतः अब आप से क्षमा चाहता हूँ । आपने मेरी बातों को शान्ति, प्रेम, धैर्यपूर्वक सुना और मेरा उत्साह बढ़ाया उसके लिए धन्यवाद । ओम् शान्ति, ओम् शान्ति, ओम् शान्ति ।

जैन मंत्रशास्त्र (क)

- पं. बाहुबली पार्श्वनाथ उपाध्ये, बम्बई

मंगलाचरण -

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।

आकृष्टिं सुरसंपदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यतां ।
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम् ।।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं ।
पायात्पंच नमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता

यह णमोकार मन्त्र देवों की विभूति और सम्पत्ति को आकृष्ट कर देने वाला है, मुक्तिरूपी लक्ष्मी को वश करनेवाला है, चतुर्गति में होने वाले सभी तरह के कष्ट और विपत्तियों को दूर करने वाला है, आत्मा के समस्त पाप को भस्म करने वाला है, दुर्गति को रोकने वाला है, मोह को मोहित करने वाला है, इस तरह यह णमोकार मंत्र रूप आराधना देवता हम सबकी रक्षा करें ।

मंत्र शास्त्रों में शान्तिक, पौष्टिक, वश्य, आकर्षण, इत्यादि कर्मों का जो वर्णन है वह सब शक्तियाँ केवल इस णमोकार मंत्र में निहित है इसलिए यह मंत्र तीन लोक के सारभूत मंत्र है । आज विषय जैन मंत्र शास्त्र है ।

मंत्र शब्द की निरुक्ति इस प्रकार है । मंत्र शब्द में दो अक्षर है । पहला मं और दूसरा 'त्र' है । मं का अर्थ है मनसे संबंधित रखने वाली मनोकामना और 'त्र' का अर्थ है रक्षा करना । मनोकामना की रक्षा करें सो मंत्र -
'म' कारं च मनः प्रोक्तः 'त्र' कार त्राण उच्यते । मनसस्त्राण योगेन 'मंत्र' इत्यभिधीयते ।

अब दूसरी तरह से इसकी व्युत्पत्ती इस प्रकार है - मन्त्र शब्द 'मन्' धातु (दिवादि ज्ञाने) से ष्ट्रन् (त्र) प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है । इसका व्युत्पत्ती के अनुसार 'मन्यते ज्ञायते आत्मादेशोऽनेन इति मन्त्रः अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा का आदेश याने आत्मानुभव जाना जाए । वह मन्त्र है । तीसरी तरह से मन्यते विचार्यते आत्मादेशो येन सः मन्त्रः । अर्थात् जिसके द्वारा आत्म देश पर विचार किया जाय वह मन्त्र है ।

अब इस णमोकार मंत्र के बारें में कहा जाय तो यह सार्वजनिक, सार्वकालिक मंत्र है । इस मंत्र का जाप कोई भी कराकर अपना कल्याण करा सकता है । 'अपवित्रः

पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा । ध्यायेत्पंच नमस्कारं सर्व पापैः प्रमुच्यते । प... हो, अपवित्र हो, सुस्थित हो, दुःस्थित हो जो कोई इस नमस्कार मंत्र को ध्याता है ... सर्व पापों से मुक्त होता है ।

वादिराज मुनि अपने एकीभाव स्तोत्र में कहते हैं -

प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः । पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि ...

कः संदेहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वं । जल्पं जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कार...

हे जिनो । मरण के समय जीवन्धरकुमार के द्वारा उपदेश दिये गये आपके इस णमोकार मंत्र के प्रभाव से पाप रूप आचरण करने वाला कुत्ता भी देवलोक सम्बन्धी सुख को प्राप्त करता है तो फिर आपके नमस्कार मंत्र का निर्मल मणियों की जाप के द्वारा जो जाप करता है वह सौधर्मादि इन्द्रों की लक्ष्मी के वैभव की प्राप्ति करता है इसमें क्या संदेह है ।

आचार्य वादिभसिंह कहते है - 'परलोकार्थगत्याय पंचमन्त्रमुपादिशत् । निर्वाणपथपान्थानां पाथेयं तद्धि किम्परैः' (4-8) जिस प्रकार पथिक को यात्रा में कलेवा (नाश्ता) सहायक है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करने वालों को णमोकार मन्त्र भी पथ्य सहायक है । जलकर मरते हुए नाग नागिन को भ. पार्श्वनाथ ने महामन्त्र दिया जिसके प्रभाव से वह नागयुगल धरणेन्द्र पद्मावती यक्ष यक्षी वन गये ।

किसी ने कहा है - अमन्त्रं अक्षरं नास्ति नास्ति मूल मनौषधं । अयोग्यो पुरुषः नास्ति योजक स्तत्र दुर्लभ । ऐसा कोई एक अक्षर नहीं जो मंत्र नहीं वन सके, ऐसी कोई वनस्पति नहीं जो दवा नहीं वन सकती । ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिनमें कोई गुण न हो लेकिन दुर्लभ है इन सबका शोध करने वाला व्यक्ति । शब्द में भी असीम शक्ति है । लोकमान्य तिलक ने कहा 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है ' इस राजकीय मंत्र से परतंत्र भारतवासियों के दिल में 'स्वातंत्र्य आंदोलन की भावना जाग गई । महात्मा गांधीजी ने कहा 'क्विट इंडिया' 'भारत छोड़ो' तो भारतवासियों के मन में ग्रेट ब्रिटेन के प्रति तिरस्कार की भावना पैदा होगई । ढाई हजार वर्ष पहले भगवान् महावीर ने कहा 'अहिंसा परमो धर्मः तब प्रत्येक प्राणिमात्र के बारे में दया का संचार हुआ । भारत माता की जय' बोलने से अपने राष्ट्र के प्रति वात्सल्यभाव प्रगट होते हैं इन शब्दों से जैसे मानवों में हलचल पैदा होती है उसी तरह मन्त्रों में भी असंख्य शक्तियाँ निहित है । जैनाचार्यों ने लोक हित के अनेक ग्रन्थ लिखे हैं ।

शब्द भी पुद्गल पर्याय है । इसमें भी स्पर्श-रस गंध और वर्ण गुण है। जैन दर्शन में शब्द को मूर्तिक माना । तभी आजकल टेपरेकार्ड वन रहे हैं । पूर्वाचार्यों ने इस प्रकार विचार, मनन, चिन्तन और अनुभव से अनेक मंत्र-ग्रन्थ लिखे हैं । मूलविद्या

नामक एक मंत्र शास्त्र है । उनमें 'अ' से लेकर 'ह' तक वर्णमातृकाका ध्यान करने के लिए कहा है । उनमें कुछ इस प्रकार है -

'अ' कार चन्द्रकान्ताभं सर्वज्ञं विश्वयोनिकम् । सर्व सिद्धिकरं ध्यायेत्समर्थं बहु कर्मसु
'अ' कार चन्द्रकान्त मणि के समान वर्णवाला, सर्वज्ञ विश्वयोनि और सर्वसिद्धि दायक है । 'आ' कार श्वेतवर्णं तु सर्व विश्ववशंकरं । विश्वस्य स्वामिनं ध्यायेत् समर्थं सर्व कर्मसु । आकार श्वेतवर्णवाला, सर्व विश्व को वश करने वाला, विश्व का स्वामी इस तरह चिंतन करने को ओंकारं पंचवर्णं तु परमात्मस्वरूपकम् । सर्वाभिवादं ध्यायेत् समर्थं बहु कर्मसु । ओंकार श्वेत, पीत, हरित, अरुण और कृष्णवर्णात्मक है, परमात्मस्वरूपी है इत्यादि ॐकार को प्रणव कहते हैं, प्र+नव = प्रणवः प्राणात् सर्वान् परमात्मनि प्रणामयति इति एतस्मात् प्रणवः । सम्पूर्ण प्राणों को परमात्मा के सम्मुख नतमौलि करने में सहायक है इसे प्रणव कहते हैं । अथवा नवो नवो भवति जायमानः - जो कभी जीर्ण नहीं होता प्रत्युत प्रतिक्षण नवीन, नवीनतर, नवीनतम होता रहता है । ॐकार का ध्यान योगीजन नित्य करते हैं । इस मंत्र को कामद, मोक्षद कहा है ।

अक्षरात्मक मंत्रजाप को पदस्थध्यान कहते हैं, शुभयोग से शुभध्यान होता है । इस विषय में 35-6-2 पर कहा है- मंत्र और वर्णों आदि के ध्यान से योगी क्षय, अरुचि, मन्दाग्नि, कोढ़, उदररोग, खाँसी और श्वास (दमा) आदि रोगों पर विजय प्राप्त होता है । तथा अनुपम वचन महात्म्य के साथ महापुरुषों द्वारा की जाने वाली पूजा को व परलोक में श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा प्राप्त की गयी गति को स्वर्ग-मोक्ष को भी प्राप्त होता है ।

इन मंत्रों के बारे में उमास्वामीकृत पंचनमस्कार मंत्र महात्म्य में बहुत सुंदर ढ़ग से कहा है ,

जग्मुर्जिनास्तदपवर्ग पदं तदैव । विश्वं वराकमिदमत्र कथं विनास्मात्
तत्सर्वलोक भुवनोद्धरणाय धीरै । मन्त्रात्मकं जिनवपुर्निहितं तदत्र ।।

जिनेन्द्र देव तो तभी मोक्ष में चले गये । तो फिर यह विश्व बिचारा बिना जिनेन्द्रों के किस प्रकार ठहरा हुआ है ? हाँ, समझ में आया धीर व्यक्तियों ने संपूर्ण लोकों एवं भुवनों के उद्धार के लिए यहाँ पर जिनेन्द्र भगवान् का मंत्रात्मक शरीर रख दिया है ।

अब मंत्र साधनमार्ग पर विचार करना है -

तुंबी के फल में दूध रखा जाय तो वह कड़ुआ ही जायेगा । इसलिए मंत्रजाप साधना के लिए योग्य पात्र की आवश्यकता है । अंतरंग परिणाम और बहिरंग क्रिया शुद्धि साधनशुचिता की परम आवश्यकता आद्यकर्तव्य है । मन्त्रों की यथाविधि साधना से लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार के कार्य सिद्ध होते हैं । विद्यानुवाद मन्त्र

विषयक महासागर है । इस विषय पर पूर्वाचार्यों ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं और आज भी इस मन्त्रविषयक, अनुभवी हितोपकारी आचार्य मौजूद हैं । यह हमारा परम सौभाग्य है । किताबों में मंत्र छपे हैं तो भी मंत्रविधि जानने वाले गुरु से अवश्य पूछना चाहिए जिससे कि संदेह न रहे । विद्यानुवाद में कहा है - मंत्रो गुरूपदिष्टः स्यात् सफल सादिह पुस्तके ।

लिखितस्तो पि गुरोराम्नाय्यमेव न च स्वयं ।।

मंत्र सिद्ध करने वाले को मंत्री कहते हैं उसका भी लक्षण कहते हैं ।

शुचिः प्रसन्नः गुरुदेव भक्तो दृढव्रतः सत्य दया समेतः

दक्षः पटुर्बीज पदावधारी मन्त्री भवेदीदृश एवलोके ।।

जो बाह्याभ्यंतर शुद्ध है, प्रसन्न है, देव-गुरु शास्त्र भक्त है, दृढव्रती है, सत्यवादी, दयावान्, चतुर, बीज मंत्रों का शुद्ध उच्चार करने वाला । ऐसा व्यक्ति ही मंत्राराधना में सफलता प्राप्त कर सकता है । सबसे पहले मंत्र शुद्ध चाहिए क्योंकि 'नहि मन्त्रोक्षरन्यूनो निहंति विषवेदनाम्' मन्त्राक्षर न्यूनाधिक नहीं होना चाहिए ।

षट्खंडागम के प्रथम खंड की श्रीधवलादि सिद्धान्तों के प्रकाश में अनेक जा इतिहास दिया है वहीं पृष्ठ 17 पर जो बात लिखी है वह बहुत ही महत्वपूर्ण है । 'जब महिमा नगरी में सम्मिलित यति संघ को धरसेनाचार्य का पत्र मिला तब उन्होंने श्रुत रक्षा संबंधी उनके अभिप्राय को समझकर अपने संघ में से दो साधु चुने जो विद्याग्रहण करने और स्मरण रखने में समर्थ थे । जो अत्यंत विनयशील थे, शीलवान् थे, जिनका देश, कुल और जाति शुद्ध था और जो समस्त कलाओं में पारंगत थे । उन दोनों को धरसेनाचार्य के पास गिरनार भेज दिया । धरसेनाचार्य ने उनकी परीक्षा ली, एक को अधिकाक्षरी और दूसरे को हीनाक्षरी विद्या बताकर उनसे उन्होंने षष्ठोपवाससे सिद्ध करने को कहा । जब विद्याएं सिद्ध हुई तो एक बड़े बड़े दांतवाली और दूसरी कानी देवी के रूप में प्रकट हुई । उन्हें देखकर चतुर साधकों ने जान लिया कि उनके मंत्रों में कुछ त्रुटि है । उन्होंने विचारपूर्वक उनके अधिक और हीन अक्षरों की कमीपेशी करके पुनः साधना की, जिससे देवियाँ अपने स्वाभाविक सौम्य रूप में प्रकट हुईं । उनकी इस कुशलता से गुरु ने जान लिया कि ये सिद्धान्त सिखाने के योग्य पात्र हैं । फिर उन्हें क्रम से सब सिद्धान्त पढ़ा दिया ।

मंत्र की सफलता स्वप्न निमित्त से भी जान सकते हैं । पं. आशाधर सूरि ने प्रतिष्ठा सारोद्धार में कहा है 'मुनि, गाय, आदि देखे तो गुरु है । इसी तरह स्त्री, सूर्य, चन्द्र, पूर्ण कलश, पुष्पमाला, पुष्पों से फलों से भरा हुआ वृक्ष, समुद्र, ध्वज, अश्व, जिनबिंब, शासनदेवता इत्यादि शुभ स्वप्नों से मंत्रसिद्धि निश्चित रूप से हो जायेगी । ऐसा समझना चाहिए क्योंकि 'अस्वप्नपूर्वं हि जीवानां नहि जातु शुभाशुभं'

जीवों का जो शुभाशुभ है प्रायः शुभाशुभ स्वप्नपूर्वक ही होता है ।

शतपथ ब्राह्मण में 3/1/10 में कहा है 'स वै न सर्वेणेव संवदेत । देवान् वा एष उपावर्तते यो दीक्षते स देवतानामेको भवति । न वै देवाः सर्वेणेव संवदन्ते'

विशेषव्रत अनुष्ठान परायण व्यक्ति को सबके साथ वार्तालाप नहीं करना चाहिए । क्योंकि दीक्षित अवस्था में वह देवों के समीप रहता है । उन्हीं में से फिर एक के समान होता है । देव सबके साथ वार्ता नहीं किया करते ।

ज्योतिष शास्त्र दृष्टया प्रथम मंत्र जाप के लिए अनुकूल समय, जिसको योग कहते हैं या इन सब प्राथमिक तैयारी के साथ, त्रिकरण शुद्धि, ईर्यापथ शुद्धि, भूमिशुद्धि, पात्रशुद्धि, आसनशुद्धि अमृतस्नान, करन्यास, अंगन्यास, कूटाक्षर न्यास, आत्मरक्षा मंत्र, परविद्याछेदन मंत्र, अरिष्ट नेमिमंत्र, दिग्बंधन इत्यादि क्रियाओं से मंत्र जाप की पूर्व पीठिका तैयार होती है । बाद में मंत्र जाप किया जाता है । साधक को इस तरह विधिपूर्वक जाप करने से कोई विघ्न बाधा नहीं आती । इस बारे में कहा है 'इत्थं सदैव सकलीकरणं यथावत् । संभाव्यस्य यमशैअमलैध्य शक्तिः

भूतोरगादि विष विस्विष दु.खमुग्रं । निर्जित्य निश्चयसुखान्यनुभूयतोमसौ ।

हर जैन मंत्र प्रभावशाली हितकारक इहपर में सुख देने वाला है । गणधर वलय मंत्र के बारे में जिन संहिता परिच्छेद 80 में कहा है -

नित्यं यो गणभृन्मंत्र विशुद्ध सन् जप त्ययमुं । आस्रव तस्य पुण्यानां निर्जरा पाप कर्मणां

न स्यात् दुपद्रव. कंचित् व्याधिभूत विषादिभिः । सद सद्वीक्षणे स्वप्ने समाधिस्त्व भवेन्मृतौ ।।

जो विशुद्ध होकर इस गणधर वलय णमो जिणाणं, णमो ओहि जिणाणं इत्यादि मंत्रों का जाप करता है उसको पुण्य का आस्रव होता है, पाप कर्म की निर्जरा होती है, कोई व्याधि, भूत विष उसका उपद्रव नहीं होता, शुभाशुभ स्वप्न में देखते हैं और समाधिपूर्वक मृत्यु होती है ।

मंत्र शास्त्र और उनकी पारंपरिक क्रिया न जानने से कितने ही लोक अनर्थों के वश हो गए हैं । और विधिपूर्वक इसका उपयोग करने से अनेक लाभ भी हुए हैं इस बारे में मैं अपनी 2-3 निजी अनुभव कहता हूं - जयपुर निवासी धर्मानुरागी श्रीमान् मोहनलाल सौगाणी जी की महावीरजी क्षेत्र के 20-25साल मंत्री थे इनके घर अनेक वर्षों से आग लगती थी । कीमती वस्तु जलकर खाक होती थी । पूज्य गुरु विद्यानंद मुनि महाराज को आशीर्वाद से इस कार्य की जिम्मेदारी ले ली, मंत्रीजी के जयपुर

मकान में पाँच दिन तक जाप-पूजा शांति हवन विधि की । उसी दिन से वह उपद्रव बन्द हो गया । अब दूसरा उदाहरण मेरठ निवासी धर्मानुरागी श्रीमान् मूलचंद जैन और उनके वह पार्टनर। उनकी आक्सीजन फैक्ट्री हर गुरुवार को ही बंद होती थी । दो साल यह चक्कर था । वह भी पूजापाठ से बंद हो गई । अब तीसरी घटना । दिल्ली में पहाड़ी धीरज में अपने जैनी भाई की दुकान की बंद तिजोरी से हड्डी निकलती थी । इससे उनको बहुत ही नुकसान, बीमारी, नाना प्रकार के झगड़े हो रहे थे । वह भी इस शांति क्रिया से बंद हो गई । ऐसे अनेक उदाहरण हैं । यह मैं अपने ... लिए नहीं कह रहा हूँ कि जैन मंत्र विधियों में कितनी अचिंत्य शक्ति है । आखिर ... किसलिए है । दुःखियों के दुःख दूर हो जाए, वह सुखी बनें इसलिए ।

भगवत् जिनसेनाचार्य ने आदिपुराण प... 40 पद्य ... में ... है ।

'मन्त्रोद्धारं क्रियासिद्धिः मन्त्राधीना हि योगिनाम् ।

मुनियों की कार्यसिद्धि भी मंत्रों के अधीन है ।

पंचाध्यायीकार ने वात्सल्य अंग के प्रसंग से एक खास बात और लिखी है -

यदा नह्यात्मसामर्थ्यं यावन्मन्त्रासिकोशकं । तावद्दृष्टं च श्रोतुं च तद्बाधां सहते न सः ।

यदि अपने में सामर्थ्य नहीं है किन्तु जब तक मन्त्र, तलवार और धन है तब तक वह सम्यग्दृष्टि जिनबिम्बादिक के उपसर्ग को न देख सकता है न सुन ही सकता है । मंत्रों में भी सिद्ध और साधित मंत्र होते हैं ।

सिद्धे पठिते मंत्रो - मूलाचार 6-39 आचार्य कुन्दकुन्द

पठन मात्र से जो मंत्र सिद्ध होता है उसको पठित सिद्ध मंत्र कहते हैं । जैसे चक्रेश्वरी स्तोत्र के और चक्रेश्वरी मंत्र के अन्त में कहा है -

यः स्तोत्रं मंत्रम्यं पठति निजमनो भक्तिपूर्वं शृणोति ।

त्रैलोक्यं तस्य वश्यं भवति बुधजनो वाञ्छितं च दिव्यम् ।।

ज्वालामालिनी - अर्थं पठति संसिद्धः श्री ज्वालिन्यधि दैवतः

मालामंत्रः प्रजप्याद्यैः ग्रहरोग विषादिहरत् ।।

साधित मंत्र - विज्जा साधित सिद्धा । मूलाचार 457 पृ0 180

जो साधने से सिद्ध हो वह साधित विद्या याने साधित मंत्र ।

उदाहरण के लिए - अष्टसाहस्रिको जाप्यः कार्यस्तत्सिद्धि हेतवे -

ऋषिमण्डल स्तोत्र कार्य सिद्धि के लिए ... हजार जाप करना चाहिए । इसी प्रकार कलिकुंड, भक्तामर, गणधर वलय, सिद्धचक्र इत्यादि साधित मंत्र है ।

यंत्र मंत्र तंत्र यह सब विद्यानुवाद के अंगभूत विषय है । श्रीमान

आशाधर सूरी ने इन कार्यों की सिद्धि के लिए अपने जिनेन्द्रपूजा पाठ में कहा है -
यागमंडलभूमिशुद्ध्यर्थं, द्रव्यशुद्ध्यर्थं, पात्र शुद्ध्यर्थं, क्रियाशुद्ध्यर्थं मंत्रशुद्ध्यर्थं, महाशांति
कर्मसिद्धि साधन यंत्र-मंत्र-तंत्र विद्या अभाव संसिद्ध निमित्त विधीयमानस्य प्रारंभे पुण्याह वाच
करिष्ये ' इन यंत्र-मंत्र-तंत्र के अभाव सिद्धि के लिए प्रारम्भतः पुण्याह वाचनको प्रस्थान
किया है ।'

अब तंत्र के बारे में सोचना है क्योंकि यह भी महत्वपूर्ण अंग है । मंत्र का
क्रियात्मक रूप ही तंत्र है । साधू के पास मोर पिच्छी रहने से उनके पास प्रायः कभी भी
सर्प नहीं आते । पिच्छी का उपयोग-मंत्र लक्षण शास्त्र में कहा है -

छत्रार्थं चामरार्थं च रक्षार्थं सर्व देहिनाम् । यंत्र मंत्रप्रसिद्ध्यर्थं पचैते पिच्छिलक्षणम् ।

पिच्छी में पाँच लक्षण माने है, पिच्छी चामर भी है, छत्र भी है, यंत्र भी है
और मंत्र की प्रसिद्धि के लिए इसका व्यवहार किया जाता है । सम्पूर्ण प्राणियों की रक्षा
भी करता है । इसलिए दया का उपकरण भी है । कर्नाटक के सुप्रसिद्ध कवि रत्नाकर
कहते हैं - सिहं नास्ति भटाकि सिंहवर्न पाडलगजं वेर्दुग ।

सिंहाकार पर्न किसल नरर वेन्तोल हस्तरोगं हरं ।।

शेर नहीं होते हुए भी शेर जैसे आवाज करने से शत्रु सेना के हाथी भयभीत
होकर भागते हैं । जिनको हस्ति रोग हुआ है उनके पीठ पर शेर का चित्र अंकित करने
से वह हस्तिरोग नष्ट होता है । यह सब तंत्र विद्या है । खेत में फसल नष्ट न हो जाय
इसलिए कृतक मानव को बनाके रखते हैं । नई वस्तु बनाते वक्त काला खिलौना लटकाते
हैं, बच्चे को नजर न लग जाए इस उद्देश्य से गाल पर काला तिलक लगाते हैं, नाना
रत्नों की अंगुठियाँ पहनते हैं, अचेतन पदार्थों में भी विचित्र शक्तियाँ है । लक्ष्मी और
सरस्वती के फोटो सामने - सामने लगाओ तो घर में लड़ाई झगड़े शुरु हो जायेंगे ।
मुरदे का फोटो, श्मशान में बनाया स्मारक का फोटो, भगवान के फोटो पर धूल का
जम जाना ये सब अशांति के कारण है ।

यथा निश्चेतना चिंतामणि कल्पमहीरुहाः कृतपुण्यानुसारेण तदभीष्टफलप्रदाः
तथार्हदादयास्वास्त रागद्वेष प्रवृत्तयः । भक्त भक्त्यनुसारेण स्वर्ग मोक्षफलप्रदा ।
जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न और कल्पवृक्ष यद्यपि अचेतन है तथापि साधक के संचित
पुण्य परिणाम के अनुसार तत् तदभीप्सित फलों को प्रदान करते हैं वैसे ही भगवान
अर्हन्त परमेष्ठि तथा सिद्ध परमात्मा रागद्वेष पराङ्मुख है तथापि भक्त की भक्ति के
अनुसार स्वर्ग और मोक्ष का प्रदाता है ।

सिद्धार्थ पुण्ण कुंभो वंदणमाला य मंगलच्छत्तं - षट्खण्डागम ।

षट्खण्डागम में सिद्धार्थ माने पीली सरसों, जलसभरा कुंभ, वंदनमाला छत्र

इत्यादि को व्यवहार में मंगल माना है, मंत्रसिद्धि में सिद्धार्ई को विशेष प्राधान्य है। इसी तरह मण्डल बनाना, होम-हवन इत्यादि सब तंत्र है।

अब यंत्र के बारे में सोचना है।

श्री ऋषिमंडल कल्प में कहा है ' स्वर्णरूप्येऽयपणा कांस्ये लिखित्वा यस्तु पूजयेत् । तस्यैवाष्ट-महासिद्धिर्गृहे वसति शाश्वति ।।

ऋषिमंडलादि यंत्र को सुवर्ण, चाँदी या कांस्य के पत्र पर खुदवाकर विधिवत् पूजने से घर में हमेशा वांछित अर्थ की महान सिद्धि होती है।

मोहनजोदारो तथा सिंधु सभ्यता पाकिस्तान के लारकाना जिले में है। उत्खनन में जो अनेक वस्तु मिले हैं उसमें 1922 में पाँच हजार साल पहले का एक तावीज मिला है। स्व0 बनर्जी के अध्यक्षता में उसका उत्खनन हुआ है पृ0 59 पर वे लिखते हैं -

प्राचीन काल के सभी देशों के लोगों का तावीज में विश्वास था किन्तु जैसे जैसे मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करता गया इन तावीजों की महत्ता भी घटती गई। फिर भी तावीजों पर विश्वास अभी संसार से नहीं उठा है। आज दिन भी यूरोप, अरब तथा मिश्र देश के निवासियों का तावीज पर बड़ा विश्वास है।

ऋषिमंडल स्तोत्र में कहा है 'भूर्जपत्रे लिखित्वेदं गलके मूर्ध्नि वा भुजे। धारितं सर्वदा दिव्यं सर्वभीति विनाशन '। महाकवि कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के 7वें अंक में दुष्यन्त पुत्र सर्वदमन के बारे में तावीज को रक्षाकरण्ड कहा है और रघुवंश सर्ग 16 पद्य 74 में तावीज को 'जयश्रियः वलयः कहा है।

पिछले साल में इंदूर के गोमटगिरि में कुछ अशांति हुई तब पूज्य आचार्य विमलसागर महाराज जी और पू. एलाचार्य विद्यानंद मुनिश्री ने उस अशांति को मिटाने के लिए कुछ गोपनीय मंत्र तंत्र का उपाय बताकर वहाँ भेजा। वहाँ जाकर संहितासूरि पं. नाथूलालजी शास्त्री और अन्य शास्त्री जी ने मिलकर 7 दिन का एक कार्यक्रम बनाया और उस अशांति को पूर्णतः मिटाकर शांति स्थापित की गई। षट्खण्डागम पृ0 41 पर कहा है -

> विघ्नाः प्रणश्यन्ति भयं जातु न दुष्टदेवाः परिलङ्घयन्ति
> अर्थान्यथेष्टांश्च सदा लभन्ते जिनोत्तमानां परिकीर्तनेन ।।

जिनेन्द्र देव के गुणों का कीर्तन करने से विघ्न नाश को प्राप्त होते हैं। कभी भी भय नहीं होता है। दुष्ट देवता आक्रमण नहीं कर सकते हैं और निरन्तर यथेष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है।

जैन मंत्र शास्त्र पर बोलने के लिए मुझे मौका दे दिया। अगर बोलने में भूल-चूक हो गई हो तो विद्वज्जन क्षमा करें। मैं भारतीय ज्ञानपीठ के अध्यक्ष धर्मानुरागी श्रीमान् साहू श्रेयांसप्रसादजी तथा आ. शान्तिसागर स्मारक मैनेजिंग ट्रस्टी धर्मानुरागी श्रीमान्

चाँदमल मेहता जी के प्रति कृतज्ञ हूँ, ऋणी हूँ । जिनेश्वर के पास और साधु संघ के सामने प्रार्थना करता हूँ । जिनेश्वर आपको दीर्घायु- आरोग्य ऐश्वर्य देवे ।

जैन ज्योतिष

मंगलाचरण -

> श्रियं क्रियात्तीर्थनाथः नवल-कैवल-लब्धिमान् ।
> यस्य बोधाम्बुधे द्रोणिरिवाभाति जगत्त्रयी ।। जिनेन्द्रमाला प्रश्नशास्त्र

> श्रीमदनंत-चतुष्टय-धाम-जित-दुरित-समिति-नैश्रेयस
> लक्ष्मी-मन्दिरं त्रैलोक्यस्वामि-जिनं मालके नमगे शाश्वतपदमं ।। जातकतिलक

1. नवकेवल लब्धी से युक्त भगवान् महावीर तीर्थंकर परमदेव के केवलज्ञानरूप महासागर में यह त्रैलोक्य छोटी नाव के समान भासता है वह तीर्थनाथ अंतरंग और बहिरंग संपत्ति को देवे ।

2. ज्ञानावरणादि घातिकर्म को जीतकर जिन्होंने अनंत चतुष्टय की प्राप्ति की है । निःश्रेयस लक्ष्मी सहित जो तीन लोक का स्वामी है ऐसे जिनेन्द्र हमें शाश्वत पद-मुक्ति देवें ।

पहला जो मंगलाचरण है जिनेन्द्र माला प्रश्न ज्योतिष (शास्त्र) ग्रन्थ का है । प्रश्नशास्त्र पर अपूर्व ग्रन्थ है । 1910 में चामराज नगर के निवासी पं. पद्मराज शास्त्री जी ने कन्नड़ में प्रथम बार छपाया है ।

दूसरा मंगलाचरण श्रीधराचार्यकृत जातक तिलक का है । इनका समय ग्रन्थकर्ता ने शकवर्ष 971 (विक्रम सं. 1049) विरोधी नाम संवत्सर मार्गशीर्षमास कृष्ण चतुर्थी गुरु पुष्य नक्षत्र में ग्रन्थ लिखकर समाप्त हुआ ऐसा लिखा है ।

प्राणी मात्र को सुख-दुःख, रोग-नीरोग, दरिद्र-श्रीमंत इत्यादि अनेक अवस्थायें प्राप्त होती है । इस बारे में अलग-अलग लोगों की विचारधारायें है ।

> वैद्या वदन्ति कफ-पित्त-मलदि विकारान् ।
> ज्योतिर्विदो ग्रह-गतिं परिकल्पयन्ति ।।
> भूतोपदिष्ट इति भूतविदो वदन्ति ।
> प्राचीन- कर्म बलवन् मुनयो वदन्ति ।।

एक किसी बीमार आदमी के लिए वैद्य कहते त्रिदोष दूषित से ये बीमार है, ज्योतिषी कहते है अमुक-अमुक ग्रह दोष से बीमारी आ गई है । भूतविद् कहते है इसको

8. स्वप्न

1. अंतरिक्ष निमित्त से सूर्य-चन्द्र मंगल आदि ग्रहों का भ्रमण हो रहा है इससे व्यक्ति को, राष्ट्र को क्या-क्या फल मिलेगा इत्यादि वर्णन है । इस वक्त शनिग्रह कन्या राशि में है । सिंह-कन्या और तुला इन राशी वालों को कोई न कोई ज्यादा तकलीफें होती रहती हैं । अब 5 अक्टूबर को शनिग्रह कन्या राशि से हटकर तुला राशि में प्रवेश कर रहा है । इससे सिंह राशि वालों को कुछ राहत मिलेगी । पिछले $7\frac{1}{2}$ साल से जो जो समस्यायें थीं, वे धीरे-धीरे हल होती जायेंगी ।

2. भौमनिमित - भूमि के स्थान भेद से हानि वृद्धि कहना, घर, खेत, बाग इत्यादि दक्षिण भाग में ऊंचो होने से सुख की अभिवृद्धि कारक, उत्तरभाग में ऊंचो होने से हानिकारक, चूहा वगैरा पिशाच भाग में बिल निकाला तो लाभदायक, मध्य में बिल निकाला तो हानिकारक, घर में छत्राकार वनस्पति पैदा होने से हानिकारक इत्यादि निमित्तों को भौम निमित्त ।

3. अंगनिमित्त - मनुष्य अपने किस अंग को स्पर्श करता है इस पर से हानि, लाभ कहना ।

4. स्वरनिमित्त - मनुष्य, पशु, पक्षी वगैरा के विचित्र शब्द सुनकर कालमय में होने वाले शुभाशुभ कहना ।

5. व्यंजननिमित्त - सिर, मुख, हस्त, पाद इत्यादि अवयवों पर उत्पन्न नाना चिन्हों से आगे के सुख, दुःख कहना, लाभालाभ कहना ।

6. लक्षणनिमित्त - हस्त सामुद्रिक देखकर भविष्य कहना ।

7. छिन्न निमित्त - वस्त्र, आयुधा आदि कोने पड़े हुए छेद से भविष्य जानना ।

8. स्वप्न निमित्त - पड़े हुए स्वप्न से आगे का भविष्य जानना ।

इस तरह यह शास्त्र भी अपार है ।

नेमिचन्द्र प्रतिष्ठा पाठ में जातक शास्त्र का एक श्लोक आया है ।

सूर्यः शौर्यगुणं, शशीकुशलतां, सन्मंगलं मंगलो ।

बुद्धिं तत्त्वबुधां बुधो वितरताज्जीवः शुभं जीवनम् ।।

शुक्रः शुक्लतरं यशोति विमलं मन्दोप्य मन्दश्रियं

राहुर्बाहुबलं महार्धमहितः केतुर्महो-केतुताम् ।।

सूरज शौर्यगुण का, चंद कौशल्य, मंगल-कल्याणकारण, बुध तत्त्वज्ञान, बृहस्पति शुभजीवन, शुक्र - निष्कलंक यश, शनि अमंदलक्ष्मी, राहु-बाहुबल और केतु उत्कृष्ट कीर्ति देने वाले हैं ।

इन ग्रहों से आगे का अनिष्ट या अशुभ मालूम पड़ता है । तब पूजा-दान, व्रत-उपवास, जप-जाप्य, तीर्थयात्रा, कलिकुंड- सिद्धचक्र, ऋषिमंडल, भक्तामर, गणधरवलय,

ऊपर की हवा लग गई है । और पुनिलोक कहते है इनका पूर्व कर्म का उदय है । इस तरह भिन्न भिन्न अभिप्राय हो सकते है ।

श्रीधराचार्य जातक तिलक के कर्ता जैन संस्कृति में पले हुए थे । वे अपने जातक तिलक में कहते है -

भववद्ध शुभाशुभ कर्म विपाकद फलमनुकुपुगं ज्योतिर्ज्ञानि विदंतेने कत्तलेमने ।
य वस्तु वं तोर्प सोडर दीलगिन तिलिदं ।।

ज्योतिर्ज्ञान अंधेरायुक्त घर में किसी वस्तु को दिखाने के लिए दीपक के प्रकाश के समान पूर्व जन्म में किए हुए पुण्य-पाप कर्मानुसार इस जन्म में उसका फल क्या मिलेगा ये कहनेवाला निमित्त ज्ञान मात्र है ।

इसी बात को वराहमिहिराचार्य बृहज्जातक के तीसरे पद्य में 'होरा' शब्द की व्याख्या कहते कहा है -

होरेत्यहोरात्र-विकल्पमेके वान्छन्ति पूर्वापर-वर्णलोपात्
कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पंक्तिं समभिव्यनक्ति ।।

कितने आचार्य अहोरात्र का विकल्प होरा कहते है । अर्थात् अहोरात्र इस पद के पूर्व का अक्षर (अ) और अन्त का अक्षर (त्र) इन दोनों अक्षरों को लोप करने से मध्य में शेष 'होरा' ये दो अक्षर रह जाते हैं । दिन और रात्रि में होने के कारण 'होरा' लग्न का नाम है । वह होरा (लग्न) पूर्व जन्म में अर्जित शुभ और अशुभ कर्मों के को प्रकाशित करता है ।

इसी बात को अमृतचंद्राचार्य समयसार के बंधाधिकार में कहते है -

सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय
कर्मोदयान्मरण जीवनदुःख सौख्यम्
अज्ञानमेतदिह यत्तु पर: परस्य
कुर्यात् पुमान् मरण-जीवित-दुःख सौख्यम् ।।

इस लोक में जीवों के जो मरण जीवन दुःख और सुख होते है वे सब स्वकीय स्वकीय कर्मों के उदय से होते है - ऐसा होने पर भी जो ऐसा मानते हैं कि परके द्वारा परके जीवन मरण दुःख और सुख होते है, यह सब अज्ञान है ।

जैन ज्योतिष की प्राचीनता के बारे में ज्योतिषाचार्य डा. नेमिचन्द्र शास्त्री - केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि - भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित ग्रन्थ की प्रस्तावना में लिखते है जैन ज्योतिष की प्राचीनता उनकी नक्षत्र गणना से भी सिद्ध होती है । प्राचीनकाल में कृत्तिका से नक्षत्र गणना की जाती थी, पर मेरा विचार है कि अभिजित् वाली नक्षत्र गणना कृत्तिकावाली गणना से प्राचीन है - जैन संवत्सर प्रणाली को देखने से प्रतीत होता है कि

इसका प्रयोग प्राचीन भारत में ई.पू. दस शताब्दी से भी पहले था। षट्खण्डागम धवला टीका में रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, दैत्य वैरोचन, वैश्वदेव, अभिजित् रोहण, बल, विजय, नैऋत्य, वारुण, अर्यमन और भाग्य ये पन्द्रह मुहूर्त आये हैं। मुहूर्तों की नामावली टीकाकार की अपनी नहीं है। उन्होंने पूर्व परंपरा से प्राप्त श्लोकों को उद्धृत किया है। अतः मुहूर्त चर्चा पर्याप्त प्राचीन प्रतीत सिद्ध होती है।

भारतीय ज्योतिष का शृंखलाबद्ध इतिहास हमें आर्यभट्ट के (4 शतक) समय से मिलता है। पृ० 78 पर वे लिखते हैं 'आर्यभट्ट ने भी जैन युग की उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी सम्बन्धी कालगणना को स्वीकार किया है। आर्यभट्ट के निम्न श्लोक से यह बात स्पष्ट है -

उत्सर्पिणी-युगार्धं पश्चादवसर्पिणी-युगार्धं च।

मध्ये युगस्य सुषमा आदावन्ते च दुःषमा न्यंसात्॥

आर्यभट्ट की संख्या गणना भी जैनाचार्यों की संख्या गणना के समान ही है। प्राचीन जैन शास्त्रों के बारे में इतिहास देखने से जैनाचार्यों के सैकड़ों ग्रन्थ हैं। जैसे सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, ज्योतिष करण्ड, अंगविज्जा, गणिविज्जा, मण्डलप्रवेश, गणितसार संग्रह, गणितसूत्र, व्यवहारगणित, जैनगणितसूत्र, त्रैविद्यमुनिकृत- सिद्धांत शिरोमणि, गणितशास्त्र, गणितसार, जोइसार, पन्चांगनयनविधि इष्टतिथिसारिणी, केवलज्ञान होरा जिनेन्द्रमाला, जातकतिलक, आर्यज्ञानतिलक रिष्टसमुच्चय, भद्रबाहुसंहिता, वसुनन्दिसंहिता, नक्षत्र चूड़ामणि, शास्त्रसार समुच्चय माघनन्दीकृत, तिलोयपण्णति इत्यादि।

जैन ज्योतिष भी गणित और फलित इस तरह दो भागों में बंटा हुआ है। पूज्यपादकृत ज्योतिर्गणित कर्नाटक के पंडितजी के पास उनका नाम पं. धरणेन्द्रकुमार है। उस गणित से उन्होंने 20-25 साल पहले कन्नड में अहिंसापंचांग नाम की एक पत्री बनाई थी लेकिन समाज की तरफ से कोई सहाय न मिलने से वह आगे निकाला नहीं। फल ज्योतिष में श्रीधराचार्य कृत 'जातक तिलक' एक अपूर्व ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ को सन् 1959 में प्राच्य विद्या संशोधनालय मैसूर विश्वविद्यालय से 403 पृष्ठ का कन्नड़ में प्रकाशित हुआ है।

तिलोयपण्णती ग्रंथ में नक्षत्र गणना 28 मानी है। नक्षत्रों की तारा संख्या में भी भिन्नता है तथा नक्षत्रों के आकारों में भी भिन्नता कही गयी है। ग्रहों की संख्या अठासी बताई गयी है। आजकल जो हर्षल, नेपच्यून और प्लूटो इन तीन ग्रहों की संख्या बढ़कर 9 ग्रह के बजाय 18 ग्रह होगई है। ये तीन ग्रह तिलोयपण्णती के अनुसार अठासी ग्रहों में से कोई भी हो सकते हैं। जिनेन्द्रमाला में निमित्त आठ प्रकार के माने हैं - "अंतरिक्षं भौममंगं स्वरोव्यंजन लक्षणे, छिन्नं स्वप्नं निमित्तं प्रोक्तमष्टांगं पूर्वसूरिभिः"

1. अंतरिक्ष 2. भौम 3. अंग 4. स्वर 5. व्यंजन 6. लक्षण 7. छिन्न और

ग्रहशान्तिप्रआराधना करने से अशुभ कर्म शांत होते हैं और शुभफल मिलते है ।

अष्टाष्टक स्तोत्र में कहा है ।

अद्यसौम्याग्रहाः सर्वे शुभाश्चैकादश स्थिता

नष्टानि विघ्न जालानि जिनेन्द्र तवदर्शनात् ।।

हे जिनेन्द्र आपके दर्शन से मेरे सब ग्रह सौम्य होकर एकादश स्थान पर रहे है और मेरे सब विघ्नजाल नष्ट हो गए ।

एकादशस्थान को लाभस्थान कहते हुए उस स्थान पर कोई भी ग्रह आ जाये तो आगे अपना लाभ है ऐसे समझना ।

जातक तिलक में कहा है प्रव्रज्या योग होने पर शनि ग्रह की स्थिति शुभ है तो वह श्रमणदीक्षा ही लेंगे । षोडश अधिकार पृ0 170 पर

ईश्वनिंद गोरवं, स्भारकरनिं, कापालिकं भूमिनं ।

दननिं बौद्धतपस्वि, सोमसुतनिंदं, जीवनोपायि जीवनिं नारण्य निवासि,

दैत्यगुरुविंदं गोल दीक्षान्विते शनियिंदं जिनयोत्रियप्प तपमं कैक्योलगुमा मानवं ।

सूर्य से गोख (शैवभिक्षु) चंद्र से कापालिक, मंगल से बौद्धतपस्वी (भिक्षु) गुरु से अरण्यवासी, शुभ से गौलदीक्षा (वक्रधर)   से जिनदीक्षा । इन-इन ग्रह बल से वह-वह दीक्षा होती है ।

अब जिनदीक्षा लेने के बारे में 39 पर्व आदिपुराण में कहा है पद्य ।

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित आदिपुराण पर्व 39 श्लोक 157 से 161 । मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष को शुभ तिथि शुभ नक्षत्र, शुभयोग, शुभलग्न और शुभ ग्रहों के अंश में निर्ग्रन्थ आचार्य के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए । (157) जिसका कुल और गोत्र विशुद्ध है, चरित्र उत्तम है, मुख सुन्दर है और प्रतिभा अच्छी है ऐसा पुरुष ही दीक्षाग्रहण करने के योग्य माना गया है (158) जिस दिन ग्रहों का उपराग हो, राहुकेतुवेथ ग्रहण लगा हो । सूर्यचन्द्रमापर परिवेश (मण्डल) हो, इन्द्रधनुष उठा हो, दुष्ट ग्रहों का उदय हो, आकाश मेघ पटल से ढका हुआ हो, नष्टमास, अथवा अधिकमास का दिन हो, संक्रान्ति हो अथवा क्षयतिथि का दिन हो, उस दिन बुद्धिमान आचार्य मोक्ष की इच्छा करने वाले भव्यों के लिए दीक्षा की विधि नहीं करना चाहते है अर्थात् उस दिन किसी शिष्य को नवीन दीक्षा नहीं देते है । (159-60) जो मन्दबुद्धि आचार्य इस सम्प्रदाय का अनादर कर नवीन शिष्य को दीक्षा दे देता है । वह वृद्ध पुरुषों के उल्लंघन करने में तत्पर होने से अन्य साधुओं के द्वारा बहिष्कार करने योग्य है । भावार्थ - जो आचार्य असमय में दीक्षा शिष्यों को दीक्षा दे देता है वह वृद्ध आचार्यों की मान्यता का उल्लंघन करता है ।

मैंने प्राप्त आचार्यों की साधुगणों की जो पत्रिकायें है इनमें यह बात बिलकुल

सत्य है । प. पू. आचार्य विमलसागर महाराज की जन्मकुण्डली में कुंभलग्न है, कर्क राशि है । शनि ग्रह तुला का उच्च भाग्य में है । पूज्य एलाचार्य का जन्म लग्न तुला है वहीं उच्च शनि है । आचार्य रत्न देशभूषण महाराज का जन्मलग्न भी तुला है । चतुर्थ में मकर का स्वगृही शनि है और उच्च मंगल है । डॉ० मनोहरलालजी की पत्री में [illegible] लग्न, लग्न में उच्च बुध और दशम केन्द्र में शनि, भगवान महावीर का जन्म लग्न [illegible] । वहीं उच्च मंगल, दशमकेन्द्र में तुला का उच्च शनि । श्री 108 आर्यनन्दी महाराज [illegible] जन्मलग्न कुंभ है और वहीं शनि है जिन-जिन मुनियों की जन्मपत्री में बलवान शनि [illegible] वह सब आज जैनधर्म के अत्युच्च पद पर प्रतिष्ठित है और अविरत धर्मप्रभावना कर र[illegible] ।

आरोग्यं पद्मबन्धुर्वितरतु भवतां संपदं शीतभानु
र्भूलाभं भूमिपुत्रः सकलगुणनिधिं वाग्विभूतिं च सौम्यः
सौभाग्यं देवमंत्री रिपुभयहरणं भार्गवः शौर्यमार्कि-
र्दीर्घायुः सैंहिकेयो विपुलतर-यशः केतुरिष्टार्थसिद्धिम् ।।

ॐ शांति ॐ शान्ति ॐ शान्ति ।

परम पूज्य आचार्य महाराज, पूज्य साधुगण
अध्यक्ष महोदय, विद्वज्जन, उपस्थित सज्जनों, देवियो ।

विघ्नाः प्रणश्यन्ति भयं न जातु,
न दुष्टदेवाः परिलंघयन्ति ।
अर्थान्यथेष्टांश्च सदा लभन्ते,
जिनोत्तमानां परिकीर्तनेन ।।

जैन मन्त्र शास्त्र के सम्बन्ध में तीन-चार विद्वानों ने प्रकाश डाल दिया है। इसलिए उसके सम्बन्ध में पीछे कहूंगा । उससे पहले जैन ज्योतिष के सम्बन्ध में दो शब्द कहना चाहता हूं ।

हमारी ऐसी भ्रांति है कि ऊपर आकाश में जो शनि आदि ग्रह है वे तारक है, इनसे कष्ट होता है, इनकी शान्ति होनी चाहिए । करते है लोग । इसलिए उस पर प्रकाश डालना आवश्यक है । मुझे अध्यक्ष बनाया गया है इसलिए मेरा कर्तव्य तो विषय प्रतिपादन का नहीं है । ऐसा समझकर कह रहा हूं ।

ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रं ज्योतिषशास्त्र-सूर्यादि ग्रह और काल का बोधक शास्त्र ज्योतिष शास्त्र है । ग्रह नक्षत्र, धूमकेतु आदि ज्योतिः पदार्थों का स्वरूप, संचार, ग्रहण, स्थिति तथा नक्षत्र गति स्थिति तथा शुभाशुभ का कथन हो वह ज्योतिष शास्त्र है । इसमें गणित और फलित दोनों प्रकार की विद्या का समन्वय है । मध्यकाल में सिद्धांत संहिता और होरा के रूप में ज्योतिष था । परन्तु वर्तमान में गणित और होरा, गणित, संहिता, प्रश्न, निमित्त यह पंच स्कंधात्मकता हो गई है । इसे जातक शास्त्र कहते हैं । अहोरात्र में अ और त्र का लोप होकर होरा शब्द बना है । जन्म कुण्डली के द्वादश भावों के फल और उसमें स्थित ग्रहों की अपेक्षा तथा दृष्टि रखने वाले ग्रहों के अनुसार प्रतिपादित किये जाते हैं । मानव जीवन में सुख दुख, इष्ट अनिष्ट, उन्नति अवनति भाग्योदय का वर्णन इससे किया जाता है ।

यह शरीर चक्र ही ग्रहकक्ष वृत्त है । इसमें मस्तक, मुख, वक्षस्थल, हृदय, उदर, कटि वस्ति, लिंग, जंघा, घुटना, पैर, पिंडली में द्वादश भाग क्रमशः मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ, मकर और मीन है । इन 12 राशियों में भ्रमण करने वाले ग्रहों में आत्मा रवि है, मन चन्द्र है, धैर्य मंगल है, वाणी बुध है, विवेक गुरु है, वीर्य शुक्र है, संवेदन शनि है । इस शरीर स्थित सौरचक्र का भ्रमण आकाश स्थित और मंडल के नियमों के आधार पर होता है । ज्योतिष शास्त्र

व्यक्त और जगत की गति स्थिति आदि के अनुसार, अव्यक्त शरीरस्थ और जगत के ग्रहों की गति आदि को प्रकट करता है। अतः इस शास्त्र द्वारा कथित फलों का मानव जीवन से सम्बन्ध है। जो कुछ यह है वह तो मात्र सूचक है कारक नहीं। प्राचीन भारतीय आचार्यों ने अपने दिव्य ज्ञान से प्रयोग शालाओं के अभाव में भी अभ्यन्तर और जगत का पूर्व दर्शन कर आकाश मंडलीय और जगत के नियम निर्धारित किये थे। यहाँ के वहाँ के लिए निर्धारित किये थे, वही वे यहाँ के लिए नहीं। उन्होंने अपने शरीरस्थ सूर्य की गति से आकाश स्थित सूर्य की गति निश्चित की थी। इसी कारण ज्योतिष के फलाफल का कथन विज्ञान सम्मत माना जाता है। दर्शन के समान ज्योतिष में भी आत्म साक्षात्कार का गणित (भा. ज्यो. 27) प्रतीकों के द्वारा जोर दिया गया है। उत्कृष्ट आत्म ज्ञानी ज्योतिष के रहस्य से अनभिज्ञ नहीं रह सकते। भारतीय ज्योतिष के व्यावहारिक एवं पारमार्थिक दोनों लक्ष्य रहे हैं। हमारे यहाँ 'रिष्टसमुच्चय' ग्रन्थ है। उसमें अपने मरण के सम्बन्ध में पूरी जानकारी दी गई है। वह जैन ग्रन्थ है।

भारतीय जैन ज्योतिष में ग्रह फलाफल के नियामक नहीं हैं। किन्तु सूचक है। ग्रह किसीको सुख दुख नहीं देते किन्तु आने वाले सुख दुख की सूचना देते हैं। ग्रहों की रश्मियों का प्रभाव विपरीत वातावरण के होने पर अन्यथा भी किया जा सकता है। जैसे अग्नि का स्वभाव जलाने का है, परन्तु सूर्यकान्त मणि के पास रखने पर प्रभाव क्षीण हो जाता है। मनुष्य अपने पूर्वोपार्जित अदृष्ट के साथ-साथ वर्तमान में जो कार्य कर रहा है उनका प्रभाव उसके पूर्वोपार्जित कर्म पर पड़ता है। पूर्वोपार्जित कर्मों की स्थिति और उनकी शक्ति को इस जन्म के कार्यों द्वारा सुधारा भी जा सकता है। ज्योतिष का उपयोग यह है कि हम अपने सुख दुख आदि को जान करके पहले से ही सजग रहें। यदि ग्रहों का फल अनिवार्य रूप से भोगना निश्चित माना जावे तो पुरुषार्थ व्यर्थ होकर आत्मा की मुक्ति कभी नहीं हो सकती। ज्योतिष के द्वारा व्यवहार के लिए उपयोगी वर्ष, ऋतु, मास, पक्ष, दिन के शुभाशुभ का परिज्ञान होता है, जिससे अपने सभी कार्य शुभ मुहूर्त में सम्पन्न किये जा सकते हैं।

धार्मिक उत्सव, रक्षा बन्धन, दीपावली आदि और सामाजिक त्यौहार, महापुरुषों के जन्म दिन, व्रत तिथि आदि का ज्ञान ज्योतिष के आधार पर भलीभाँति हो जाता है। भगवान् महावीर का निर्वाण 15 अक्टूबर ईस्वी पूर्व 527 निकाला गया है। यह सब ज्योतिष के अनुसार है। उस दिन स्वाति नक्षत्र आता है। एक ही कार्तिक मानने पर नहीं आता है। अहिंसा प्रधान श्रमण संस्कृति में आत्मशोधन एवं जीवन में प्रगति और प्रेरणा प्राप्त करने के लिए पर्व और व्रत की साधना आवश्यक मानी गई है। व्रतों की तिथि एवं विधि विधान जैनाचार्यों ने शास्त्रों में जैसा बताया है तदनुसार

ज्योतिष का ज्ञान होने पर ही संभव है । अतः वर्तमान पंचांगों से जैन व्रततिथि आदि की भिन्नता के नियम हमें आचार्यों द्वारा प्रतिपादित देखना चाहिए ताकि ठीक ठीक निर्णय किया जा सके ।

वर्तमान में जो पंचांग है, उनसे कोई निर्णय नहीं हो पाता कि हमारी अष्टमी और चतुर्दशी कब आती है । अन्य पर्व कब आते हैं ? इसके लिए जैन तिथि दर्पण आवश्यक है । हमने उसके नियम बनाये हैं ।

अब मन्त्रशास्त्र के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा रहा है ।

इस सम्बन्ध में 'विद्यानुशासन' ग्रन्थ कुमारसेन रचित है । जो मेरे पास मौजूद है । मैंने उसका अध्ययन किया है । यहाँ हमारे पास पूज्य आचार्य विमलसागर जी महाराज विराजमान हैं । व्यावहारिक दृष्टि से आपके सामने मैं निवेदन करूँ । मंत्र के संबंध में ।

अनेक मित्र मेरे पास बारबार आते हैं । उनका कहना है कि आप अध्यात्म की ऊँची बातें करते हैं । विज्ञान की बातें करते हैं, दर्शन की बात करते हैं, आज हमें पैसे की आवश्यकता है, पैसे बिना हमारा काम चल सकता नहीं । हमारा शरीर रोगी है । जब तक हम निरोगी न हों, जब तक हमारे बच्चे सुखी न हों, जब तक बाहरी आवश्यकता हमारी दूर न हो, यह सब बातें हमारे किस काम की । कोई उपाय हमें बताइये । यद्यपि जो कुछ फल मिलता है वह सब अपने कर्मों के आश्रित मिलता है । जैसा हमने किया है उसी प्रकार का फल/हम पायेंगे। बुद्धिमान- समझदार व्यक्ति सहिष्णु होकर उसे सहन करता है। परन्तु आकुलता जब बढ़ जाती है यदि हम कमजोर हैं, प्रायः दुखी आदमी कमजोर होते हैं । दुनिया में बहुत से उपाय हैं । कहीं जाकर हम सिर पटक सकते हैं कहीं नारियल फोड़ सकते हैं और कहीं बावड़ी में जाकर स्नान करते हैं । श्मशान में भी जाते हैं । पैसे के लिए, रोग निवृत्ति के लिए, परिवार को सुखी बनाने के लिए सब कुछ करते हैं । यह हमारी बहुत बड़ी कमजोरी है, जो हमें मजबूर करती है ।

हमारे आचार्यों ने, पूर्व ग्रन्थकारों ने, ज्ञानियों ने, और चिकित्सकों ने उपाय बताया है कि भाई तुम बाहर सिर मत पटको । जो कुछ तुम चाहते हो यहीं मिलेगा, ऐसा नहीं कि नहीं मिलेगा । सारी दुनिया की जितनी अच्छी चीजें है, समुद्र के भीतर भी अगर रत्न भरे हुए है, बाहरभी रत्न हैं । वे सारे रत्न, सारी अच्छाईयाँ दिखती है, वे यहीं की है । जो कुछ मंत्रतंत्रादि बाहर है वह सब यहीं है । हमारे आचार्यों ने दुखी व्यक्तियों को शान्त करने के लिए रास्ता निकाला, क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यग्दृष्टि को सम्यक्त्वनामक दर्शन मोह की प्रकृति के उदय से जैन धर्म के ही अंतर्गत देवशास्त्र गुरु

की उपासना करके उनसे अपने भौतिक दुःखों की निवृत्ति की अपेक्षा होती है वह अन्‍ नहीं जाता । गोम्मटसार की टीका से यह संकेत मिलता है । इसीलिये हमारे यहाँ विभिन्न कष्टों के निवारणार्थ विभिन्न पूजाएँ हैं, पाठ हैं, स्तोत्र हैं । जप हैं । तप है । मंडल विधान हैं । यद्यपि यह सकाय आराधना है परन्तु रोगी व्यक्ति ज्वर से आकुलित होकर पानी माँग रहा है । चिकित्सक ने मना कर दिया है कि भाई पानी दोगे तो मर जायेगा । पर जब वह मानता नहीं तो उसे थोड़ा पानी देकर शान्त किया जाता है । इसी प्रकार बाहर रहकर पाप के वातावरण में रहने के बजाय मंदिर में आकर उसे शान्ति मिलती है । शान्ति के वातावरण में रहता है । शुभोपयोग में रहता है । पाप के वातावरण से दूर रहता है । उससे पाप की शान्ति होती है और इससे पुण्य वर्गणाएँ बढ़ती हैं - पाप वर्गणाएँ घटती हैं । बहुत बड़े अध्यात्म की बात नहीं है । पर शान्ति मिलने का उपाय है । कमजोर व्यक्तियों को दयालु चिकित्सक ऐसे ही उपाय बताते हैं । ऐसी ही स्थिति मंत्रों की है । मन्त्र मंत्रदिग्दर्शक 'विद्यानुशासन' ग्रन्थ मैंने देखा है । उस ग्रन्थ के रचयिता 'कुमार सेन' ने लिखा है कि यह विद्यानुवाद नहीं है । यह मेरी रचना या भगवान की वाणी नहीं है । मैं स्वयं यह ग्रन्थ अनेक ग्रन्थों का सार लेकर लिख रहा हूँ । इसमें 24 अधिकार हैं ।

मंत्र का प्रयोग वाह्य चिकित्सा के अन्तर्गत है । शरीर की रक्षा करने वाला जो विधि है वह तन्त्र है । मन्‍त्र मन की रक्षा करने वाली जो विधि है वह मन्त्र है । चंचलता स्थिर करने वाली जो विधि है उसका नाम मन्त्र है । ये तन्त्र मन्त्र के लक्षण हैं । इन्हीं मंत्र तन्त्र के अन्तर्गत मारण, उच्चाटन, विद्वेषण, स्तंभन, शांति, पुष्टि, वशीकरण, स्त्री आकर्षण, करने वाले उपाय भी हैं । मंत्रों में कौन से अक्षर स्त्री हैं, कौन से पुरुष और कौन से नपुंसक हैं । कौन श्वेत हैं, कौन रक्त हैं, कौन पीत हैं, कौन जल मण्डल, अग्नि मंडल, पृथ्वी मंडल और वायु मण्डल है । कौन किस मुहूर्त में, किस मास में, किस तिथि में, किस माला के द्वारा किस आसन से किस दिशा में और किस प्रकार जपना चाहिए । कहाँ स्वाहा, वषट् या नमः लगाना चाहिए । मन्त्र के कितने भेद हैं ? ये तमाम बातें इस ग्रन्थ में विद्यमान हैं । किस राशि वाले को कौन सा मन्त्र फलप्रद हो सकता है या हानिप्रद हो सकता है । आदि । परन्तु एक बात मुझे बताना है । क्योंकि ऐसे ग्रन्थ छप भी चुके हैं । जब हम अहिंसा के समर्थक हैं । अहिंसा जैनधर्म का प्राण है और आप जैन मन्त्र और जैन ज्योतिष पर सुनना चाहते हैं । यदि उन ग्रन्थों के अन्दर हिंसा जन्य विधि है तो क्षम्य नहीं है । देखिये विद्यानुशासन के कुछ प्रमाण :-

मैंढक की चर्बी को दोनों आँखों में लगाने से पुरुष को सांप ही सांप दिखते हैं । 298
सफेद आक की रुई की बाती को सर्प की चर्बी में भिगोकर जलाने से घर में सांप ही साँप दिखते हैं । साँप की खाल की बत्ती को रात्रि में दीपक में जलाने से बाँस में सर्प दिखते हैं । ये तो आश्चर्य हैं, आकर्षण है । यह तंत्र हैं, जो जगह जगह से ले लिये गये हैं । इनसे स्त्री आकर्षण, वशीकरण, शत्रुमारण आदि से हिंसा का समर्थन होता है । इसलिए भारतीय ज्ञानपीठ के संचालक महोदय से मेरा निवेदन है - कि तंत्र मन्त्र सम्बन्धी ऐसे ग्रन्थ तैयार करावें जिससे मंत्र संबंधी सांगोपांग ज्ञान भी हो सके, परन्तु जिन मन्त्रों से किसी का अकल्याण होता हो, उसका उल्लेख नहीं किया जावे ।

मेरे पास एक वृद्ध सज्जन एक मन्त्र लाये । बोले - पंडितजी मैं मन्त्र जपता हूँ, लेकिन मेरा मन अस्थिर रहता है और कुछ मेरी खराब आदतें हैं जिन आदतों को छोड़ सकता नहीं और मन्त्र जपने वाले में ऐसी आदत नहीं होनी चाहिए । आप धार्मिक व्यक्ति हो अतः आप इस मन्त्र को जप दें तो मेरा काम बन जायेगा । मैंने समझा यह परमेष्ठी मन्त्र है । परमेष्ठी मन्त्र जानकर मैंने उसको जपा । उसका कोई अच्छा प्रभाव नहीं हुआ । एक सज्जन मंत्र जपते थे । उन्हें स्वप्न में स्पष्ट बताया गया कि तुम मन्त्र जपते हो । हम मन्त्र के अधिष्ठाता हैं । तुम्हारे भाग्य में जो होगा वही होगा । हमारी ताकत नहीं जो तुम्हारे भाग्य को बदल दें । मन्त्र जपने वालों को मैंने देखा है । उन्होंने जनता को बड़े बड़े चमत्कार दिखाये परन्तु अंतिम समय में, बीमारी के समय में, मेरे पास आये । बोले - पंडितजी हमने अब तक लौकिक मन्त्रों का प्रयोग किया है । दूसरे लोगों को चमत्कार भी दिखाया पर हम समाधि मरण करना चाहते हैं । शान्तिपूर्वक मरण चाहते हैं इसलिए आप हमें धार्मिक मन्त्र दीजिये । परमेष्ठी मन्त्र दीजिये । जिससे हमारा कल्याण हो सके । मैंने उन्हें परमेष्ठी मन्त्र दिया - शान्ति के साथ जीवन बिताया । अन्यलौकिक मन्त्रों को छोड़ दिया उन्होंने । मरण के समय या जब अपना अशुभ कर्म का उदय हो, कोई दूसरे मंत्र काम नहीं आ सकते हैं । परमेष्ठी मन्त्र ही कल्याणकारी होते हैं और हमेशा अच्छा फल देते हैं ।

यह पदस्थ ध्यान के अन्तर्गत है । पदस्थ ध्यान के अन्तर्गत होने से मन की एकाग्रता होगी । हमारे पवित्र विचार होंगे । परमेष्ठी मन्त्र द्वारा हमारा हमेशा कल्याण होगा । लौकिक आकांक्षापूर्वक जपने से कल्याण नहीं हो सकता । बिना आकांक्षा के सभी काम स्वयमेव पूरे होते हैं । मेरे जीवन में ऐसी सैकड़ों घटनाएं घटी हैं । फिर मेरा भारतीय ज्ञानपीठ के संचालक महोदय से निवेदन है जिससे मंत्र तंत्रों से आधार जनता भ्रान्त न हो जाये । उसे तकलीफ न हो । मैंने भ्रान्त लोगों को देखा है । मंत्र

जपने से जिनका चित्त विक्षिप्त हो गया ऐसे लोगों को देखा है । देवी देवताओं के एक तो इस काल में मंत्र सिद्ध होते नहीं और बिना पुण्य मंत्र कुछ अच्छा फल भी नहीं देते । मंत्र शास्त्र में यही लिखा भी है । मंत्र जपने वालों के प्रति स्वप्न में या जपते समय भी मंत्राधिष्ठाता देवताओं की ऐसी भाषा होती है, जिसे हम समझते हैं कि बिलकुल ठीक है । दूसरे दिन मालूम पड़ता है कि गलती है । हमें स्वयं ऐसा मालूम पड़ता है कि इस मंत्र से ठीक दिशा निर्देश मिल गया है और कल्याण होगा और जब दूसरे दिन देखते हैं तो इस बात को हमने समझा नहीं था । ऐसी भ्रान्ति बनी रहती है । काम कुछ बनता नहीं इसलिए परमेष्ठी मन्त्र सबसे अच्छा है । दूसरी बात मैंने विद्यानुशासन में और देखा कि लौकिक मंत्रों में अमुक दिशा, अमुक विधि, अमुक माला, अमुक मुहूर्त, उसमें वषट् लगाओ या स्वाहा लगाओ मंत्र भिन्न है कि अभिन्न है, स्त्रीलिंग है कि पुल्लिंग है ये तमाम प्रकार की बात जितनी होती है वह लौकिक मन्त्रों में होती है । परमेष्ठी मन्त्रों के अन्दर कोई खास आवश्यकता नहीं । उनसे हमें कोई तकलीफ नहीं । उनसे सबका भला ही होता है, बुरा नहीं ।

मैंने विद्यानुशासन में देखा है । परमेष्ठी मन्त्र लोभ यह सब है । णमो अरिहंताणं, ओं, ह्रीं, क्लीं इत्यादि का जाप करने से शान्ति मिलती है । इससे लाभ होता है यह मेरा स्वयं का अनुभव और अभिमत है । इसलिए मैं चाहता हूं कि आप कोई योजना बनाइये जिससे मन्त्र की विधि भी मालूम पड़ जाये, मन्त्रशास्त्र भी बन जाय और जनता भ्रान्त न हो, किसी को कष्ट न हो और सबका कल्याण हो ।

इसे यह कोई न समझे कि मैं मंत्र तंत्र का विरोधी हूं । द्वादशांग में विद्यानुवाद पूर्व के मंत्र अंग हैं । उनका विधि विधान भी है । उनसे शारीरिक मानसिक चिकित्सा भी होती है ।

जैन मत्र-तत्र सबन्धी गोष्ठी-सत्र मे
ग्राचार्य विमलसागरजी महाराज के भावोद्गार

'ससार में जितने प्राणी हैं, एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक, सब मंत्र रूप हैं। सारा जगत् मत्र रूप है, कुछ भी अमत्ररूप नहीं।

और, ८४ लाख मत्रो मे सर्वश्रेष्ठ है यह णमोकार मत्र, हमारी ग्रात्मा को परिष्कृत करनेवाला मत्र। यह मानव-मन को शान्ति प्रदान करता है, हमारे सकल्प-विकल्पमय परिणामों को वश मे करता है। इसका ध्यान करने से मनुष्य घातिया कर्म-समूह का नाश कर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।'

समापन समारोह विद्वत्-अभिनन्दन

प० जगन्मोहनलाल जी शास्त्री का अभिनन्दन करते हुए

साहू श्रेयास प्रसाद जैन और श्री चादमल मेहता

जैन-मन्त्र विद्या

– आचार्य विमलसागरजी महाराज

आप लोगों के सामने यन्त्र-मन्त्र और दूसरी चर्चाओं द्वारा गोष्ठी में बड़ा आनन्द रहा, बड़ा आनन्द आया । परन्तु इतना खेद है कि साहूजी ने इतनी धनराशि खर्च करते हुए विद्वानों को कम से कम आठ-आठ दिन रखो तो सारे विषय खुलासा होते । यह जितनी भी आपके इतिहास की नींव जमाई, जमाने का कार्य किया है मैं अभिभूत हूं । आप इतने विद्वानों को बुला रहे हैं तो कम से कम छांटे दो छांटे अर्जन करके कुछ कार्य करें तो जैनधर्म की उन्नति का मार्ग बन सकता है ।

दूसरे, ज्योतिष और मन्त्र जो आपके सामने हैं – जो संसार के जितने प्राणी हैं एक इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सब मंत्र रूप हैं । कोई अमन्त्र नहीं हैं । जिस समय धर्मध्यान के अन्दर – ध्यान के चार पाये बताये हैं – आत्म कल्याण के लिए उसमें भी ये चार ध्यानानुयायी हैं । मन्त्रों में युक्ति बद्विधा मन्त्र तो, जैसा पंडित जगन्मोहनजी ने बतलाया – णमोकार मन्त्र है । मैं भी मानता हूं । आचार्यों ने भी माना है । और ये कहा है कि 84 लाख मन्त्रों में एक णमोकार मन्त्र ऐसा है जैसा कोई मन्त्र नहीं है । यह हम सब जानते हैं । संसार के अन्दर जितने मन्त्र हैं उन्हें उड़ा दो । अन्त में एक मन्त्र बचता है। उससे हमारी आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त चतुष्टय, अनन्त वीर्य सबकी सिद्धि होती चली जाती है । परन्तु आप सब जानते हैं, मन्त्र शास्त्र अनादि-काल से द्वादशांग के अन्दर गर्भित है । कोई भी विद्वान इसकी उपेक्षा नहीं करेंगे । सब जानते हैं कि द्वादशांग के अन्दर मन्त्र शास्त्र है । कल्याण वैद्यक ग्रन्थ है, ज्योतिष है, सब चीजें आपके यहाँ मौजूद हैं । अनादिकाल से चली आ रही हैं । अरहंत भगवान की वाणी में ये बतलाया गया है । आप सब जानते हैं । परन्तु मन्त्रशास्त्र के लिखने की लेखनी कला कब से चली । पंचमी से चली । आप सब जानते होंगे । इधर सिद्धसेन आचार्य विचार कर रहे हैं - सिद्ध मन्त्रों को, इस आगम को, जानने वाला कौन मिलेगा, जिसकी हिम्मत, जिसका धैर्य साक्षीभूत है कि नहीं । इतने में मन्त्र देखा सुबह उन्होंने । उसके फल में दो विशिष्ट आ गये, जिसको पुष्पदन्त और भूतबलि कहते हैं । कमती या ज्यादा मन्त्र दे दिया । आप आलबाल सब जानते हैं । फिर उन्होंने मन्त्र को जपा तो विद्या देवियां प्रगट हुईं । एक काणी देखी, तो

-2-

एक के दांत ज्यादा मिले । दोनों साधु मिले आपस में । व्याकरण के द्वारा सिद्ध किया, इसमें एक मन्त्र की कमी है या ज्यादा है तो उसको फिर मन्त्र से सिद्ध किया । काम सिद्ध हुआ । पुष्पों की वर्षा हुई, पूजा हुई । इस कारण से जो है मन्त्र अनादि निधन है । चाहे णमोकार मन्त्र ले लीजिये उसी का ओम् पर्याय है । ओम पल्लव होता है । ह्रीम् शब्द आकाश - जमीन वाचक । सारे बीजाक्षर मानव के अमुक अमुक अंग में निवास करते हैं ।

पूरे शरीर में कोई भी अंग बाकी नहीं है । आप लोग जिस समय चिंतन करेंगे विचार करें तो घातिया कर्मों का नाश करके एक भव में मोक्ष पा सकते हैं । हमारे यहाँ भगवान की 64 ऋद्धियाँ हैं । सबको नमस्कार करते हुए ऋद्धियाँ बतलाई गयी हैं । मन्त्र शास्त्र में वो क्या है वो मानव के लिए - अपने मन की शान्ति करता है । अपने परिणामों को शान्त करता है । और ध्यान में आ करके घातिया कर्मों का नाश करके मोक्ष की प्राप्ति करता है ।

इसलिए मन्त्र शास्त्र में हमारे विद्वानों ने ज्योतिष से, व्याकरण से साहित्य से अनेक प्रकार से शब्दों में सिद्ध किया है । हमारे अक्षयकुमार जी, यतीन्द्रकुमारजी, सोहनलालजी, पं० नाथूलालजी साहब ने बहुत कुछ कहा ही है । सब णमो अरिहंताणं जानते ही हैं । सब मन्त्रों में णमोकार मन्त्र है । सब यात्राओं में सम्मेद शिखर है । मूर्तियों में गोम्मट स्वामी की मूर्ति है और आचार्यों के गुरु हैं तो शान्तिसागर हैं ।

आप लोग विचार करें मन्त्र शुद्धि पूर्वक खाते पीते सोते समय, 24 घंटे पवित्र-पवित्र स्थान हो । घात नहीं करेगा, आपको फायदा देगा । आचार्यों ने कहा कि चलते चलते दाई नासिका का स्वर - जिसे बोलते हैं इ । मन्त्र को जपना चाहिये । कार्य की सिद्धि होती है । इसे बढ़ाना चाहिये, उचारना चाहिए इसे पल्लव करना चाहिए । प्राणी मन्त्रों के द्वारा अपनी इच्छाएँ पूरी कर सकता है । जो सिद्ध करना चाहे सबको सिद्ध हो जाता है ।

अभिनन्दन - समारोह

जैन विद्वत् संगोष्ठी का प्रत्येक सत्र अपनी प्रवृत्ति और सुनियोजित कार्यक्रम की संचालना एवं उपलब्धि के कारण स्मरणीय रहा । सारे समारोह की भव्यता और उल्लास का प्रतिबिंबन हुआ, चौथे और अन्तिम सत्र की परिसमाप्ति पर, जब पूज्य आचार्य श्री विमलसागर जी और उनके संघ के सान्निध्य में श्रावक शिरोमणि श्री साहू श्रेयांसप्रसाद जी और श्री [illegible] मेहता मंच के सामने प्रसन्न मुद्रा में उपस्थित हुए और आदरपूर्वक बारी-बारी प्रत्येक विद्वान को आमंत्रित किया कि वह समाज की श्रद्धा और सम्मान के प्रतीक स्वीकार करें - तिलक, पुष्पमाल और श्रीफल के साथ एक-एक शाल जो विद्वानों के उत्तरीय-वस्त्र की प्रतीक थी । साहूजी तिलक करते थे और श्रीफल भेंट करते थे ; मेहता जी शाल उढ़ाते थे । उपस्थित मंडली तालियों के बीच अपनी हर्षध्वनि से सभा मंडप गुंजायमान करती थी ।

समस्त समाज और उपस्थित महानुभावों की ओर से श्री अभयकुमार गांधी ने श्री साहूजी का अभिनन्दन-तिलक, पुष्पहार और शाल-शोभा द्वारा किया । तुमुल करध्वनि इस बात का प्रतीक थी कि श्री साहूजी ने संगोष्ठी का जो नया मान-दंड स्थापित किया है, उसके लिए उनके प्रति जितना भी आभार और समादर व्यक्त किया जाये कम है । प्रत्येक हृदय का आन्तरिक उद्गार इस सम्मान-प्रतीक में समाहित था ।

आचार्य विमलसागरजी महाराज की आशीषमयी उत्फुल्लता देखते ही बनती थी । उन्होंने विशेष रूप से श्री साहूजी के शीश पर पवित्र पीछी का स्पर्श देकर उन्हें आशीष दिया । यह सौभाग्य दोनों संयोजकों - डा. नेमीचन्द्र जैन, इन्दौर और श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, दिल्ली को भी प्राप्त हुआ ।

फोटोग्राफर और पत्र-पत्रिकाओं के रिपोर्टर व्यस्त थे । उल्लास के इस वातावरण ने प्रत्येक व्यक्ति को मुग्ध किया । श्री साहूजी के नेतृत्व में विद्वानों के समादर की जो गरिमा व्यवस्था देखने में आई, और बंबई समाज ने जिस सद्भावना का परिचय दिया, वह सदा स्मरणीय रहेगा ।

विद्वानों का समादर तो हुआ ही, योजना को सफल बनाने वाले कार्यकर्ताओं का भी सम्मानपूर्वक अभिनन्दन किया गया ।

विशेष आभार

जिन विद्वानों ने संगोष्ठी में भाग लिया, भाषण किये, उनकी नामावलि कार्यक्रम में आ गई है ; संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है । संगोष्ठी सफलता को जिनकी उपस्थिति और सहयोग ने सार्थक रूप दिया उनके संपूर्ण नाम गिनाना संभव नहीं । अनेक समाज हितैषी बन्धु बाहर से पधारे । समाज की गति-विधियों का यह अपने-अपने क्षेत्र में संचालन करते हैं । पूरे कार्यक्रम को सफल बनाने में ही नहीं, भविष्य की योजनाओं को साकार करने में भी सबका और अन्य महानुभावों का, जिनके नाम यहाँ नहीं दिये जा सके, ... अपेक्षित है ; प्रार्थित है :

1. श्री ज्ञानचन्द खिन्दूका,
   अध्यक्ष, श्री दि॰ जैन अतिशयक्षेत्र श्री महावीर जी,
   जयपुर ।

2. श्री कपूरचन्द पाटनी,
   मंत्री, श्री दि॰ जैन अतिशयक्षेत्र श्री महावीर जी,
   जयपुर ।

3. श्री धन्यकुमार जैन,
   अध्यक्ष , दि॰ जैन संघ,
   मथुरा ।

4. श्री डाह्याभाई कापडिया,
   संपादक "जैन मित्र"
   सूरत ।

5. श्री जयचन्दजी लोहाडे,
   महामंत्री, अखिल भारतवर्षीय दि॰ जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,
   हीराबाग, गुडगांव,
   बम्बई ।

6. श्री मोहनलाल काला,
   सी-45, बापूनगर,
   जयपुर ।

7. श्री जम्बूकुमार जैन,
सदस्य, दि॰ जैन महासमिति, दिल्ली ।
निवास: मै॰ मंगलजी छोटेलालजी,
रामपुरा बाजार, कोटा ।

8. श्री सुकुमारचन्द जैन,
महामंत्री, दि॰ जैन महासमिति, दिल्ली।
निवास: मै0 किशान फ्लोर मिल्स,
रेलवे रोड, मेरठ ।

9. श्री अरहद्दास दिग्गे, कराड ।

10. डा. कुलभूषण लोखंडे, शोलापुर ।

11. श्री श्रेणिक अन्न दाते,
संपादक "तीर्थंकर" (मराठी)

12. श्री लालचन्द हीराचन्द,
अध्यक्ष, भारतवर्षीय दि॰ जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,
हीराबाग, गुडगाँव,
बम्बई ।

13. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन,
संपादक "नवनीत"
अनुत्तरयोगी के यशस्वी लेखक ।
बम्बई ।

14. श्री बी॰के॰ चौगुले॰
भू॰पू॰ आयुक्त, बम्बई नगर पालिका,
[illegible] सेक्रेटरी, महाराष्ट्र शासन,
मन्त्रालय, बम्बई-32 ।

15. श्री जम्बूकुमार कासलीवाल,
फ्लैट नं॰ 61 ए, एम्बेसी अपार्टमेन्ट,
46, नैपियन्सी रोड, बम्बई-36 ।

16. श्री कान्तिलाल हिराशा जैन,
सुन्दर भवन, 3री मंजिल,
166 ई, डा. अम्बेडकर रोड,
बम्बई-400 014 ।

17. श्री अभयकुमार गाँधी,
गौरीगांकर विला,
25, स्वामी विवेकानन्द रोड;
बम्बई-58 ।

18. श्री वसन्त दोशी,
श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थरक्षा ट्रस्ट,
173/175 मुम्बादेवी रोड,
बम्बई-3 ।

19. श्री चंदन लाल "चाँद"
संपादक "जैन जगत"
बम्बई । तथा अन्य महानुभाव ।

अनुरोध और आभार

- बाल स्वरूप राही, भारतीय ज्ञानपीठ

परम पूज्य मुनिराज, अध्यक्ष महोदय, बाबूजी और विद्वज्जन।

यह गोष्ठी जिस उद्देश्य को सामने रखकर की गयी थी कि जितना काम हुआ है उसका रेखांकन कर लिया जाये और इसके अतिरिक्त जो भावी योजनाएँ हैं उनका स्वरूप स्थिर कर लिया जाये तथा कुछ ऐसे ठोस निष्कर्षों तक हम पहुँचे जिनको पृष्ठभूमि में रखते हुए और जिनके परिप्रेक्ष्य में कुछ ऐसी योजनाएँ शुरू की जायें जिसमें भारती ज्ञानपीठ का योगदान हो और कुछ योजनाओं को ज्ञानपीठ अपने पूरे सहयोग से क्रियान्वयन में सहायता कर सके। अतः इस उद्देश्य से कल गोष्ठी में बातचीत भी हुई और कुछ ठोस प्रस्ताव भी सामने आये थे तो हमने एक प्रोफार्मा तैयार किया है। हमारा अनुरोध है कि जो महानुभाव प्रस्ताव लेकर सामने आयें, औरजो काम वह करना चाहते हैं, उनकी जो योजना हो, उसको जिस प्रकार से हमने चाहा है, प्रोफार्मा भरकर दे दें जिससे स्वरूप स्पष्ट हो जाये।

यह प्रोफार्मा हमारे डा. गुलाबचन्द्र जैन के पास मौजूद है। कृपया उनसे प्राप्त कर लें।

भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से मैं आप सबका धन्यवाद करता हूँ और कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ कि आप लोग पधारे।

8॰ डा॰ [illegible] जैन, उज्जैन ।
9॰ डा॰ देवेन्द्र कुमार शास्त्री, नीमच ।
10॰ डा॰ प्रेमसुमन जैन, उदयपुर ।

धर्म एवं विज्ञान

1॰ डा॰ दौलत सिंह कोठारी, दिल्ली ।
2॰ पं॰ जगनमोहन शास्त्री, कटनी ।
3॰ प्रो॰ लक्ष्मीचन्द्र जैन, छिन्दवाड़ा ।
4॰ डा॰ नन्दलाल जैन, रीवा ।
5॰ डा॰ दुलीचन्द्र जैन, अमरीका ।

मन्त्र-तन्त्र एवं ज्योतिष

1॰ पं॰ नाथूलाल शास्त्री, इन्दौर ।
2॰ पं॰ बाहुबली उपाध्ये, कोथली ।
3॰ प्रो॰ अभयकुमार जैन, इन्दौर ।
4॰ डा॰ यतीन्द्र कुमार जैन, आगरा ।
5॰ श्री सोहनलाल देवोत, लुहारिया ।